हिंदी कविता

(मध्यकाल और आधुनिक काल)

B.A. (HINDI) PART-2 (Semester-3)

Course Code : 25HNDM403DS01

Course Type : MAJOR

1

भक्तिकालीन हिंदी कविता : कबीर

व्याख्या भाग

1 **गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय।**
बलिहारी गुरु आपनो, गोबिंद दियो मिलाय।।

शब्दार्थ : गुरु = गुरु, शिक्षक, उपदेशक। **गोबिंद** = ईश्वर। **दोऊ** = दोनों। **काके** = किसके। **पाँय** = पाँव। **बलिहारी** = न्योछावर होना। **आपनो** = अपना। **मिलाय** = मिला दिया है।

प्रसंग–प्रस्तुत दोहा हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल और आधुनिक काल)'** में संकलित **कबीर के दोहों** से अवतरित है। इस दोहे में कबीरदास जी ने गुरु एवं ईश्वर की तुलना करते हुए गुरु को ईश्वर से अधिक महत्त्व प्रदान किया है।

व्याख्या–साधक अथवा शिष्य के रूप में कबीरदास कहते हैं कि उनके गुरु और ईश्वर दोनों ही उनके समक्ष खड़े हुए हैं। वे समझ नहीं पा रहे हैं कि वे पहले किसके चरणों को छुएँ। फिर काफी सोच-समझकर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्हें पहले अपने गुरु पर ही न्योछावर होना चाहिए अर्थात् उनके पाँव छूने चाहिए क्योंकि उन्होंने ही अपने ज्ञान से उनका मार्गदर्शन करके उन्हें ईश्वर के दर्शन कराए हैं।

विशेष–1. कबीरदास जी ने एक गुरु एवं ईश्वर की तुलना करते हुए गुरु को ईश्वर से अधिक महत्त्व प्रदान किया है।

2. भाषा सरल, सहज एवं प्रवाहयुक्त सधुक्कड़ी बोली है।
3. तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास एवं काव्यलिंग अलंकारों का प्रयोग है।
6. दोहा छंद का प्रयोग है।

2 **निंदक नियरे राखिये, आँगणि कुटि बँधाइ।**
बिन साबण पाँणी बिना, निरमल करै सुभाइ।।

शब्दार्थ : निंदक = निंदा करने वाला। **नियरे** = समीप। **आँगणि** = घर का आंगन। **साबण** = साबुन। **सुभाइ** = स्वभाव। **कुटि** = कुटिया।

प्रसंग–प्रस्तुत दोहा हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल और आधुनिक काल)'** में संकलित **कबीर के दोहों** से अवतरित है। इस दोहे के माध्यम से कबीरदास जी ने निंदक के महत्त्व का प्रतिपादन किया है।

व्याख्या–कबीरदास जी कहते हैं कि निंदक हमेशा मनुष्य का बुरा ही नहीं करता। वह मनुष्य को सहनशीलता सिखाता है एवं उसके अवगुणों के प्रति उसे सजग कर देता है और उन्हें छोड़ने की प्रेरणा भी देता है। कवि का कथन है कि निदंक को, जहाँ तक हो सके, अपने समीप रखना चाहिए, बल्कि उसे अपने आँगन की कुटिया में ठहराना चाहिए। निंदक बिना साबुन और पानी के स्वभाव को निर्मल कर देता है। शरीर की मैल को साबुन और पानी से दूर किया जाता है। मन की गंदगी यानी मनोविकारों को दूर करने में निंदा साबुन और पानी की तरह काम करती है।

विशेष–1. निन्दा सहन करने से मनुष्य का स्वभाव सहज रूप से विनम्र हो जाता है।

2. भाषा सरल, सहज एवं प्रवाहयुक्त सधुक्कड़ी बोली है।

3. तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. अनुप्रास एवं विभावना अलंकारों का प्रयोग है।

6. दोहा छंद का प्रयोग है।

3 **माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।**
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर।।

शब्दार्थ : फेरत = फेरना। **जुग** = समय का एक माप। **फिरा** = बदला। **मन का फेर** = मन का भाव। **कर** = हाथ। **फेर** = फेरना।

प्रसंग–प्रस्तुत दोहा हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल और आधुनिक काल)'** में संकलित **कबीर के दोहों** से अवतरित है। इस दोहे के माध्यम से कबीरदास जी ने ईश्वर प्राप्ति के लिए बाह्य-आडम्बरों को त्यागने पर बल दिया है।

व्याख्या–कबीरदास जी कहते हैं कि ईश्वर को प्राप्त करने के लिए साधक द्वारा माला फेरते-फेरते एक युग जितना समय व्यतीत हो गया है परन्तु उसे ईश्वर की प्राप्ति होना तो दूर, उसके मन का भाव भी नहीं बदल पाया है। अतः ईश्वर को पाने के लिए साधक को चाहिए कि वह हाथों में पकड़ी मनकों की माला का त्याग करके अपने मन की माला को फेरे अर्थात् अपने मन के भावों को बदले।

विशेष–1. कवि ने स्पष्ट किया है कि बाह्य-आडम्बर, जैसे—माला फेरना आदि से ईश्वर की प्राप्ति संभव नहीं है। ईश्वर प्राप्ति के लिए मन के भावों को बदलना होगा।

2. भाषा सरल, सहज एवं प्रवाहयुक्त सधुक्कड़ी बोली है।

3. तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. यमक अलंकार का प्रयोग है।

6. दोहा छंद का प्रयोग है।

4 **पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजौं पहार।**
ता तें ये चाकी भली, पीसि खाय संसार।।

शब्दार्थ : पाहन = पत्थर। **हरि** = ईश्वर। **पहार** = पहाड़, पर्वत। **तातें** = उससे। **चाकी** = चक्की।

प्रसंग–प्रस्तुत दोहा हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल और आधुनिक काल)'** में संकलित **कबीर के दोहों** से अवतरित है। इस दोहे के माध्यम से कबीरदास जी ने मूर्ति पूजा जैसे बाह्य-आडम्बरों का विरोध किया है।

व्याख्या–कबीरदास जी कहते हैं कि पत्थर अथवा पत्थर से बनी मूर्तियों की पूजा करने से यदि ईश्वर की प्राप्ति हो जाए तो मैं तो पहाड़ की पूजा करने को तैयार हूँ। परन्तु सच्चाई तो यह है कि पत्थर अथवा मूर्ति की पूजा करने से भगवान की प्राप्ति नहीं होती। अतः हे मानव! तू अपने मन में विचार करके देख कि पत्थर की इन मूर्तियों से तो चक्की ही अच्छी है जिसका हमारे जीवन में अत्यधिक उपयोग होता है। लोग उससे अनाज पीसकर कम-से-कम अपना पेट तो भर लेते हैं। भाव यह है कि पत्थर या पत्थर से बनी हुई मूर्तियाँ हमारे किसी काम की नहीं हैं।

विशेष–1. यहाँ कवि ने मूर्ति-पूजा का विरोध किया है। इस संदर्भ में कवि का तर्क भी प्रशंसनीय है।

2. भाषा सरल, सहज एवं प्रवाहयुक्त सधुक्कड़ी बोली है।

3. तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।

6. दोहा छंद का प्रयोग है।

(क) मध्यकालीन हिन्दी कविता : संक्षिप्त परिचय

1. मध्यकालीन हिंदी कविता का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर–मध्यकालीन हिंदी कविता–मध्यकालीन हिंदी काव्य (कविता) से अभिप्राय सामान्यतः उस काव्य से लिया जाता है जो सामान्यतः वि. सं. 1375 (1318 ई.) से लेकर वि. सं. 1900 (1843 ई.) तक रचा गया। मध्यकालीन हिंदी काव्य का यह काल विभाजन आचार्य रामचंद्र शुक्ल के द्वारा किया गया है तथा अधिकांश हिंदी विद्वानों द्वारा मान्य है। मध्यकाल का यह काल निर्धारण भी दो भागों में विभक्त है; क्रमशः पूर्व मध्यकाल या भक्तिकाल (1375 वि. सं. से 1700 वि. सं.) तथा उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल (1700 वि. सं. से 1900 वि. सं.)। इस लगभग 525 वर्षों के काल में हिंदी काव्य को अनेक संतों, सूफियों, भक्तों एवं दरबारी तथा अन्य महान कवियों ने समृद्ध किया। भक्तिकालीन हिंदी काव्य अपने आदर्शों, भक्तिभावना तथा लोकमंगल के लिए इतना प्रसिद्ध है कि उसे हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। हम मध्यकालीन काव्य को निम्नलिखित चार्ट के माध्यम से समझ सकते हैं–

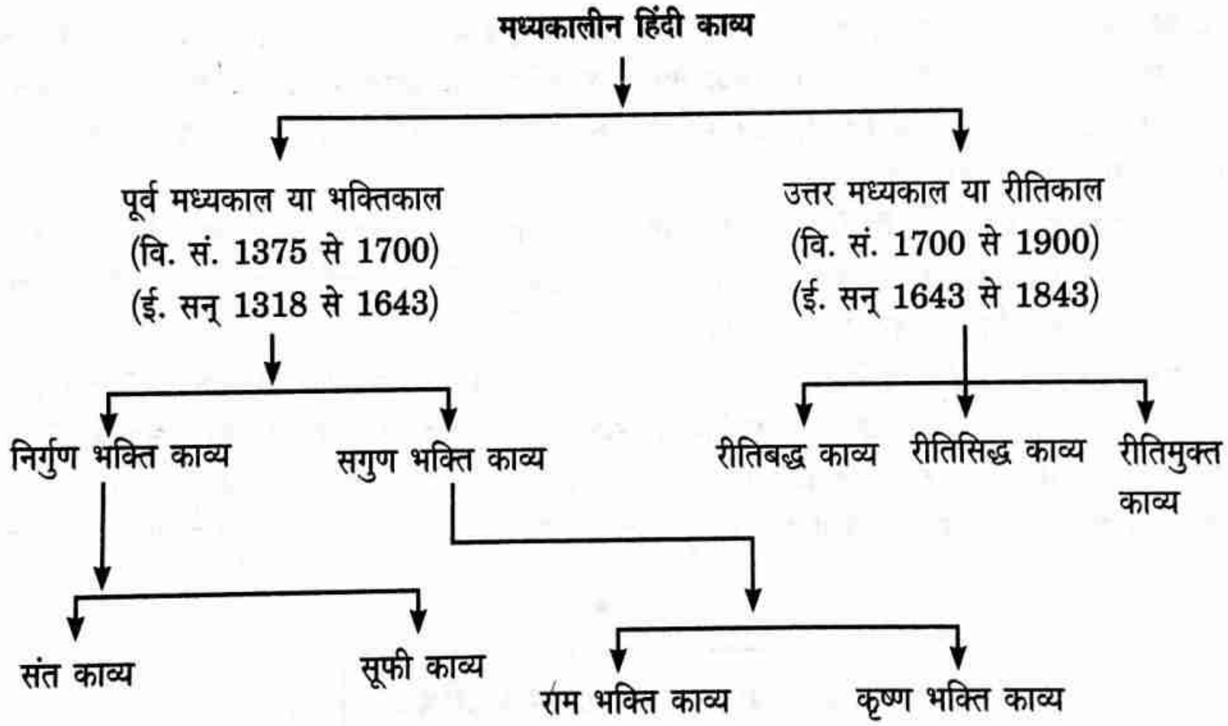

उपर्युक्त मध्यकालीन काव्य को हम संक्षेप में इस प्रकार समझ सकते हैं–

(क) पूर्व मध्यकाल या भक्तिकाल–इस काल की समय सीमा वि. सं. 1375 से 1700 (1318 ई. से 1643 ई.) है। इस काल के काव्य का विभाजन निर्गुण भक्ति काव्य एवं सगुण भक्ति काव्य के अंतर्गत किया जाता है तथा फिर उन दोनों का भी दो-दो काव्य-धाराओं में विभाजन किया जाता है, जो इस प्रकार हैं–

1. निर्गुण काव्य धारा–निर्गुण काव्य धारा के अंतर्गत उस ईश्वर की भक्ति की गई जो सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान है तथा समस्त गुणों से ऊपर है। वह निराकार, अक्षय पुरुष, अजन्मा, अगोचर है तथा सृष्टि के कण-कण में विद्यमान है। निर्गुण काव्यधारा को दो शाखाओं में विभाजित किया गया है–

(i) संत काव्य धारा या ज्ञानमार्गी–निर्गुण काव्यधारा की एक शाखा को संत काव्य धारा कहा जाता है। इस काव्य धारा को ज्ञानाश्रयी काव्यधारा भी कहा जाता है। अधिकांश विद्वान मानते हैं कि वह व्यक्ति जिसने 'संत' रूपी परमतत्त्व को प्राप्त कर लिया हो, वही संत है। संत काव्य-परंपरा के प्रमुख कवि हैं–नामदेव, कबीरदास, रैदास, नानक, दादू दयाल, रज्जब दास, मलूक दास, सुंदर दास आदि।

(ii) सूफी काव्य धारा या प्रेममार्गी शाखा–इस काव्य धारा को प्रेममार्गी/प्रेमाश्रयी/प्रेमाख्यानक आदि नामों से जाना जाता है। इस शाखा को पल्लवित करने का श्रेय सूफी मुसलमान कवियों को जाता है, इसलिए इसे सूफी काव्य धारा कहा जाता है। इस काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि मलिक मोहम्मद जायसी हैं। इसके अतिरिक्त कुतुबन, मुल्ला दाऊद, मंझन, उस्मान, नूर मोहम्मद, असायत आदि भी प्रसिद्ध हैं।

2. सगुण काव्य धारा–सगुण काव्यधारा के अंतर्गत वैष्णव भक्ति की धारा प्रवाहित हुई। इसमें भगवान विष्णु के राम और कृष्ण के रूप में अवतारों की महिमा का वर्णन मिलता है। इस आधार पर सगुण काव्यधारा भी दो भागों में विभाजित हुई–

(i) कृष्ण काव्य धारा–भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा में कृष्ण काव्य का विशेष महत्व है। इस काव्यधारा में कृष्ण के लोक रंजक स्वरूप व माधुर्य से पूर्ण लीलाओं का चित्रण किया गया है। यह काव्य कृष्ण के प्रति प्रेम की गहन अनुभूति का काव्य है। इस काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि सूरदास हैं।

(ii) राम काव्य धारा–इस काव्य धारा के कवियों ने विष्णु के अवतार राम रूप की उपासना को अपना आधार बनाया है। राम भक्ति साहित्य में राम के लोकरक्षक, मर्यादापुरुषोत्तम तथा परब्रह्म स्वरूप के साथ-साथ शील, शक्ति और सौंदर्य के समन्वय को प्रस्तुत किया गया है। रामकाव्य-परम्परा के अध्ययन से ऐसा अनुमान होता है कि राम भारतीय-संस्कृति के भाव-नायक हैं। इस काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास हैं।

(ख) उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल–इस काल की समय सीमा वि. सं. 1700 से 1900 (1643 ई. से 1843 ई.) है। इस काल में तीन काव्य-धाराएं; क्रमशः रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त, प्रवाहित हुईं। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

(1) रीतिबद्ध काव्य–रीतिकालीन रीतिबद्ध काव्य से अभिप्राय उस काव्य से है, जिसके अंतर्गत कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र का अनुकरण करते हुए लक्षण ग्रंथों की रचना की। इसके पीछे उनका उद्देश्य काव्यशास्त्र की शिक्षा देना था। इस प्रकार के काव्य की रचना करने वाले कवि रीतिबद्ध कवि कहलाए। इन कवियों में मतिराम, भूषण, देव आदि प्रमुख हैं। इन कवियों ने लक्षण ग्रंथों के साथ-साथ लक्ष्य ग्रंथों की भी रचना की है।

(2) रीतिसिद्ध काव्य–रीतिकालीन रीतिसिद्ध काव्य से अभिप्राय उस काव्य से है, जिसके अंतर्गत कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र में वर्णित काव्य लक्षणों के आधार पर अपने काव्य की रचना की। इन कवियों में बिहारी, बेनी, कृष्ण कवि, नृपशंभु, नेवाज, द्विजदेव आदि प्रमुख हैं। ये कवि रीतिसिद्ध कवि कहलाते हैं।

(3) रीतिमुक्त काव्य–रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्य से अभिप्राय उस काव्य से है, जिसके अंतर्गत कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र में वर्णित काव्य-लक्षणों के अनुरूप न तो लक्षण ग्रंथों का निर्माण किया और न लक्षणों को आधार मानकर कविता ही की। इस प्रकार के काव्य की रचना करने वाले कवि रीतिमुक्त कवि कहलाते हैं। इन्होंने अपने मन की मौज के आधार पर काव्य की रचना की। हालांकि इनके काव्य में भी श्रृंगार की अधिकता है। रीतिमुक्त कवियों में घनानंद, ठाकुर, आलम एवं बोधा सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं।

◆◆◆

(ख) कबीरदास : साहित्यिक परिचय

---

2. कबीरदास का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

अथवा

कबीरदास का साहित्यिक परिचय दीजिए।

उत्तर–कबीरदास का जीवन परिचय (व्यक्तित्व)–भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण-युग कहा जाता है। इस काल में अनेक संत कवियों ने अपनी वाणी से जनमानस को न केवल सराबोर किया अपितु जीवन की एक नई राह भी दिखाई।

भक्तिकालीन सन्त-कवियों में संत कवि कबीरदास का स्थान सबसे ऊपर माना जाता है। वे सन्त काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। वे एक सच्चे साधक, श्रद्धालु भक्त, उच्चकोटि के कवि तथा समर्पित समाज सुधारक थे। **आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी** के अनुसार–**"वे सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के समान निरीह, भेषधारी के आगे प्रचण्ड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वन्दनीय थे।"**

कबीर ने अपना सम्पूर्ण जीवन जन-कल्याण हेतु समर्पित कर दिया। वे किसी भी प्रकार की यश-लिप्ता से मुक्त रहकर व्यष्टि को समष्टि में मिलाने का प्रयास करते रहे।

भक्तिकाल के अन्य भक्त कवियों की भाँति कबीरदास ने भी अपने बारे में बहुत कम लिखा है। उनके नाम से प्रचलित रचनाओं में उनके जन्म-स्थान के विषय में थोड़े-बहुत संकेत अवश्य मिलते हैं। अंतःसाक्ष्यों के अभाव में प्रायः बाह्य साक्ष्यों के आधार पर ही उनके जन्म-स्थान के विषय में अनुमान कर लिया गया है। कबीर पन्थियों के अनुसार उनका जन्म सम्वत् 1455 के ज्येष्ठ मास में हुआ, जबकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वान संवत् 1456 को कबीर का जन्म वर्ष मानते हैं। **'भक्तमाल'** के अनुसार उनकी मृत्यु सम्वत् 1575 में हुई, जबकि डॉ. रामकुमार वर्मा ने उनकी मृत्यु सम्वत् 1551 में मानी है। अधिकांशतः प्रचलित मत के अनुसार उनका जन्म 1398 ई. (1455 वि. सं.) एवं देहांत 1518 ई. (1575 वि. सं.) में हुआ।

एक जनश्रुति के अनुसार उनका जन्म काशी की एक विधवा ब्राह्मणी की कोख से हुआ, जो लोक-लाज के भय से उसे लहरतारा नामक तालाब की सीढ़ियों पर छोड़कर चली गई। बाद में नीरु और नीमा नामक निःसंतान जुलाहा-दम्पति ने उनका पालन-पोषण किया। कबीर गृहस्थ थे। उनकी पत्नी का नाम लोई था जबकि डॉ. रामकुमार वर्मा ने इनकी दो पत्नियाँ होने का अनुमान व्यक्त किया है—लोई और धनिया (रमजनिया)। परन्तु अन्य सभी विद्वानों ने एक ही पत्नी लोई के समर्थन में विचार व्यक्त किए हैं। कमाल और कमाली उनके पुत्र व पुत्री थे। हिन्दुओं के अनुसार उनके गुरु रामानन्द तथा मुसलमानों के अनुसार सूफी फकीर शेख तकी थे। लोकप्रसिद्ध धारणा तो यह है कि कबीर के गुरु रामानन्द थे, जिन्होंने राम नाम का गुरुमंत्र दिया था। स्वयं कबीर ने **"काशी में हम प्रगट भये हैं, रामानन्द चेताए"** कहा है। कबीर पंथी मुसलमान शेख तकी को कबीर का गुरु मानते हैं। स्वयं कबीर ने गोमती वीर निवासी पीताम्बर पीर का भी उल्लेख किया है। पीताम्बर नाम को देखने से प्रतीत होता है कि वे मूलतः हिन्दू थे, किन्तु अपने विश्वासों के कारण पीर भी थे। कबीर बहुत ही सुन्दर गाते थे—कदाचित् गला और संगीत दोनों के धनी थे। 'हरि' का नाम लेते थे और कंठ में माला भी धारण करते थे। वे 'राम' का गुणगान करके हिन्दू-मुसलमान दोनों को समझाते थे। कबीर बड़े स्वाभिमानी व्यक्ति थे; उनका व्यवसाय कपड़ा बुनना था, पर आय कम ही रही होगी। लेकिन इन्होंने भगवान के अतिरिक्त किसी के आगे हाथ नहीं पसारा। योगी और भक्त में अपरिग्रह की जो भावना होनी चाहिए वह तो कबीर में असंदिग्ध रूप से थी।

कबीरदास का कृतित्व—'मसि कागद छुयौ नहिं कलम गह्यौ नहिं हाथ' कहने वाले निरक्षर कबीर ने स्वयं अपने हाथ से कुछ नहीं लिखा। उनका काव्य अनुभवों का परिणाम है। उन्होंने इस जीवन और जगत के सम्बन्ध में जैसा भी अनुभव किया, अपनी अटपटी भाषा में कह दिया। बाद में उनके शिष्यों ने उनकी वाणी का संकलन कर लिया। वैसे तो कबीर की अनेक रचनाएँ बतलायी जाती हैं, लेकिन **'बीजक'** को ही उनका प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। कबीर के कुछ पद सिखों के धार्मिक ग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहिब' में भी स्वीकार किए जाते हैं। बीजक के तीन भाग हैं—**साखी, सबद** और **रमैनी**। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

1. साखी : 'साखी' संस्कृत के 'साक्षी' से बना है जिसका अर्थ होता है—गवाह। साखी को 'ज्ञान की आंखें' भी कहा जाता है। कबीर 'आंखों देखी' में विश्वास करते थे। उनका कहना है—

तू कहता कागज की लेखी।
मैं कहता हूँ आँखिन देखी॥

बीजक के जितने संस्करण निकले हैं, उनमें 353 साखियाँ मिलती हैं।

2. सबद : गेय पदों को 'सबद' कहा जाता है। यह संस्कृत के 'शब्द' से बना है। शब्द का एक अर्थ ब्रह्म अथवा परमतत्त्व होता है। जिन पदों में ब्रह्म अथवा परमपद के स्वरूप और उसे प्राप्त करने की साधना-प्रणाली का वर्णन हो, उन्हें 'सबद' कहते हैं। गेय पदों में रचना करने की परम्परा कबीर से पहले बौद्ध सिद्धों और नाथयोगियों में भी मिलती है। कबीर ने उसी का अनुसरण किया है।

3. रमैनी : 'बीजक' में 'रमैनी' को बहुत महत्त्व दिया गया है। चौपाई-दोहा शैली में लिखी गई रचनाओं को "रमैनी" कहते हैं। बीजक में 84 रमैनियाँ मिलती हैं। 'बीजक' की रमैनियों में सात-सात चौपाइयों के बाद एक दोहा मिलता है। रमैनी में मुख्यतः सृष्टि, जीव, जगत आदि विषयों पर विचार किया गया है।

काव्यगत/साहित्यिक विशेषताएँ—कबीरदास के साहित्य की प्रमुख काव्यगत/साहित्यिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. निर्गुण ईश्वर में विश्वास—कबीर का ब्रह्म निर्गुण और निराकार है। वह अजन्मा और अनाम है। भले ही कबीर ने उसे राम, गोविन्द, हरि आदि नामों से पुकारा है, लेकिन ये निर्गुण ब्रह्म के विविध नाम हैं। इनका ब्रह्म न तो राजा दशरथ का बेटा है और न ही नन्द का पूत। इन्होंने स्वयं लिखा है—

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।
राम नाम को मरम है आना॥

2. गुरु का महत्त्व–कबीर ने साधना के मार्ग में गुरु को अत्यधिक महत्त्व दिया है। वे गुरु को परमात्मा से भी बढ़कर मानते हैं। उनकी मान्यता है कि गुरु ही ईश्वर का मार्ग दिखाता है। गुरु के द्वारा दर्शाए गए मार्ग का अनुसरण करके ही साधक ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। इसी कारण कबीर ने कहा है–

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघारिया, अनंत दिखावण हार॥

3. आडम्बरों का विरोध–कबीर ने हिन्दू-मुसलमानों में प्रचलित विभिन्न अंधविश्वासों, रूढ़ियों और आडम्बरों का डटकर विरोध किया है। उन्होंने हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा, तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज़ तथा धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा आदि की आलोचना की है–

पाथर पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूं पहार।
तातै ये चाकी भली, पीसि खाय संसार॥

तीर्थ स्थान की निरर्थकता पर उनका कथन है–

नहाए धोये क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहे, धोये बास न जाय॥

मुसलमानों के रोजा, नमाज़ आदि बाह्य आडम्बरों पर वे कहते हैं–

कांकर पाथर जोरि के, मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥

4. बहुदेववाद और अवतारवाद का विरोध–कबीर एक ही ईश्वर में विश्वास रखते हैं। एक ईश्वर ही सर्वव्यापक अमूर्त तत्त्व है। सभी धर्मों, मतों और आस्थाओं के मार्ग अन्ततः इसी ओर जाते हैं। इसलिए नामों का विभेद व्यर्थ है। इन्हें लेकर संघर्ष करना व्यर्थ है। कबीर का ब्रह्म अवतार नहीं लेता; क्योंकि अवतार तो जीवन-मरण के बंधन से ग्रस्त है–

अक्षय पुरुष इक पेड़ है, निरंजन बाकी डार।
त्रिदेवा शाखा भये पात भया संसार।

5. माया का विरोध–कबीर ने धन, स्त्री और सांसारिक आकर्षणों को माया माना है और इनसे सावधान रहने की सलाह दी है, क्योंकि माया ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में बाधक है। यह मनुष्य को अपने फंदे में फाँस लेती है–

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इमैं पड़ंत।
कहै कबीर गुरु ग्यान थैं, एक आध उबरंत॥

6. रहस्यवाद–कबीर के काव्य में रहस्यवादी भावना के भी दर्शन होते हैं। उन्होंने ईश्वर को प्रियतम और स्वयं को पत्नी मानते हुए प्रेम की अभिव्यक्ति की है। उनकी वियोगिनी आत्मा प्रभु से मिलने के लिए आतुर है और सदैव विरहाग्नि में तपती रहती है–

आय न सकौं तुझ पै, सकूं न तुझे बुलाइ।
जियरा यौं ही लेहुगे, विरह तपाइ-तपाइ।

7. मानवतावाद–कबीर सच्चे मानवतावादी थे। उनके काल में साम्प्रदायिकता, जातिवाद, वर्ग-भेद आदि के कारण समाज में तनाव व्याप्त था। इस तनाव को दूर करने के लिए उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों में एकता स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने मानव धर्म का प्रचार किया। जाति-वर्ग आदि के आधार पर किए गए भेदभाव को वे नहीं मानते थे, क्योंकि उनकी दृष्टि में सब समान हैं–

जाति-पांति पूछै नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई॥

8. भाषा-शैली–निरक्षर होते हुए भी कबीर का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। विद्वानों ने इनकी भाषा को सधुक्कड़ी अथवा खिचड़ी भाषा कहा है। इनकी भाषा में अवधी, ब्रज, पंजाबी, फारसी, राजस्थानी आदि शब्दों की भरमार है। **आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर को वाणी का डिक्टेटर** भी कहा है। इनके काव्य में उपमा, रूपक, यमक, अनुप्रास, श्लेष, उदाहरण, दृष्टान्त आदि अलंकारों का अनायास प्रयोग हुआ है। कबीर ने मुक्तक शैली में दोहा और सोरठा छन्दों की रचना की है। इनके अधिकतर पद गेय हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर युगान्तरकारी कवि थे। उन्होंने अपने श्रेष्ठ काव्य द्वारा मानवधर्म का प्रचार किया और अपने क्रांतिकारी विचारों द्वारा समाज को स्वस्थ व नया रूप प्रदान करने का प्रयास किया।

(ग) कबीरदास : भक्ति-भावना

3. कबीरदास की भक्ति-भावना पर प्रकाश डालिए।

अथवा

कबीरदास की भक्ति-भावना का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर–कबीरदास की भक्ति-भावना–भारतीय धर्म साधना में ईश्वर अथवा परमतत्त्व को प्राप्त करने के चार साधन बताए गए हैं–ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति। जो जिस मार्ग पर चलकर भगवत्साक्षात्कार करता है, वह उसी मार्ग को सर्वश्रेष्ठ मानता है। ज्ञानियों ने ज्ञान को, योगियों ने योग को, कर्मकांडियों ने कर्म को और भक्तों ने भक्ति को भगवान तक पहुंचने का सर्वोत्तम साधन माना है। जहाँ तक कबीर का प्रश्न है, उस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि कबीरदास ने कर्मकाण्ड अथवा बाह्याडम्बरों की सर्वत्र निन्दा की है, किन्तु साधना के शेष तीन साधनों–ज्ञान, योग और भक्ति को विशेष रूप से महत्त्व दिया है। उनमें भी भक्ति को वे सर्वोत्तम मानते हैं। ज्ञान तथा योग उनकी दृष्टि में वहीं तक उत्तम हैं जहाँ तक वे भक्ति में सहायक हों।

भक्ति का व्युत्पत्तिपरक अर्थ स्पष्ट करते हुए विद्वानों ने इसके तीन प्रमुख तत्त्वों का संकेत किया है–**उपास्य के प्रति अनन्य भाव, शरणागति** तथा **पूर्ण आत्म विस्मृति**। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, नारद भक्ति सूत्र, भागवदकार तथा वल्लभाचार्य ने भक्ति के स्वरूप का उल्लेख करते हुए अनन्य निष्ठा, निष्कामता, प्रेमपूर्ण ध्यान, शरणागति एवं आत्मविस्मृति आदि गुणों का बखान किया है।

कबीर बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। दक्षिण भारत में भक्ति-सरिता प्रवाहित करने में जो योगदान आलवार भक्तों का रहा, उत्तर भारत में वही गरिमा भक्त प्रवर कबीर ने प्राप्त की–

भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाए रामानन्द।
परगट करी कबीर ने, सप्त द्वीप नवखण्ड॥

कबीर की भक्ति-भावना नारद भक्ति सूत्र से प्रभावित है। इसमें भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से भी अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। कबीर दृढ़ विश्वास एवं अनन्य भाव से हरि भक्ति करने का उपदेश देते रहे हैं। ज्ञान, कर्म आदि तो कबीर के लिए साधनस्वरूप रहे हैं, पर भक्ति तो साक्षात् साध्य रही है।

इसके बावजूद कबीर की भक्ति किसी सम्प्रदाय से सम्बद्ध नहीं है। उन्होंने अपने आराध्य के लिए राम, केशव, हरि, रहीम, खुदा, अल्लाह आदि विविध नामों का समान श्रद्धाभाव से प्रयोग किया है। उन्होंने अपने युग की सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप भक्ति के स्वरूप को निर्धारित किया था। इसी के साथ-साथ राम के नाम के प्रति उनका विशेष आग्रह था और वैष्णवों के प्रति विशिष्ट आस्था और श्रद्धा भी थी–

वैष्णव की छपरी भली, नहिं साकत को गाँव।

कबीर के राम केवल निर्गुण थे। वे रूप-रंग, आकार-प्रकार और जन्म-मरणादि से मुक्त हैं। वे सर्वव्यापक, निर्गुण, निराकार, घट-घट व्यापी हैं।

यद्यपि उनके काव्य में कहीं-कहीं सगुणोपासना का भ्रम होता है। उन्होंने अपने ब्रह्म को सगुण, साकार और वैष्णवों के समान अविकारी बताकर भी अपने इष्ट के निर्गुण-सगुण स्वरूप का समान रूप से वर्णन किया है।

कबीर की भक्ति-भावना में गुरु का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे गुरु को ईश्वर से भी बढ़कर मानते हैं। उनकी मान्यता है कि यदि गुरु न होता तो ईश्वर-भक्ति का मार्ग कौन दिखाता। गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है–

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघारिया, अनंत दिखावणहार।

वस्तुतः कबीर की भक्ति साधना के तीन सोपान हैं–**हरि गुणगान, निष्काम भक्ति साधना तथा भगवान की सान्निध्य प्राप्ति का प्रयास**। अपनी प्रथम अवस्था में कबीर ने अपने आराध्य को अनेक दिव्य गुणों से सम्पन्न कर सगुण सा बना दिया है, पर इतने से कबीर सगुणोपासक नहीं हो जाते। वस्तुतः अन्तिम दो अवस्थाओं में उनके राम निर्गुण और निराकार ही हैं। कबीर ने निष्काम भक्ति का समर्थन करते हुए सकाम भक्ति को निष्फल सिद्ध किया है। कबीर अपने उपास्य के लिए, उन्हें रिझाने के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने को तैयार हैं–

नैना अन्तरि आंव तू ज्यौ हौं नैन झपेंऊ।
ना मैं देखुँ और कू, न तोहीं देखन देऊं॥

कबीर ने ईश्वर प्राप्ति हेतु प्रेम को आवश्यक माना है। केवल ज्ञान के बल पर ईश्वर को नहीं पाया जा सकता, उसके लिए प्रेम भी आवश्यक है। मानव में प्रेम भाव के जाग्रत होते ही, भीतर ईश्वर का प्रकाश हो जाता है। कबीर के अनुसार जिस शरीर में प्रेम का निवास नहीं, वह श्मशान के समान होता है–

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहार की, साँस लेत बिनु प्रान॥

कबीर की मान्यता है कि प्रभु-प्रेम तो ऐसा है जो न तो खेत में उपजता है और न ही बाज़ार में बिकता है। प्रेम के लिए तो त्याग और बलिदान की आवश्यकता होती है–

प्रेम न खैती ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रूचै, सीस देइ ले जाय॥

कबीर के अनुसार एक भक्त को सदाचारी होना चाहिए। उसे विषय-वासना, लोभ-लालच, हिंसा व अहंकार आदि से बचना चाहिए, अन्यथा वह ईश्वर-भक्ति नहीं कर सकता। उनका कहना है–

''तेरा जन एक आध है कोई।
काम क्रोध अरू लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्है सोई॥''

समाज में अक्खड़ समझे जाने वाले कबीर ईश्वर के सम्मुख नितान्त दीन व विनम्र हो जाते थे। इसी कारण उनकी भक्ति दास्य भाव की मानी जाती है। वे अपनी कमियों व दोषों को सहज रूप से स्वीकार कर लेते थे। ईश्वर के सम्मुख उनका अहं भाव तिरोहित हो जाता था। वे पूर्ण भाव से उसके प्रति समर्पित हो जाते थे–

कबिरा कुत्ता राम का मुतिया मेरा नाउं।
गले राम की जेबरी, जित खिंचै तित जाउं॥

कबीर ने अनेक साखियों में सत्संगति की महिमा का बखान किया है। सत्संगति के द्वारा ही भक्ति मार्ग में आने वाले विघ्नों का परिहार हो सकता है–

कबीर संगति साध की, बेगि करीजै जाइ।
दुरमति दूरि गंवाइसी, देसी सुमति बताइ।।

कबीर की भक्ति भावना में श्रद्धा और विश्वास की महती आवश्यकता दिखाई पड़ती है; क्योंकि जब विश्वास और श्रद्धा नहीं होगी, भक्त के संशयों का निवारण नहीं होगा और जब तक संशय बना रहेगा तब तक मन में भक्ति-भावना उदित नहीं होगी–

गाया तिनि पाया नहीं, अण गायां थैं दूरि।
जिनि गाया बिसवास सूं, तिन राम रहूया भरपूरि॥

लेकिन कुछ लोग तो उस ब्रह्म को केवल दुःख के समय स्मरण करते हैं। कबीर का कहना है कि यदि परमात्मा को सुख में भी स्मरण किया जाए तो मनुष्य को दुःख हो ही नहीं सकता–

दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुःख काहे को होय॥

कबीर तो प्रभु का रात-दिन स्मरण करते रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप वे स्वयं भी राममय हो गए हैं–

मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहिं आदि।
अब मन रामहिं ह्वै रहूया, सीस नवावौं काहि॥

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कबीर सहज भक्ति भावना में विश्वास करते थे। उसमें बाह्य आडम्बरों के लिए कोई स्थान न था। उनकी भक्ति में अद्वितीय कोटि का समर्पण भाव है। उसमें दैन्य और विनय का चरमोत्कर्ष है। प्रभु राम की शरण ही उनके जीवन का आधार है। कबीर ने भक्ति मार्ग में जाति-पाँति तथा वर्ग-भेद के पचड़े को समाप्त कर उसे लोक संग्रहात्मक रूप प्रदान किया है। उसको व्यापक बताया है। भक्ति को सभी के लिए साध्य बताया है। लेकिन जो वीर हैं, सच्चे साधक हैं, उनके लिए वे कहते हैं–

भगति दुहेली राम की नहिं कायर का काम।
सीस उतारे हाथि करि, सो लेसी हरिनाम॥

◆◆◆

(घ) कबीरदास : गुरु का महत्त्व

4. कबीरदास के अनुसार गुरु के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

अथवा

कबीरदास का गुरु संबंधी दृष्टिकोण स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–गुरु का महत्त्व–भक्तिकालीन सभी सन्तों में कबीर की वाणी सबसे अधिक सशक्त एवं सक्षम है। कबीर ने तत्कालीन समस्त धर्म साधनाओं, उपासना पद्धतियों, साधना प्रणालियों आदि का गहन अध्ययन करके अपने विचार प्रकट किए हैं। साथ ही वे उच्चकोटि के साधक भी रहे हैं। कबीर का साहित्य जन-जीवन को उन्नत बनाने वाला है, मानवता का पोषक है, विश्व बन्धुत्व की भावना को जाग्रत करने वाला है। कबीर की साधना में "गुरु" को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया है। कबीर की दृष्टि में गुरु "गोविन्द" से भी बढ़कर है, क्योंकि–

हरि रुँठे गुरु ठौर है, गुरु रुँठे नहिं ठौर।

यह कहकर कबीर ने गुरु को सबसे बड़ा आश्रय-स्थान माना है, जो ईश्वर के रूठने पर भी भक्त की रक्षा करता है। किन्तु गुरु उच्च कोटि का होना चाहिए, वह ज्ञान का भण्डार होना चाहिए, उसमें शिष्य के पथ-प्रदर्शन की पूर्ण क्षमता होनी चाहिए और वह सच्चा साधक भी होना चाहिए। ऐसे गुरु को कबीर ने सतगुरु के नाम से अभिहित किया है तथा उसकी अनंत महिमा का गुणगान किया है। कबीर के संबंध में एक रूढ़ धरणा बन गई है कि ये पढ़े-लिखे नहीं थे। इसकी पुष्टि में 'बीजक' में संकलित निम्न साखी उद्धृत की जाती है–

मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ,
चारिउ जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात।

इसी सिद्धान्त के अनुसार वे कह देते है–

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोइ।

कबीर ने ज्ञान के लिए गुरु की आवश्यकता स्वीकार की है। गुरु सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ प्रयोगात्मक ज्ञान का भी धनी होता है। वह श्रवण और मनन के साथ दर्शन भी करता है। वास्तव में ऐसा ही गुरु, गुरु बनने के योग्य है।

कबीर को ऐसे ही सद्‌गुरु मिल गए थे, जिन्होंने धैर्य बँधाकर कबीर को स्थितप्रज्ञ बना दिया, भगवद्-भक्तों में उनकी स्थापना हुई और वे मानसरोवर के तट पर बैठकर हीरे का वाणिज्य करने लगे; सात्विक, निर्मल, प्रशान्त प्रकाश की अवस्था में पहुँचकर दूसरों को ज्ञानालोक से आलोकित करने लगे। जिस दिन से महागुरु रामानंद ने कबीर को भक्ति रूपी रसायन दी, उस दिन से उन्होंने सहज समाधि की दीक्षा ली, आँख मूंदने और कान रुँधने के टंटे को नमस्कार कर लिया, मुद्रा और आसन की गुलामी को सलामी दे दी। उनका चलना ही परिक्रमा हो गया, काम-काज ही सेवा हो गए, सोना ही प्रणाम बन गया, बोलना ही नाम-जप हो गया और खाने-पीने ने ही पूजा का स्थान ले लिया। हठयोग के टंटे दूर हो गए, खुली आंखों से ही उन्होंने भगवान के मधुर मादक रूप को देखा, खुले कानों से ही अनहद नाद सुना, उठते-बैठते सब समय समाधि का आनंद पाया और अत्यन्त उल्लास के आवेग में उन्होंने घोषित किया कि–

साधो सहज समाधि भली,
गुरु प्रताप जा दिन तै उपजी, दिन दिन अधिक चली,
जहँ-तहँ डोलों सोई परिकरमा, जो कुछ करों सो सेवा,
जब सोवों तब करों दण्डवत, पूजो और न देवा।

कबीर से पूर्व ही भारत में गुरु की महत्ता प्रतिष्ठित हो गई थी। कबीर दास ने उसी परम्परा को मुखर करते हुए गुरु को गोविन्द से भी अधिक ऊँचा स्थान प्रदान किया–

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागों पाय।
बलिहारी गुरु आपणै, गोविन्द दियो बताय।

कबीरदास गोविन्द से मिलानेवाले गुरु का गुणगान अनेक रूपों में करते है। उनकी दृष्टि में गुरु असाधारण एवं अलौकिक राक्रम दिखाने वाला शूर है। उसकी साखी रूपी वाणी की चोट बाहर नहीं दिखाई पड़ती, किन्तु उसकी चोट लगते ही शिष्य ा अन्तःकरण इस प्रकार शुद्ध हो जाता है कि उसका विकृत रूप तो नष्ट हो ही जाता है, साथ ही प्रेम की पीर उत्पन्न होने वह परम प्रिय से मिलने के लिए आकुल भी हो उठता है। ऐसा महत्वपूर्ण गुरु किसी प्रकार के दोष से युक्त नहीं हो सकता।

सतगुरु के बारे में कबीर इस प्रकार कहते हैं कि–

सतगुरु सवाँन को सगा, सोधी सई न दाति,
हरिजी सवान की हितू, हरि जनसई न जाति।।

अर्थात सच्चे गुरु के समान कोई अपना नहीं, परमतत्त्व के खोजियों के समान कोई दाता नहीं, परमात्मा के समान कोई लाई करने वाला नहीं तथा भगवद्-भक्तों के समान कोई जाति नहीं, क्योंकि सगे-संबंधी सांसारिक भलाई करते हैं, लेकिन गुरु रमात्मा से मिलाता है।

सतगुरु हमेशा शिष्य के अहं भाव को जड़ से मिटाते हैं। इस प्रकार के सतगुरु का वर्णन कबीर ने इस प्रकार किया है–

सतगुरु मारया बाण भरि, धरि करि सूधी मूठि,
अंगि उघाड़ै लागिया, गई दवा सूँ फूटि।

मतलब यह है कि सतगुरु ने शब्द रूपी बाण को पूरा खींचकर लक्ष्य बेध के उपयुक्त सीधी मूँठ करके, मुझ पर छोड़ दिया। मेरे वस्त्रहीन शरीर पर उसके लगते ही दवा रूपी अग्नि सारे शरीर में फूट पड़ी तथा उसका सारा अहंभाव जलकर राख हो गया।

कबीर ने गुरु की महानतम कृपा के बारे में इस प्रकार विचार व्यक्त किया है–

पीछे लागा जाई था, लोक बेद के साथि,
आगै थे सतगुरु मिल्या, दीपक दीया हाथि।

अर्थात् कबीर का कहना है कि मैं लोकाचार एवं वेदाचार को मानता हुआ, सबका अन्धानुसरण करता हुआ, अज्ञान के अन्धकार में चला जा रहा था। सौभाग्यवश सामने से आते हुए गुरु मिल गए और उन्होंने ज्ञान-दीपक मेरे हाथ में रख दिया।

कबीर ने गुरु की महिमा का उल्लेख इस प्रकार किया है–

कबीर गुरु गारवा मिल्या, रलि गया आटैं लूँण,
जाति पाति कुल सब मिटे, नांव धरौगे कूँण।

इसका अर्थ यह है–गुरु गले लगाकर क्या मिले, मानो आटे ने चुटकी भर नमक को अपने में मिला लिया, उनसे अभेदावस्था प्राप्त हो गई है। अब मेरी कोई जाति-पाँति नहीं, कोई मेरा नाम ही क्या रखेगा। इस प्रकार कबीर ने गुरु की महिमा का उल्लेख किया है।

कबीर ने सद्गुरु के अभाव में आने वाले दुष्परिणामों के बारे में भी इस प्रकार वर्णन किया है–

जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध,
अंधै अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पड़ंत।

इसका अर्थ इस प्रकार है–जिस शिष्य का गुरु अज्ञान के परदे के कारण अन्धा है, वह शिष्य गुरु से बढ़कर अंधा होता है। परिणाम यह होता है कि गुरु मार्ग नहीं बता पाते और माया की दिशा में एक-दूसरे को ठेलते हुए वे दोनों नरक कूप में गिर पड़ते हैं।

कबीर दास अपने को धन्य मानते हुए कहते हैं कि–यह अच्छा हुआ कि मुझको सद्गुरु मिल गए, यदि ऐसा नहीं होता तो बड़ा भारी अनिष्ट होता। मैं शलभ की दृष्टि को लिए हुए, भोग दीपक को ही परम-काम्य समझकर उसमें पड़ जाता।

कबीर कहते हैं कि गुरु की कृपा से ही माया से बच सकते हैं–

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि-भ्रमि इवै पड़ंत,
कहै कबीर गुरु ग्यान थैं, एक आध उबरंत।

उपर्युक्त दोहे के माध्यम से कबीर कहना चाहते हैं कि माया दीपक के समान आकर्षक है। मनुष्य का उसके प्रति प्रेम पतंगों के प्रेम की तरह बढ़ता रहता है। लोग माया के चक्कर काटते हुए उस पर निछावर होते रहते हैं। केवल एक-आध ही गुरु की कृपा से बच पाते हैं।

इस संसार रूपी भवसागर से गुरु जिस प्रकार रक्षा करता है, उसका वर्णन कबीरदास ने इस प्रकार किया है–

बूडे ते परि ऊबरै, गुरु की लहरि चमंकि,
भेरा देख्या जरजरा, ऊतरि पड़े फरंकि।

अर्थात भव-सागर में हम डूब ही गए थ, कि तभी गुरु की ज्ञान लहर चमक पड़ी। उसके प्रकाश में हमने देखा कि हमारा तन-रूपी बेड़ा अत्यन्त जर्जर है, अतः उससे शीघ्रता के साथ बाहर कूद पड़े अर्थात् शरीर से अनासक्त हो गए।

गुरु और गोविन्द दोनों के अभिन्न स्वरूप को भी एक जगह चित्रित किया है, जैसे–

गुरु गोविन्द तो एक हैं, दूजा यहू आकार,
आपा मेट जीवन महै, तो पावै करतार।

अर्थात् गुरु और गोविंद आत्म-रूप अभिन्न हैं, अन्तर तो मायात्मक शरीर के कारण है। अतः यदि जीवितावस्था में अपने अहं भाव को मिटाकर शिष्य मृतक तुल्य बन जाये, तो वह परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

कबीर ने सद्गुरु की महिमा का वर्णन इस प्रकार किया है–

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार,
लोचन अनन्त उघाड़िया, अनंत दिखावणहार।

अर्थात् गुरु अनंत उपकार करने वाला होता है, उसमें अनंत दृष्टि प्रदान करने की शक्ति होती है और वह उस अनंत एवं असीम ब्रह्म का साक्षात्कार कराने में समर्थ होता है। सद्गुरु अपने शिष्य को ज्ञान का ऐसा दीपक प्रदान करता है, जिससे वह सही मार्ग पर चल सके और वेद-विहीत एवं लौकिक मार्ग का आँख बन्द करके अनुसरण न करे।

कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरस्या आइ,
अंतरि भीगीं आत्मा, हरि भई बनराइ।
पूरेसूँ परचा भया, सब दुख मेल्या दूरि,
निर्मल कीन्हीं आतमा, तायैं सदा हजूरि।

कबीर कहते हैं कि गुरु धन्य हैं। वे सचमुच उस भ्रमरी के समान हैं जो निरन्तर ध्यान का अभ्यास कराकर कीट को भी भ्रमरी अर्थात् तितली बना देती है। कीड़ा भ्रमरी हो गया, नई पाँखें फूट आई, नया रंग छा गया, नई शक्ति स्फुरित हुई। उन्होंने जाति नहीं देखी, कुल नहीं विचारा, अपने-आप में मिला लिया। नाले का पानी गंगा में जाकर गंगा हो जाता है। कबीर गुरु में मिलकर तद्रूप हो गए। धन्य हो गुरु, तुमने चंचल मन को पंगु बना दिया, तत्व में तत्वातीत को दिखा दिया, बन्धन से निर्बन्ध किया, अगम्य तक गति कर दी। केवल एक ही प्रेम का प्रसंग तुमने सिखाया, पर कैसा अचरज है कि इस प्रेममेघ की वर्षा में ही यह सारा शरीर भीग गया। इस प्रकार कबीर ने गुरु को ही सबसे प्रमुख एवं मुख्य स्थान दिया है।

◆◆◆

(ङ) कबीरदास : सामाजिक चेतना

5. कबीरदास की सामाजिक चेतना पर प्रकाश डालिए।

अथवा

स्पष्ट कीजिए कि कबीरदास एक सच्चे समाज सुधारक थे। **(Imp.)**

उत्तर–कबीर की सामाजिक चेतना–संत कबीर को युग-द्रष्टा की उपाधि से अलंकृत किया जाता है। तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों और अंधविश्वासों के कारण आम जनता त्रस्त थी। उसके पास कोई ऐसा साधन नहीं था जिससे वह इन सबसे मुक्त हो सके। मुक्त होने के लिए इनके संबंध में सच्चाई का ज्ञान होना भी आवश्यक है। कबीर ने आम जनता की इस पीड़ा का अनुभव किया और उसके अज्ञान और भोलेपन का भी। यही कारण है कि वे एक ओर तो जनता को जाग्रत करते हैं, सचेत करते हैं, उसके विवेक की आंख को खोलने का प्रयास करते हैं और दूसरी ओर तमाम तरह के धार्मिक और परंपरागत पाखंडों की भी कलई खोलते हैं। यही उनका समाज सुधारक का रूप है। कबीर ने समकालीन जीवन में परिव्याप्त जातिगत ऊँच-नीच और भेद-भाव की भावना, छुआछूत की भावना, दुराचार की समस्या, मद्यपान और माँस-भक्षण की कुप्रवृत्तियों आदि पर भी

तीव्र प्रहार किए हैं। समाज-सुधारक की दृष्टि से कबीर की उक्तियाँ इतनी अधिक मार्मिक हैं कि वे कबीर-युगीन समाज पर ही नहीं अपितु आधुनिक युग की सामाजिक कुरीतियों पर भी पूर्णतः चरितार्थ होती हैं। कबीर की सामाजिक चेतना संबंधी प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

(1) **आचरण की पवित्रता**–कबीर का जीवन सहज और सरल था। वे आचरण और कर्म की एकता पर बल देते थे। **डॉ. गोविंद त्रिगुणायत** ने उचित ही कहा है कि–

"कबीर की वाणी ने समाज के क्षेत्र में जो एक बहुत बड़ा कार्य किया, वह है–सात्विक आचरण प्रवणता का प्रचार। कबीर के युग में वासना अपना भयंकर रूप धारण करती जा रही थी। कबीर को उसका डटकर सामना करना पड़ा था। उसके लिए उन्हें स्त्रियों तक की निन्दा करनी पड़ी। ब्रह्मचर्य का उपदेश देना पड़ा।" उदाहरण के लिये, साधना में नारियों को बाधक मानते हुए उन्होंने लिखा था–

"एक कनक अरु कामिनी दुर्गम कारी दोय।"

(2) **छुआछूत का विरोध**–छुआछूत के कारण समाज अपना विकास नहीं कर पा रहा था। इसलिए कबीर ने पंडित वर्ग द्वारा छुआछूत का प्रपंच खड़ा करने की भर्त्सना करते हुए कहा था–

काहे को कीजै पांडे छोति विचारा।
छोतिहि ते उपजा सब संसारा।
हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध।
तुम कैसे बामन पांडे हम कैसे सूद।
छोति-छोति करता, तुम्ही जाए।
तै गर्भवास काहै को आए॥

कबीर की यह उक्ति कि अरे पंडो-पंडितो! तुम जिन अछूतों से घृणा करते हुए उन्हें अस्पृश्य समझते हो, तुम्हारा जन्म भी उसी वर्ग की अछूत स्त्रियों द्वारा हुआ है–छुआछूत की भावना पर करारा प्रहार करती है। कारण यह है कि मध्यकाल में तो बच्चों का जन्म अनिवार्यतः निम्न वर्ग की समझी जाने वाली दाईयों द्वारा ही कराया जाता था। इसी प्रकार उनका यह प्रश्न करना भी कि क्या हमारे और तुम्हारे रक्त के रंग में कोई अन्तर है–बड़ा प्रभावशाली है।

कबीर जाति और छुआछूत को अप्राकृतिक और अनैतिक मानते हैं और जाति के आधार पर जो असमानता और मानवीय अलगाववाद स्थायी बन चुका था, उसे भी वे अपने अकाट्य तर्कों से नकारते हैं और सहज रूप में ब्राह्मण वर्ग और सामंतीय प्रभुओं से प्रश्न पूछते हैं–

ऊँच नीच है मधिम बानी, एकै पवन एक ही पानी।
एकै मटिया एक कुंभारा, एक सभहिन का सिरजनहारा॥

ऊँच-नीच की भावना 'मधिम बानी' है क्योंकि प्रकृति ने ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं किया। जिस वायु के बिना हम जीवित नहीं रह सकते उसे उसने समान रूप से हमें वितरित किया। जल के बिना जीवन की कल्पना करना भी सम्भव नहीं; वह भी समान रूप से वितरित है। जिस माटी से यह देह निर्मित है, वह भी एक ही है और देहरूपी घड़ा बनाने वाला भी एक ही है। 'अहं ब्रह्मास्मि' का अर्थ ही यह है कि एक ही ब्रह्म सबमें व्याप्त है; तो यह ऊँच-नीच का भेद क्यों? वे और भी प्रश्न करते हैं–

यदि वास्तव में छुआछूत को माना जाए तो फिर इसे मानने वालों को किसी दूसरी दुनिया में जाकर रहना होगा क्योंकि छुआछूत की समस्या से वह बच नहीं सकेगा। क्या वह पानी छोड़ेगा? क्या वह मिट्टी के घर में रहना छोड़ेगा? क्या वह दूध का सेवन नहीं करेगा? क्या वह पवन का स्पर्श नहीं करेगा? कबीर इन सब कठोर प्रश्नों का सामना करवाते हैं और निष्कर्ष देते हुए कहते हैं कि ब्राह्मणो! यह सब मन का भ्रम है, इसे छोड़ो। परंतु सवाल यह है कि यह सब मन का भ्रम होता तो ब्राह्मण इसे छोड़ने की सोचता, यह तो एक सोचा-समझा झूठ है जो ब्राह्मणों ने खुद बोला है; यह जानते हुए भी कि यह सच नहीं है। सत्य तो यह है कि कबीर वेद जैसी किताबों को भी छोड़ने की बात कर रहे हैं क्योंकि ये सब भ्रम हैं जिन्हें ब्राह्मणों ने अटल सत्य मान रखा है।

जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ी रहन दो म्यान॥

यहाँ ज्ञान का अर्थ शास्त्र ज्ञान कदापि नहीं है। इसका अर्थ है अनुभव ज्ञान और साधु का अर्थ पाखण्डी, ढोंगी साधु नहीं है, परम्परागत और शास्त्रों का अनुसरण करने वाला साधु भी नहीं है और न ही संसार त्यागी या तपस्वी है। कबीर त्याग और भोग दोनों के विरोधी थे। वे तो अनुभव के मध्यम मार्ग, जो सुरति और निरति दोनों की अतिवादी सीमाओं से परे है, को अपनाकर सहज अनुभव ज्ञान पाने की बात करते हैं।

(3) जातिगत ऊँच-नीच का विरोध–छुआछूत का विरोध करने के साथ ही कबीर ने जातिगत ऊँच-नीच की भावना का भी खुलकर विरोध किया है। जाति-पाँति का भेदभाव भारतीय समाज पर आसमान से नहीं टपक पड़ा। वह सामन्ती-व्यवस्था के साथ उत्पन्न होता है, उसके खात्मे से ही उसके समाप्त होने की बारी आती है। भारत में सामन्ती व्यवस्था जहाँ जितनी मजबूत रही है, वहाँ जाति-पाँति का भेदभाव भी उतना ही दृढ़ रहा है। ब्रज को देखते अवध में, भोजपुरी क्षेत्र को देखते मिथिला में इस तरह का भेदभाव अधिक मिलेगा। इसका कारण यह है कि ब्रज और भोजपुरी क्षेत्र की तुलना में अवध और मिथिला सामन्ती व्यवस्था के गढ़ रहे हैं।

भारतीय समाज व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था के समानांतर 'जाति' का उद्‌भव हुआ और वर्ण व्यवस्था 'जाति' की जटिल और संकीर्ण गलियों में भटक गई। सामन्ती व्यवस्था ने इसे अपने हितों के लिए इस्तेमाल किया। समाज को भिन्न जाति और धर्म के साँचों में कैद कर दिया गया। अलगाववाद और अपरिवर्तनशीलता इसके दो स्थायी मूल्य बन गए।

एक ओर तो उन्होंने अपनी इस प्रकार की उक्तियों से मानव-मात्र की समानता का प्रचार किया कि–

"साई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय।"

तो दूसरी ओर उन्होंने बड़ी ही कटुतापूर्वक ब्राह्मणों के ब्राह्मणत्व को चुनौती देते हुए उन्हें यहां तक कह दिया कि यदि तुम वास्तव में ही हम नीची जाति के लोगों से श्रेष्ठ हो, तो फिर तुम्हारा जन्म भी हमारी तरह ही क्यों हुआ है।

(4) माँस-भक्षण तथा हिंसा का विरोध–मुसलमानों के साहचर्य के कारण हिन्दुओं में भी माँस-भक्षण की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी, जिसकी कबीर ने तीव्र भर्त्सना की है। उन्होंने इस सन्दर्भ में बड़ा ही सजीव दृष्टांत दिया है कि उस बकरी को जो पत्तियाँ खाने के रूप में जीव-हिंसा करती है (भारतीय दर्शन में पेड़-पौधों को सजीव मानने की परम्परा रही है), इस अपराध के दण्ड-स्वरूप अपनी खाल खिंचवानी पड़ती है। ऐसी दशा में वे लोग जो जीव-हिंसा करके मांस-भक्षण करते हैं, वे स्वयं ही सोच लें कि उन्हें कैसी दुर्दशा भोगनी पड़ेगी–

"बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात है, तिनकौ कौन हवाल।"

इसी प्रकार उन्होंने मुसलमानों को भी फटकारते हुए कहा था–

"दिन को रोजा रखत हैं, रात हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुशी खुदाय॥"

(5) हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य पर बल–समाज-सुधारक के रूप में कबीर का योगदान इस दृष्टि से भी बड़ा महत्वपूर्ण रहा है कि उन्होंने अपने समकालीन सामाजिक जीवन में परिव्याप्त हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की खाई को पाटने का प्रयास किया है। उन्होंने दोनों ही धर्मावलम्बियों की साम्प्रदायिक कट्टरता का विरोध और उपहास किया है।

(6) धार्मिक सुधार–कबीरकालीन समाज में धार्मिक दृष्टि से एक ओर तो वैष्णव, शाक्त, शैव, बौद्ध और जैन आदि हिन्दू-धर्मानुयायी अपने-अपने उपास्य देवों को ही सर्वोपरि मानते हुए पारम्परिक द्वेष और कलह में निमग्न रहते थे, जबकि दूसरी ओर उन्हें इस्लाम धर्म के कट्टर अनुयायियों के हाथों मुंह की खानी पड़ती थी, क्योंकि इस्लाम धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त था।

हिन्दुओं की साकारोपासना तथा मुसलमानों की एकेश्वरवाद और निराकारोपासना का किन्हीं अंशों में समन्वय सा करते हुए कबीर ने यह मध्यम मार्ग निकाला कि उन्होंने अपना परमाराध्य हिन्दुओं के 'राम' को चुना, किन्तु इसके साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया कि मेरे 'राम' दशरथ के बेटे राम से भिन्न हैं–

"दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना,
राम नाम का मरम है आना।"

इसी प्रकार उन्होंने अपने आराध्य का जो यह स्वरूप विवेचन किया है कि–

"आके मुंह माथा नहीं, नाहिं रूप सरूप"

वह निराकारोपासक मुसलमानों की धार्मिक भावना के अधिक समीप है।

धार्मिक क्षेत्र में सुधार की दृष्टि से कबीर ने विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों की रूढ़ियों की खिल्ली उड़ाने का जो क्रान्तिकारी कदम उठाया था–उसके फलस्वरूप उन्हें भी आधुनिक काल के स्वामी दयानन्द सरस्वती की भांति घोर विरोध सहन करना पड़ा था और कहा जाता है कि साखियों में इस्लाम धर्म की आलोचना करने से चिढ़कर सिकन्दर लोदी ने उन्हें हाथी से कुचलवा देने अथवा नदी में डुबवा देने की चेष्टा भी की थी।

"कबीरा खड़ा बजार में लिए लुकाठी हाथ,
जो घर जारें आपनो, सो चलै हमारे साथ।"

की गुहार लगाने वाले **"फक्कड़ कबीर"** ने किसी की भी परवाह न करते हुए स्व-काल में मौजूद सभी धार्मिक आडम्बरों की तीव्र निन्दा और उपहास किया है। उन्होंने तत्कालीन धार्मिक क्षेत्र में 96 सम्प्रदायों का उल्लेख करते हुए कहा–

"दस संन्यासी, बारह जोगी, चौदह शेख बयान,
अठारह बाम्हन, अठारह जंगम, चुबीस शेवड़ा जान।

कहना होगा कि सम्प्रदायों में उन्होंने बौद्धों, योगियों, मुस्लिम शेखों और जैनों (शेवड़ा) का भी परिगणन किया है और इन सभी सम्प्रदायों के अनुयायियों को पाखण्डों में लिप्त घोषित किया है–

"अरु भूले षट वटसन भाई, पाखण्ड भेष रहे लपटाई,
जैन बौद्ध और साकत सैना, चारवाक चतुरंग बिहूना।
जैन जीव की सुधि न जाने, पानी तोरी देहुरै आने।"

मूर्तिपूजादि बाह्याडम्बरों का विरोध–कबीर दार्शनिक दृष्टि से निराकारोपासक हैं और उनकी उपासना में भी उन्होंने सहज-समाधि पर बल दिया है–

"साधो सहज समाधि भली।"

यही कारण है कि उन्होंने हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा, सिर-मुंडाने, तिलक-छापे लगाने जैसे उन सभी धार्मिक बाह्याडम्बरों का विरोध किया है, जिनका विरोध बौद्ध सिद्ध लोग भी करते आ रहे थे।

उदाहरणार्थ, मूर्ति-पूजा की अपेक्षा कबीर ने चक्की की पूजा को उत्तम बताते हुए कहा है–

"पाहन पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूँ पहार।
या ते तो चक्की भली, पीस खाय संसार।"

इसी प्रकार शीश मुंडाने का विरोध करते हुए उनके उद्‌गार हैं कि–

"मूंड मुंडाये हरि मिलै सब कोई लेई मूंडाये।
बारम्बार के मूड़ते भेड़ न बैकंठ जाये।"

बांग लगाने आदि आडम्बरों का विरोध–हिन्दुओं के बाह्याडम्बरों का विरोध करने के साथ-साथ कबीर ने इस्लाम धर्म के बाह्याडम्बरों का विरोध करके भी अपनी निर्भीकता का परिचय दिया है। उदाहरणार्थ, उनकी यह व्यंग्योक्ति देखिए कि अरे मौलवियो! क्या तुम्हारा खुदा बहरा हो गया है जो तुम उसे मस्जिद पर चढ़कर पुकार रहे हो–

"कंकर पत्थर जोरि के, मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय॥"

उन्होंने मुसलमानों द्वारा पांच बार नमाज पढ़ने की प्रथा की असारता दिखाते हुए कहा है–

"यह सब झूठी बन्दगी, विरथा पंच नमाज।"

इसी प्रकार उन्होंने दिन में रोजा रखने और रात्रि को गाय का वध करने की प्रथा की निन्दा करते हुए मुसलमानों को यह कहकर फटकारा है–

"दिन को रोजा रखत हैं, रात हनत हैं गाय,
यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुशी खुदाय।"

उन्होंने मुसलमानों द्वारा सुन्नत या खतना कराने की धार्मिक प्रक्रिया का भी कड़ा विरोध किया है।

हिन्दुओं में कबीर के आक्रोश के पात्र पंडित लोग रहे हैं, तो मुसलमानों में उन्होंने मौलवियों को आड़े हाथों लिया है; जैसे–

"मुल्ला करि ल्यौ न्याव खुदाई,
इति धि जीव का भरम न आई।"

अन्ततः कहा जा सकता है कि कबीर ने समकालीन जन-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में परिव्याप्त अन्धविश्वासों, रूढ़ियों, कुरीतियों और अनाचारों का तीव्र विरोध करके धार्मिक-सामाजिक वातावरण में सुधार लाने का प्रयास किया है। ऐसी दशा में **डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी** के यह उद्‌गार पूर्णतः सारगर्भित प्रतीत होते हैं कि–

"मिथ्याडम्बरों के प्रति प्रतिक्रिया कबीर का जन्मजात गुण था। वे वही करते थे जिसे उनकी आत्मा सत्य तत्त्व की कसौटी पर परख कर युक्तिसंगत स्वीकार करे। किन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि वे हठवादी थे। वास्तव में सहज सत्य को सहज ढंग से वर्णित करने में कबीर अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानते।"

◆◆◆

(च) कबीर के दार्शनिक विचार

6. कबीरदास के दार्शनिक विचारों की विवेचना कीजिए। **(Imp.)**

अथवा

कबीर की दार्शनिक चेतना स्पष्ट करें।

उत्तर–कबीर के दार्शनिक विचार–कबीर ने अपने दार्शनिक विचारों को अत्यन्त सरल तथा सीधी-सादी भाषा में जनता के सामने प्रस्तुत किया है। इसी कारण कबीर के विचारों की ओर शिक्षित वर्ग उतना आकृष्ट नहीं होता, जितना कि अशिक्षित एवं अल्पशिक्षित वर्ग होता है। कबीर के इन विचारों में जन-साधारण के हृदय तक पहुँचने की अपूर्व क्षमता है, क्योंकि कबीर ने दर्शन के गूढ़ातिगूढ़ सिद्धांतों एवं विचारों को भी अत्यंत सरल एवं सुबोध बनाकर जनता के समक्ष रखा है और रात-दिन व्यवहार में आने वाले पदार्थों के उदाहरणों द्वारा उन्हें समझाने की चेष्टा की है।

कबीर स्वयं कोई पढ़े-लिखे व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने स्वयं ही कहा है कि **'मसि कागद छूयौ नहीं कलम गही नहिं हाथ।'** यही कारण है कि उनके दार्शनिक विचारों में सुशिक्षित विद्वानों जैसी व्यवस्था नहीं है, अपितु उन्होंने सुन-सुनाकर जो ज्ञान अर्जित किया था, उसी को अपनी अटपटी बानी में व्यक्त कर दिया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में–**"कबीरदास कभी तो अद्वैतवाद की ओर झुकते दिखाई देते हैं और कभी एकेश्वरवाद की ओर, कभी वे पौराणिक सगुण भाव से भगवान को पुकारते हैं और कभी निर्गुण भाव से। असल में उनका कोई स्थिर तात्त्विक सिद्धान्त नहीं था।"**

तात्त्विक दृष्टि से तुलसी के दार्शनिक विचारों में भी सुस्पष्टता का अभाव है, अतः कबीर को ही इस दृष्टि से दोषी नहीं कहा जा सकता। उन्होंने अपने गीतों के सम्बन्ध में लिखा है–

"तुम्ह जिन जानौ गीत है, यहु निज ब्रह्म विचार,
केवल कहि समुझाइया आतम साधन रे।"

कबीर के दार्शनिक विचारों के सम्बन्ध में **आचार्य क्षितिज मोहन** ने उचित ही कहा है–

"कबीर की आध्यात्मिक क्षुधा और आकांक्षा विश्व-ग्रासी है। वह कुछ भी छोड़ना नहीं चाहती, इसलिए वह ग्रहणशील है, वर्जनशील नहीं। इसलिए उन्होंने हिन्दू, मुसलमान, सूफी, वैष्णव, योगी, प्रभृत्ति, सब साधनाओं को जोर से पकड़ रखा है।"

कबीर की इस ग्रहणशील प्रवृत्ति ने नाना धर्म-साधनाओं के उत्तमोत्तम तत्वों को ग्रहण करके अपनी जिस विचारधारा का प्रतिपादन किया है, उसमें स्वभावतया ही किंचित् अस्पष्टता का अभिनिवेश हो गया है।

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के शब्दों में–**"कबीर का ब्रह्म-निरूपण अलग ढंग का होने पर भी अनेक धर्मों की ब्रह्म-भावना से प्रभावित है। जहाँ पर उन्होंने उपनिषदों की ब्रह्म-निरूपण की शैली को अपनाया है, वहीं उन्होंने योगियों के द्वैताद्वैत विलक्षण-वाद के ढंग पर भी ब्रह्म का वर्णन किया है। उनके ब्रह्म-निरूपण पर बौद्धों, सिद्धों और योगियों के शून्यवाद की धूमिल छाया भी देखी जा सकती है।"**

सहजवादियों के सहज ब्रह्मवाद से भी वे प्रभावित हैं। वेदों के वर्णित योग में निर्देशित भर्तृहरि द्वारा निरूपित शब्द-ब्रह्म के भी वर्णन उनमें एक (एकाधिक) बार आए हैं। सूफियों के नूरवाद, इश्कवाद आदि का भी पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है।

इस प्रकार हम संक्षेप में कह सकते हैं कि कबीर का ब्रह्म-निरूपण वैदिक एकेश्वरी अद्वैतवादी होते हुए भी सर्वात्मवाद औ परात्परवाद (ईश्वर) के अधिक समीप है। किन्तु अनेक स्थलों पर उसका स्वरूप अन्य विविध धर्मों की ब्रह्म-भावना से भी सँवा गया है।"

कबीरदास के दार्शनिक विचारों का विवेचन निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत किया जा सकता है–

(1) ब्रह्म संबंधी विचार–कबीर ने एक ऐसे ब्रह्म की कल्पना की है, जो निर्गुण एवं सगुण दोनों से परे है। जिसके न त कोई मुख है, न मस्तक है, न रूप है और न कुरूप, अपितु जो पुष्प की सुगन्ध से भी पतला होने के कारण अत्यंत सूक्ष्म है। व मन एवं वाणी से अगोचर है, अलख एवं निरंजन है। उसका वर्णन नहीं हो सकता, वह केवल अनुभव की ही वस्तु है। वह अनन्त ज्योति स्वरूप है तथा नाम, ग्राम आदि से सर्वथा रहित है। यद्यपि उसे ततु, परमतत्व, अलख, अरूप, अनाम, सबद, ध्यान, अनन्त उनमन, हरि, राम, शिव, ब्रह्म, आदि कितने ही नामों से अभिहित किया जाता है, तथापि कोई भी नाम उसका ठीक-ठीक बोध नहीं करा पाता, क्योंकि वह अरूप एवं अनाम है, निरंजन एवं निराकार है तथा अगम एवं अगोचर है। वह अनन्त तेजयुक्त है और उसका तेज सूर्यों की माला के तुल्य प्रतीत होता है। वह स्वयं प्रकाश-रूप है। इसी से सूर्य एवं चन्द्र के बिना ही वह अनन्त प्रकाश-युक्त रहता है। उस ब्रह्म का तेज कैसा है, इसका वर्णन करना सर्वथा असम्भव है।

(2) जीव संबंधी विचार–कबीर ईश्वर को घट-घट में व्याप्त मानते हैं। आत्मा और परमात्मा में बूंद और समुद्र जैसा सम्बन्ध मानते हुए उन्होंने कहा है–पानी से भरे जलाशय में रखे घड़े के भीतर और बाहर जैसे जल-ही-जल होता है और घड़े के टूट जाने पर घट के भीतर का पानी जलाशय के जल में मिल जाता है, उसी प्रकार इस नश्वर मानव-शरीर के नष्ट होने पर, जिसे कबीर पानी के बुदबुदे की भाँति क्षणभंगुर मानते हैं, आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। कबीर ने जीवात्मा का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार नहीं किया है, अपितु उसे परमतत्त्व का ही एक लघु रूप माना है–**"जीवा को राजा कहै माया के आधीन।"** इसी कारण कबीर ने जीवात्मा को न तो मनुष्य बताया है और न देव, न इसे योगी और यती कहा है और न इसे अवधूत बताया है, न इसे माता कहा है और न पुत्र, न ही गृही बताया है और न उदास, न इसे राजा कहा है और न रंक, न इसे ब्राह्मण कहा है और न बढ़ई, न इसे तपस्वी कहा है और न शेख, अपितु इसे राम का अंश मानकर यह घोषित किया है कि जिस प्रकार कागज के उपर से स्याही का चिह्न नहीं मिटता, उसी प्रकार यह भी नित्य एवं निर्विकार रूप से विद्यमान रहता है। कबीर का मत है कि केवल माया के वशीभूत होकर ही जीवात्मा संसार में जन्म-मरण के चक्कर में पड़ती है, वैसे यह परम तत्व का ही रूप है। वह परमात्मा इस जीवात्मा में निरन्तर अद्वैत भाव से विद्यमान रहता है। लेकिन जीवात्मा भ्रम का शिकार होकर इस दृश्य जगत में भटकती रहती है, परन्तु जैसे ही यह भ्रम दूर हो जाता है, वैसे ही यह जीवात्मा स्वयं को ब्रह्म समझने लगती है, फिर उसे 'हम सब माहि सकल हम माँही' का आभास होने लगता है और हममें और दूसरा नहीं का अनुभव होने पर वह पूर्ण अद्वैत भाव में स्थित हो जाती है। कबीर ने जीवात्मा एवं परमात्मा के अद्वैत भाव को अनेक स्थानों पर प्रदर्शित किया है तथा बूँद और समुद्र का उदाहरण देकर यह स्पष्ट घोषित किया है कि ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर आत्मा परमात्मा में और परमात्मा आत्मा में पूर्णतः लीन हो जाता है और फिर दोनों का कोई अलग अस्तित्व नहीं रहता है।

(3) जगत संबंधी विचार–डॉ. सरनाम सिंह शर्मा के शब्दों में–**"अद्वैतवादियों की भांति कबीर जगत की पारमार्थिक सत्ता को स्वीकार नहीं करते। वे जगत को स्वप्निल, नश्वर, असत्य आदि नामों से अभिहित कराते हुए भी उसके साथ मनुष्य के सम्बन्धों पर समुचित विचार करते हैं। उन्होंने अपने समय में जिस राजनैतिक और सामाजिक उथल-पुथल को देखा, उससे उनके मन में बड़ा आन्दोलन हुआ।"**

इससे स्पष्ट है कि उन्होंने जगत के व्यावहारिक स्वरूप को स्वीकार किया। किन्तु व्यक्ति और समाज इन दोनों की शान्ति के लिये शरीर और जगत के प्रति 'आसक्ति' को कम करना या विरक्ति पैदा करना भी आवश्यक था। यह तभी सम्भव था जब जगत को हर प्रकार से दुर्बल सिद्ध किया जाता और उसके विरोध में किसी ऐसी 'सत्ता' को स्वीकृति दी जाती जो निराकार, निर्विकार एवं अनन्त है। इस सम्बन्ध में कबीर-वाणी ने 'अद्वैतवाद' को प्रमुख प्रोत्साहन दिया। अद्वैतवाद के आधार पर उन्होंने जगत का ऐसा 'स्वरूप' प्रस्तुत किया जिसके प्रति 'आसक्ति' के लिये कोई गुंजाइश ही बाकी नहीं थी।

सृष्टि-सम्बन्धी जिज्ञासा, यानी सृष्टि का विकास कैसे हुआ, यह तथ्य चिन्तकों को प्राचीन काल से ही नाना प्रकार की विचिकित्साओं में निमग्न कर रहा है और तत्वचिन्तकों ने उसके विषय में अनेक प्रकार के मत व्यक्त किए हैं। **सृष्ट्युत्पत्ति** सम्बन्धी जिज्ञासा तत्त्वचेता कबीर के अंतर्मन में भी अनेक बार उठी है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

कबीर इस चित्रमय नाना रूपात्मक जगत् के अस्तित्व (सत्ता) को वास्तविक न मानकर, उसके चित्रकार अर्थात् रचयिता को ही सत्य मानते हैं–

"जिनि यहु चित्र बनाइए, सो सांचा सुतधारि।
कहै कबीर ते जन भले, चित्रवंतहि लेहिं विचारि।"

प्रकृति या जगत को भ्रम या असत्य मानते हुए उन्होंने यह विचार व्यक्त किया है कि इस प्रकृति की स्थिति ब्रह्म-रूपी जल से बने हिम के समान है, जो पुनः उसी में निमग्न हो जाता है।

कबीर की दृष्टि में जगत का भी कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। केवल माया के कारण इसकी सत्ता दृष्टिगोचर होती है, वैसे यह सर्वथा मिथ्या है और इस पर नाम तथा रूप का आरोप होने के कारण यह सत्य-सा दिखाई पड़ता है, क्योंकि जिस तरह स्वर्ण से अनेक आभूषण बनते हैं, उसी तरह जगत के इन समस्त नामरूपात्मक पदार्थों की उत्पत्ति भी उसी ब्रह्म से होती है और अन्त में ये सभी पदार्थ उसी ब्रह्म में समा जाते हैं। इसी तरह यह सम्पूर्ण नामरूपात्मक जगत एक घड़े के समान है, जो ब्रह्म रूपी जल में रखा हुआ है और अन्दर तथा बाहर वही एक ब्रह्म रूपी जल भरा हुआ है। किन्तु जैसे ही यह घड़ा फूटता है और इसका जल बाहर के जल में मिल जाता है, वैसे ही यह नामरूपात्मक जगत भी अंत में उसी ब्रह्म में लीन हो जाता है। इसी कारण कबीर ने जगत को असत्य एवं मिथ्या बताते हुए 'दुनिया भाँडा दुःख का' कहकर इसे दुःख का घर घोषित किया है। उन्होंने **'यह ऐसा संसार है, जैसा सेंबल फूल'** कहकर इसकी नश्वरता की ओर संकेत किया है और **'दिवस चारि का पेषणां, विनसि जाइगा काल्हि'** कहकर इसकी क्षणभंगुरता की घोषणा की है। इस प्रकार कबीर ने अद्वैत वेदान्त-दर्शन की भाँति **विवर्तवाद** का आश्रय लेकर माया के अध्यारोप द्वारा जगत की ऐसी स्थिति स्वीकार की है जो सर्वथा मिथ्या है और तनिक भी सत्य नहीं है। ब्रह्म का ज्ञान होते ही माया का आवरण हट जाता है और फिर उस ब्रह्म की ही सत्ता सर्वत्र शेष रह जाती है।

(4) माया संबंधी विचार–कबीर ने अद्वैतवादियों की भांति माया की घोर निन्दा करते हुए उसे ऐसी ठगिनी बताया है जो त्रिलोक के देव-मुनि और नरों को पथभ्रष्ट तथा दूषित करती है। केवल यही नहीं, उसके प्रभाव से कीट-पतंगे और जलचरादि भी नहीं बचते। माया को महाठगिनी घोषित करते हुए एक पद में कबीर ने यह भाव व्यक्त किया है कि उसने (माया ने) विष्णु, शिव, योगी, राजा, धनी, निर्धन, किसी को नहीं छोड़ा है, लेकिन साहब का बन्दा होने के कारण वह मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकी है।

उन्होंने माया को ऐसी पापिन बताया है जो हरि-स्मरण में बाधक बनती है–

"कबीर माया पापिनी हरि से करै हराम।
मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम।"

निम्नलिखित दोहे में कबीर ने माया-पाश को काटने में अपने सफल रहने का वर्णन किया है–

"कबीर माया पापिनी, फन्द लै बैठी हाटि।
सब जग तो फंदे पड्या, गया कबीरा काटि।"

अंततः कहा जा सकता है कि कबीर के दार्शनिक विचारों पर अधिकांशतः वेदान्त तथा सिद्धों (नाथों, सहजयानियों और निरंजनियों) की मान्यताओं का प्रभाव रहा है, जबकि उनपर वैष्णवों और सूफियों की दार्शनिक मान्यताओं का भी आंशिक प्रभाव अवश्य मौजूद रहा है। उनके दार्शनिक विचार अपने इस दोहे के पूर्णतः अनुकूल हैं कि–

साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाई
सार-सार को गहि रहे थोथा देई उड़ाई।

अर्थात् उन्होंने अपने समकालीन प्रायः सभी धार्मिक सम्प्रदायों के दर्शनों के सार तत्व को अपनाकर अपनी विचारधारा का निर्माण किया है।

कबीर ने उस माया को परब्रह्म की एक ऐसी रहस्यमय शक्ति माना है जो विश्वमयी नारी के रूप में प्रकट होकर सम्पूर्ण जीवों को ठगती एवं फँसाती रहती है। यह ऐसी ठगिनी है कि सदैव त्रिगुणमयी फाँस हाथ में लिए रहती है और बड़ी मीठी वाणी बोलती है। इस ठगिनी का परित्याग करने के लिये चाहे कोई लाख चेष्टा करे, फिर भी यह उसका पीछा नहीं छोड़ती है। यह जल, थल और आकाश में सर्वत्र व्याप्त है तथा नानारूप धारण करके जप-तप एवं योग-साधना में विघ्न डालती है। यह बड़ी डायन है और काम, क्रोध, मोह, मद और मत्सर नामक इसके पाँच पुत्र हैं, जो जीवों को सदैव सताते हैं और उनको नाना प्रकार नाच नचाते रहते हैं। इसे कबीर ने 'रमैया की जोरू' कहा है, जिसने सारे संसार को लूट लिया है। यह बड़ी मीठी है, इसी कारण इसे वेदान्त में अनिर्वचनीय कहा गया है। कबीर ने भी इसे **आंगणि बेलि अकासि फल, अणब्यावर का दूध, संसा सींग की धुनहंडी,**

रमै बाँझ का पूत आदि कहकर इसकी अनिर्वचनीयता की ओर संकेत किया है। साथ ही इसके स्वरूप का विवेचन करते हुए बताया है कि इसे आगे-आगे से जितना नष्ट किया जाता है, पीछे-पीछे से यह उतनी ही हरी होती जाती है। यह माया रूपी बेलि ऐसी विचित्र है कि यदि इसे काटो तो यह और हरी-भरी हो जाती है और यदि सींचो तो कुम्हला जाती है। इसी कारण त्रिगुणमयी माया के गुणों का वर्णन करना सर्वथा कठिन है। इस प्रकार कबीर ने **कीड़ी कुंजर में रही समाई** आदि कहकर माया को सर्वत्र व्याप्त बताते हुए इसे साधना-पथ में अनेक विघ्न डालने वाली सिद्ध किया है और बताया है कि जब तक माया से छुटकारा नहीं मिलता तब तक जीव मुक्त नहीं होता, क्योंकि यही माया बुद्धि में भेद उत्पन्न करती है, मन को भ्रमित करके उसे विषयों की ओर प्रवृत्त कर देती है। केवल सतगुरु की कृपा से ही इससे मुक्ति मिल सकती है और माया से मुक्ति मिलने पर ही जीवात्मा एवं परमात्मा का मिलन होता है। इस तरह कबीर ने माया को वेदान्त की अविद्या की ही भाँति निरूपित किया है, जो **त्रिगुणात्मिकता** है, संसार को भ्रमित करने वाली है तथा जो कनक और कामिनी के रूप में प्रकट होकर जीवात्मा को परमात्मा से पृथक् करती रहती है।

सारांश यह है कि कबीर के दार्शनिक विचारों पर अद्वैतवादी वेदान्त दर्शन का अत्यधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसी कारण कबीर ने ब्रह्म और जीव, ब्रह्म और जगत, सभी की अद्वैतता का प्रतिपादन किया है और माया की अनिर्वचनीयता का उल्लेख करते हुए जगत के मिथ्यात्व को अत्यन्त बढ़ा-चढ़ाकर बताया है। किन्तु शंकराचार्य की भाँति कबीर ने भी जगत को व्यावहारिक दृष्टि से सत्य माना है, किन्तु वस्तुतः वह मिथ्या ही है, क्योंकि जगत में कोई भी पदार्थ सदैव विद्यमान नहीं रहता। कबीर के उक्त दार्शनिक विचारों पर उपनिषदों का भी प्रभाव पड़ा है, इसी कारण वृहदारण्यक उपनिषद के **'आत्मा वा अरे'** द्रष्टव्य की भाँति कबीर ने ब्रह्म को बाहर ढूंढने की बजाय अपने भीतर ही ढूंढने का आग्रह किया है। आत्म ब्रह्म की भाँति कबीर ने भी आत्मा को ही परमात्मा बताया है और दोनों में एकत्व स्थापित किया है। **'अहं ब्रह्मास्मिः'** की भाँति कबीर ने भी प्रत्येक जीव को परमात्मा का ही रूप घोषित किया है और छांदोग्य उपनिषद के **'सर्व खल्विदं ब्रह्म'** की भाँति कबीर ने भी सम्पूर्ण दृश्य-जगत को ब्रह्म बताया है।

◆◆◆

(छ) कबीर का रहस्यवाद

7. कबीरदास के रहस्यवाद की विशेषताएं बताइए।

अथवा

रहस्यवाद के दृष्टिकोण से कबीर के काव्य की विवेचना कीजिए।

उत्तर–कबीर का रहस्यवाद–कबीर के रहस्यवाद को समझने के पूर्व रहस्यवाद के स्वरूप से परिचित होना आवश्यक है। रहस्यवाद के स्वरूप को विभिन्न विद्वानों ने निम्नांकित रूप में परिभाषित किया है–

डॉ. श्यामसुन्दरदास–"चिन्तन के क्षेत्र का ब्रह्मवाद कविता के क्षेत्र में जाकर कल्पना और भावुकता का आधार पाकर रहस्यवाद का रूप पकड़ता है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–"ज्ञान के क्षेत्र में जिसे अद्वैतवाद कहते हैं, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद कहलाता है।"

किन्तु आचार्य शुक्ल के मत से असहमति व्यक्त करते हुए **डॉक्टर सरनाम सिंह शर्मा** ने यह मत व्यक्त किया है–

"यह कहना कुछ विशेष समीचीन नहीं दिखाई पड़ता है कि जो ज्ञान के क्षेत्र में अद्वैतवाद कहलाता है वही भावना के क्षेत्र में रहस्यवाद कहलाता है, क्योंकि भावना के अतिरिक्त रहस्यवाद का सम्बन्ध अभिव्यक्ति के एक विशेष रूप से भी तो है जिसमें शब्द का अपना एक अर्थ और संकेत होता है।"

डॉ. रामकुमार वर्मा के शब्दों में–**"रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है, और यह सम्बन्ध यहां तक बढ़ता जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर शेष नहीं रह जाता। जीवात्मा की सारी शक्तियाँ इसी शक्ति के अनन्त वैभव और प्रभाव से ओत-प्रोत हो जाती हैं। जीवन में केवल उसी दिव्य शक्ति का तेज अन्तर्निहित हो जाता है और जीवात्मा अपने अस्तित्व को इस प्रकार से भुला-सा जाती है। एक भावना, एक वासना हृदय में प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है और यह भावना सदैव जीवन के अंग-प्रत्यंगों में प्रकाशित होती रहती है। यही दिव्य संयोग है।"**

डॉ. सरनाम सिंह शर्मा का मत है कि–

"विशेष अनुभूति की प्रतीकाश्रित अभिव्यक्ति साहित्य में 'रहस्यवाद' नाम पाती है। रहस्यवाद कोई दार्शनिकवाद न होकर वस्तुतः साहित्यिकवाद है जिसका लक्षण है-प्रेमाश्रयी अद्वैतानुभूति एवं प्रतीकाश्रयी सांकेतिक अभिव्यक्ति।"

जयशंकर प्रसाद के शब्दों में–**"काव्य में आत्मा की संकल्पनात्मक मूल अनुभूति की मुख्य धारा रहस्यवाद है।"**

वस्तुतः रहस्यवाद शब्द काव्य की एक धारा-विशेष को सूचित करता है। वह प्रधानतः उसमें लक्षित होने वाली उस अभिव्यक्ति की ओर संकेत करता है जो विश्वात्मक सत्ता की प्रत्यक्ष, गंभीर एवं तीव्र अनुभूति के साथ सम्बन्ध रखती है। अतएव रहस्यवाद शब्द जिस प्रकार काव्यगत वस्तु के अनुसार सार्थक है, उसी प्रकार उसे विधान की दृष्टि से भी उपयुक्त कहा जा सकता है और उसकी यही विशेषता उसे अन्य काव्य-धाराओं से अलग भी करती है।

अभिप्राय यह है कि प्रकृति के कण-कण में उस अज्ञात सत्ता की झलक पाना, आत्मा को परमात्मा का अंश समझकर उससे सम्मिलन की आकांक्षा व्यक्त करना, उस अज्ञात सत्ता के स्वरूपोद्घाटन-सम्बन्धी भाव व्यक्त करना आदि साहित्य-क्षेत्र में रहस्यवादी काव्य कहलाता है।

जहाँ तक कबीर की रहस्य-भावना का प्रश्न है, वह अन्य कवियों की रहस्य-भावना से कुछ अधिक रहस्यमयी है, जिसका कारण यह है कि उनके दार्शनिक चिन्तन पर वेदान्त, नाथ और सहज सम्प्रदाय तथा सूफी विचारधारा का प्रभाव रहा है। इन प्रभावों के कारण तथा कागज की लेखी के स्थान पर स्वानुभूति को अधिक महत्व देने के कारण, कबीर के ब्रह्म, ईश्वर या निराकार राम का स्वरूप और भी अधिक रहस्यमय हो गया है। उनके रहस्यवाद के विषय में **डॉ. श्यामसुन्दर दास** ने कहा है–

"रहस्यवादी कवियों में कबीर का आसन सबसे ऊँचा है। शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्हीं का है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निम्नांकित मत व्यक्त किया है–

"कबीर में जो रहस्यवाद है, वह बहुत कुछ उन पारमार्थिक संज्ञाओं के आधार पर है जो वेदान्त और हठयोग में निर्दिष्ट हैं; पर जायसी ने जिस रहस्यवाद का आभास दिया है, उसके संकेत स्वाभाविक एवं मर्मस्पर्शी हैं।"

इसी प्रकार **डॉ. रामकुमार वर्मा** के अनुसार–

"कबीर ने अपने रहस्यवाद में अद्वैतवाद और सूफीमत की गंगा-जमुना एक साथ ही बहा दी है।"

डॉ. त्रिगुणायत ने यह मत व्यक्त किया है कि–**"कहीं पर उनमें सूफियों के प्रेम-मार्ग का निरूपण मिलता है, कहीं पर हठ-योगियों के पारिभाषिक शब्दों एवं प्रक्रियाओं का रहस्यात्मक वर्णन है, कहीं वे सिद्धों की संध्या भाषा शैली का अनुसरण करते हैं और कभी उपनिषदों के ढंग पर रहस्यात्मक शैली में तत्त्व का प्रतिपादन।"**

उस परम सत्ता के वास्तविक रहस्य का उद्घाटन कर पाना संभव नहीं है, वह तो गूंगे के गुड़ की भांति अनुभवगम्य ही होता है। कबीर ने भी ऐसा ही भाव व्यक्त किया है–

**"पार ब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।
कहिबे कूं शोभा नहीं देखा ही परवान।"**

अथवा–

**"अकथ कहानी प्रेम की कछू कही ना जाये।
गूंगे केरी सरकरा खावै और मुसकाये।"**

वह सत्ता ऐसी अनूठी है कि उसकी किसी से समता स्थापित करके या दृष्टांत देकर इसके स्वरूप का उद्घाटन नहीं किया जा सकता–

"कहई कबीर पुकारि के अद्भुत कहिए ताहि।"

उपर्युक्त विद्वानों के मतों के आधार पर कबीर के रहस्यवाद की निम्नांकित विशेषताएँ मानी जा सकती हैं–

(1) प्रेम की तीव्रता–कबीरदास के रहस्यवाद की एक प्रधान विशेषता यह है कि उसमें सूफियों के समान प्रेम का तत्त्व दिखाई देता है। उनका यह प्रेम अत्यन्त कोमल, निर्मल, निष्कपट और आत्मिक है।

(2) आध्यात्मिकता–कबीर की रहस्यवादी उक्तियों में सर्वत्र आध्यात्मिक तत्व की प्रधानता दिखाई देती है।

(3) चेतना–रहस्यवाद में साधक के लिये यह आवश्यक बताया गया है कि वह सदैव जाग्रत रहे। यदि वह चेतनाहीन हो गया, तो परमब्रह्म से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। इसलिए कबीर ने अपने को सदैव जाग्रत रखने का प्रयत्न किया है–

> **"मन रे जागत रहिए भाई।**
> **गाफिल होई वस्तु मन खोचे चोर घुसे घर जाई।'**

(4) जिज्ञासा का भाव–रहस्यवाद जिज्ञासा की नींव पर खड़ा हुआ है। इसमें साधक के मन में ब्रह्म के प्रति कौतूहल और जिज्ञासा का भाव होता है। कबीर दास के रहस्यवाद में वह पूर्णरूप से दिखाई देता है। उन्हें यह जिज्ञासा है कि ब्रह्म कैसा है व कहाँ है।

(5) व्यापकता–कबीरदास के रहस्यवाद को किसी विशेष प्रकार के रहस्यवाद की कोटि में नहीं रखा जा सकता है। उसमें सभी प्रकार के रहस्यवाद की सुन्दर अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। कबीरदास का प्रधान उद्देश्य सत्य का उद्घाटन करना है। अतः उन्होंने विविध प्रकार से अपनी रहस्यवादी विचारधारा को व्यापकता प्रदान करने का प्रयत्न किया है।

(6) प्रवृत्यात्मक–कबीरदास के रहस्यवाद का एक प्रमुख लक्षण यह है कि उसमें एकान्तिकता न होकर प्रवृत्यात्मकता है। इसका कारण बताते हुए डॉ. **गोविन्द त्रिगुणायत** ने लिखा है–**"उनके रहस्यवाद की प्रवृत्यात्मकता का प्रमुख कारण यही है कि वे कोरे रहस्यवादी ही नहीं थे, उच्चकोटि के विचारक, गृहस्थ, सुधारक और उपदेशक भी थे।"**

(7) सर्वात्मवाद–कबीर के रहस्यवाद में सर्वात्मवाद का भाव भी सजीव हो उठा है। वह भाव उपनिषदों और गीता में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। इस भाव की अभिव्यक्ति के कारण के विषय में डॉ. **श्यामसुन्दर दास** ने लिखा है–**"जिज्ञासु जब ज्ञानी की कोटि को पहुंचकर कवि भी होना चाहता है तब तो अवश्य ही वह इस रहस्य की ओर झुकता है कि चिंतन के क्षेत्र का ब्रह्मवाद कविता के क्षेत्र में जाकर कल्पना और भावुकता का आधार पाकर इस रहस्यवाद का रूप पकड़ता है। सत्यवादी कवि के रहस्योभावी मानस में संसार उसी रूप में प्रतिबिम्बित नहीं होता जिस रूप में साधारण मनुष्य उसे देखता है। वह परमात्मा के साथ सारी सृष्टि का अखण्ड सम्बन्ध देखता है।"**

(8) बुद्धि और भावना का सम्बन्ध–कबीरदास के रहस्यवाद का एक गुण यह भी है कि उसमें हृदय और बुद्धि, दोनों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

(9) महत्व प्रदर्शन–कबीर ने अपने रहस्यवाद में अव्यक्त सत्ता की श्रेष्ठता, गुरुता और महत्ता पर विशेष बल दिया है। यथा–

> **"सबै रामायण में किया, हरि सा और न कोई।**
> **तिल इस घट में संचरे, तौ सब तन कंचन होई॥"**

(10) शाश्वत मिलन का भाव–कबीर के रहस्यवाद में अव्यक्त सत्ता से मिलन का शाश्वत और चिन्तन भाव परिलक्षित होता है।

(11) रहस्यवाद के विविध प्रकार–कबीर के काव्य में रहस्यवाद के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। उन्होंने साधनात्मक, अभिव्यक्तिमूलक, भावात्मक और पारिभाषिक शब्दों से प्रकट होने वाले चार प्रकार के समन्वय का अपने काव्य में निरूपण किया है।

(12) विरह का भाव–सन्त कवि कबीर के रहस्यवाद की प्रधान विशेषता है–विरह भावना की प्रधानता। विरह से कबीर को अमिट स्नेह है। वे विरह से हीन हृदय को श्मशान की तरह मानते हैं।

(13) भारतीय और विदेशी प्रेम पद्धतियों का समन्वय–कबीर के रहस्यवाद की एक विशेषता यह है कि उसमें भारतीय और विदेशी प्रेम पद्धतियों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। इस विषय में प्रसिद्ध आलोचक **डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना** का यह मत द्रष्टव्य है–**"कबीर के रहस्यवाद में भारतीय एवं विदेशी दोनों ही प्रेम पद्धतियों का समावेश होने के कारण एक ओर वेदान्त के अद्वैतवाद के दर्शन होते हैं, तो दूसरी ओर ईसाई सन्तों तथा सूफी रहस्यवादियों की भाँति आत्मा और परमात्मा का मिलन पति-पत्नी के रूप में भी दृष्टिगोचर होता है।"**

8. कबीरदास की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए। **(Most Imp.)**

अथवा

कबीर के अभिव्यक्ति पक्ष पर विचार कीजिए।

उत्तर–कबीर की भाषा शैली–हम जानते हैं कि काव्य के दो पक्ष होते हैं–(i) भाव पक्ष तथा (ii) अभिव्यक्ति पक्ष। भाव पक्ष का संबंध जहाँ काव्य में व्यक्त संदेश, शिक्षा, उपदेश आदि से होता है, वहीं अभिव्यक्ति पक्ष का संबंध अपनी बात को उचित भाषा एवं शैली में कहने के ढंग से होता है। अभिव्यक्ति पक्ष की मजबूती के अभाव में भाव पक्ष प्रायः मर्माहत हो जाता है। कबीरदास भले ही अनपढ़ एवं निरक्षर थे, परंतु अपनी बात को बड़े मुखर रूप में कहने में वे सिद्धहस्त थे। कबीर को सन्त-काव्यधारा का प्रवर्तक माना जाता है। इन्होंने देश के कोने-कोने में भ्रमण करते हुए साहित्य रचना की। इनका काव्य इनके अनुभवों का परिणाम है। **'मसि कागद छुऔ नहीं कलम गस्यौ नहिं हाथ'** कहकर इन्होंने अपनी निरक्षरता का परिचय दिया है। निरक्षर होने के कारण इनकी काव्य कला में कोई चमत्कार मौजूद नहीं है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने इनकी भाषा को **'सधुक्कड़ी भाषा'** कहा है। कुछ विद्वानों ने इनकी भाषा को खिचड़ी भाषा भी कहा है। **डॉ. रामकुमार वर्मा** कबीर की भाषा को **'अपरिष्कृत'** मानते हुए मुख्यतः तीन भाषाओं से प्रभावित मानते हैं–**पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी** और **पंजाबी**। कुछ विद्वानों ने कबीर की भाषा का किंचित् गम्भीरता से अध्ययन किया है, किन्तु वे भी किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके हैं।

कबीर की भाषा में, उनके भ्रमणशील स्वभाव के कारण विभिन्न भाषाओं तथा बोलियों की अकूत शब्द-सम्पदा है। उदाहरणार्थ–

संस्कृत के शब्द – अहंकार, जलनिधि, त्वम, हिम आदि।

अरबी भाषा के शब्द – करीम, खुमार, तनहा, दारू, नौबत, फरमान, रोजा आदि।

उर्दू भाषा के शब्द – खुदा, बन्दा, अल्लाह, मुल्ला, हुनर आदि।

पंजाबी – अंखड़ियाँ, जीभड़ियाँ आदि।

बाबू श्यामसुन्दर दास ने कबीर की काव्यकला के बारे में लिखा है–**"उन्हें काव्यशास्त्र का ज्ञान न था। अलंकार, छन्द, बिम्ब, प्रतीक, शब्द-शक्ति, वृत्ति, गुण आदि की व्याख्या करने में वे सक्षम न थे। इसके बावजूद उनके काव्य में इन सबका एक स्वाभाविक रूप स्पष्ट परिलक्षित होता है। जनता ने उन्हें सर्वाधिक स्वीकार किया है। उनके अलंकार पाठकों को चमत्कृत करते हैं।"**

समीक्षक कबीर-काव्य की कलात्मक विवेचना करते हुए यह ध्यान रखते हैं कि कबीर सन्त पहले हैं व कवि बाद में। उनकी वाणी में धार्मिक दृष्टिकोण की प्रधानता है, काव्यगत दृष्टिकोण गौण है। इसके बावजूद कबीर का काव्य बहुत स्पष्ट और प्रभविष्णु है। अपनी गहन अनुभूति तथा उत्कृष्ट अभिव्यक्ति के कारण वे सहज ही महाकवि के रूप में स्वीकार कर लिए गए हैं। यहाँ हम कबीर के काव्यगत कला पक्ष का अप्रस्तुत योजना, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक, चित्रात्मकता, स्वाभाविकता, लाक्षणिकता तथा उलटबांसियाँ आदि के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन कर रहे हैं।

1. अप्रस्तुत योजना–कबीर इस विशेषता के माध्यम से अपनी अनुभति को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त कर पाए हैं। मानव-जीवन की **'पानी केरा बुदबुदा'** या **'ज्यों तारा प्रभात'** से उपमा देकर, संसार की असारता को सेंबल के फूल से, मन की दरार को टूटे पत्थर की दरार से, माया की अस्थिरता को टेसू के फूलों के अल्पकालीन वैभव से उपमाएँ देकर कबीर ने अपने अभिप्रेत अर्थ की स्पष्ट प्रतीति कराने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। कबीर की अप्रस्तुत योजना निःसन्देह सराहनीय है।

प्रस्तुत उदाहरण देखने योग्य है जिसमें कवि ने बड़ी कलात्मकता के साथ उपमानों का बड़ा सार्थक और काव्यात्मक प्रयोग किया है–

दुलहिनी गावहु मंगलचार,
हम घरि आए हो राजा राम भरतार॥
तन रति करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतत्त बराती।
राँमदेव मौरें पाँहुनैं आये मैं जोबन मैं माती।
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, बहला वेद उचार।

राँमदेव सँगि भाँवरी लै हूँ, धंनि धंनि भाग हमार॥
सुर ततीसूँ कौतिग आये, मुनिवर सहस अठ्यासी।
कहै कबीर हँम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी॥

2. बिम्ब विधान–आधुनिक काव्य शास्त्रियों ने बिम्ब विधान के महत्त्व को अनिवार्य रूप में स्वीकार किया है। बिम्ब प्रत्येक कवि की अनुभूति के साथ अनिवार्यतः जुड़ा रहता है। कबीर भी इसके अपवाद नहीं हैं–

पानी से ही हिम भया, हिम तो गया बिलाई।
जो कछु था सोई भया, अब कछु कहा न जाई॥

इस साखी में पानी का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। बिम्ब विधान कबीर काव्य में अनेक प्रकार से अभिव्यक्त हुआ है। इन्द्रियाश्रित कुछ बिम्ब यहाँ प्रस्तुत हैं–

दृश्य बिम्ब– **नैननि की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाइ।**
पलकनु की चिक डारि कै, पिय को लिया रिझाइ॥

श्रव्य बिम्ब– **अंबर कुंजा कुरलिया, गरजि भरे सब ताल।**
जिनि के गोविन्द बीछुरे, तिनको कौन हवाल॥

स्मृतिजन्य बिम्ब– **कबीर सीप समुन्द की रटै पियास पियास।**
समदहि विण का वदि गिणै, स्वाति बूँद की आस॥

3. प्रतीक-योजना–कबीरदास निर्गुणोपासक थे। उन्होंने अनिर्वचनीय परमतत्त्व को अपना आराध्य बनाया था। अव्यक्त और सूक्ष्म ब्रह्म की उपासना के लिए कबीर ने अलौकिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए लोक-परिचित साधनों का प्रतीक के रूप में सहारा लिया है। सूक्ष्म और अलौकिक अनुभतियों को स्थूल और लौकिक साधनों द्वारा व्यक्त करने की पद्धति काव्य में प्रतीक कहलाती है। कबीर मूलतः आध्यात्मिक प्रेम के गायक थे। आत्मा-परमात्मा के अनेक सम्बन्धों को उन्होंने प्रतीकों के माध्यम से ही व्यक्त किया है। आध्यात्मिक प्रेम की अलौकिक अनुभूति को सहृदय-संवेद्य बनाने के लिए उन्होंने मुख्यतः लोक-प्रचलित दाम्पत्य प्रेम का सहारा लिया है। आत्मा-परमात्मा के मिलन को स्त्री-पुरुष के मिलन के रूप में प्रकट किया गया है।

उदाहरणार्थ– **अब तोहि जाँन न देहूँ राम पियारे,**
ज्यूं भावै त्यूं होह हमारे॥
बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये, भाग बड़े घरि बैठे आये।
चरननि लागि करौं बरियायी, प्रेम प्रीति राखौं उरझाई।
इत मन मंदिर रहौ नित चोषै, कहे कबीर परहु मत घोषै॥

सामान्य रूप से कबीर का प्रतीक विधान अपनी समग्रता में सार्थक, लालित्यपूर्ण तथा लोकजीवन से सम्बद्ध है, फिर भी कहीं-कहीं वह दुर्बोध और जटिल भी हो गया है।

4. लाक्षणिकता–लक्षणा से भाषा में वह सौन्दर्य आ जाता है कि उससे अगोचर भावनाओं को गोचर रूप में उपस्थित करके सहज ही ग्राह्य बना दिया जाता है। मुहावरों का प्रयोग इस क्षेत्र में व्यापक प्रभाव डालता है। जन साधारण के कवि कबीर ने प्रचुर संख्या में मुहावरों का प्रयोग किया है। उन्होंने भाषा की शब्द शक्तियों का भी सफल प्रयोग किया है। द्रष्टव्य है–

शुद्धा लक्षणा– **सेवैं सालिगराम कूं, मन की भ्रान्ति न जाहि।**
सीतलता सुपनेहु नहीं, दिनां दिन अधिकी लाहि।

रूढ़ि लक्षणा– **आधी सखी सिर कटै जोरै विचारी जाइ।**
मन परतीति न उपजै, तौ राति दिवस मिलि जाइ॥

5. चित्रात्मकता–चित्रात्मकता कुशल कवि की काव्य कला की मनोहर विशेषता है। कवि का कथ्य जितना स्पष्ट होगा, पाठक के मस्तिष्क में चित्रात्मकता भी उतनी ही सजीव होगी। कबीर के काव्य में दार्शनिक-पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग के कारण चित्रात्मकता की विशेषता क्लिष्ट होकर भी स्पष्ट है। सूक्ष्म चित्रों के संदर्भ में कबीर काव्य की भावपूर्णता विशेष रूप से द्रष्टव्य है। बधिक का गीत सुनने वाले मस्त मृग का, किले के दुर्गम कोट और खाई का, विवाह की विभिन्न क्रियाओं का चित्र उभारने में कवि ने विशेष सफलता प्राप्त की है।

6. उलटबाँसियाँ–कबीर अपनी उलटबांसियों के लिए भी प्रसिद्ध हैं। कबीर अपनी अनेक साखियों एवं पदों में ऐसा संकेत करते हैं कि जो इस पद पर विचार करे, वही पण्डित है। कहीं-कहीं वे ऐसे क्लिष्ट पदों की क्लिष्टता के विषय में सजग भी प्रतीत होते हैं। उनकी उलटबांसियाँ दो प्रकार की होती हैं–सांकेतिक और रहस्यमयी। सांकेतिक उलटबांसियों में उच्चकोटि का काव्य अन्तर्निहित रहता है तो रहस्यपरक उलटबांसियों में यह विशेषता गौण हो जाती है–

''एक अचम्भा देखा रे भाई, ठाडा सिंह चरावै गाइ।
पहले पूत पीछे भई माई, चेला कै गुरु लागै पाइ॥''

7. छन्द और गीत–कबीर ने तीन प्रकार के छन्दों में रचनाएँ की हैं–साखी, सबद और रमैनी। 'साखी' दोहे ही हैं। 'सबद' गेय या गीतात्मक पदों का नाम है। 'रमैनी' दोहा चौपाई छन्द के सम्मेलन से निर्मित छन्द हैं। इन तीन छन्दों के साथ कबीर ने बावनी, चौंतीसा, चाँचर, हिंडोला, कहरा, विरहुली आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है।

◆◆◆

9. 'साखी' शब्द के अर्थ पर प्रकाश डालते हुए कबीर की साखियों के महत्त्व का उल्लेख कीजिए।

उत्तर–कबीर की रचनाओं में सबसे अधिक महत्त्व साखियों का माना जाता है। 'साखी' शब्द संस्कृत के 'साक्षी' शब्द का अपभ्रंश रूप है। 'साक्षी' का अर्थ है–**गवाही**। अर्थात् जो कुछ स्वयं देखा या अनुभव किया है, उसे सच्चाई और ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करना ही साक्षी देना है। इस आधार पर कबीर की 'साखी' का अभिप्राय भी उनके साक्षात् या प्रत्यक्ष अथवा यथार्थ ज्ञान से लगाया जा सकता है। जिस प्रकार एक गवाही देने वाला व्यक्ति अपनी आँखों से देखी हुई सच्ची घटना को न्यायाधीश के सम्मुख प्रकट करता है, उसी प्रकार कबीर ने भी अपने साक्षात् अनुभव व यथार्थ ज्ञान को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया है। वस्तुतः साखी ज्ञान की आँख कहलाती है। इन साखियों में विद्यमान ज्ञान के बिना सांसारिक उलझनों से मुक्ति नहीं मिलती–

साखी आँखी ज्ञान की, समझि देखि, मन माहिं।
बिन साखी संसार का, झगरा छूटत नाहिं॥

कबीरदास से स्वयं साखी के महत्त्व को अनेक स्थानों पर व्यक्त किया है। कबीर ने कहा है कि पदों का ज्ञान प्राप्त करने से केवल मन को प्रसन्नता प्राप्त होती है किन्तु साखी के कहने से आनन्द की प्राप्ति होती है–

''पद गाये मन हरषिया, साखी कह्म आनन्द॥''

अतः स्वयं कबीर की दृष्टि में पदों की अपेक्षा साखी अधिक महत्त्वपूर्ण है। कबीरदास ने साखियाँ कहने के लक्ष्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि परमपिता परमात्मा ने कबीर को यह प्रेरणा प्रदान की है कि वे साखी कहें। सम्भव है भवसागर के प्राणियों में से कोई इन साखियों द्वारा किनारे पर जा लगे–

''हरिजी यहे विचारिया साखी कहौ कबीर।
भौ सागर में जीव है, जै कोई पकड़ै तीर॥''

साखी रचना की परम्परा का आरम्भ गुरु गोरखनाथ से माना जाता है। गुरु गोरखनाथ की प्रथम साखी रचना 'जोगेश्वरी साखी' है। संत नामदेव जी के नाम से भी साखी प्राप्त हुई है। कबीर पर गुरु गोरखनाथ एवं संत नामदेव दोनों का प्रभाव देखा जा सकता है। अतः यही कारण है कि कबीरदास ने साखी परम्परा के अनुकूल अपने उपदेशों के प्रचार-प्रसार के लिए साखी को माध्यम बनाया। 'कबीर ग्रंथावली' में 819 साखियां संकलित हैं। कबीर ने अपनी साखियों को अनेक अंगों में विभाजित किया है, जैसे–गुरु कौ अंग, सुमिरण कौ अंग, विरह कौ अंग, परचा कौ अंग, माया कौ अंग आदि। साखियों में गुरु के महत्त्व, माया से सावधान, नाम स्मरण की महत्ता, ज्ञान प्राप्ति की महत्ता आदि का सरसता एवं सरलतापूर्वक उल्लेख किया गया है।

लोकानुभव पर आधारित साखियाँ संसार की असारता, मोहमाया की मृगतृष्णा आदि का विवेचन करके मनुष्य को सही मार्ग दिखाती हैं। वस्तुतः साखियाँ ज्ञान का भण्डार हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि साखियाँ वैयक्तिक अनुभूतियों का भण्डार हैं, प्रगल्भता एवं प्रभविष्णुता में बेजोड़ हैं। वे ज्ञान-भक्ति, नैतिकता, व्यावहारिकता, दार्शनिकता, आध्यात्मिकता और लौकिकता से परिपूर्ण हैं। इन साखियों के माध्यम से कबीरदास ने सर्वसाधारण को परमपिता परमात्मा से जोड़ने का प्रयास किया है। कुछ साखियों में कबीरदास ने स्पष्ट शब्दों में

परम्परागत रूढ़ियों, धर्म के नाम पर किये जाने वाले दिखावों, अन्धविश्वासों आदि का विरोध किया है। वे साखियों के माध्यम से परनिन्दा, असत्य, वैर-विरोध, छल-कपट को त्यागकर दया, अहिंसा, करुणा, मधुर वाणी जैसे गुणों को धारणा करने के लिए प्रेरित करते हैं। कहा गया है–

''ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहु सीतल होय॥''

इसीलिए कबीर की साखियों का महत्त्व स्वतः सिद्ध है। वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भावों एवं अद्भुत सौंदर्य से ओतप्रोत हैं। इनमें कबीर का सर्वजयी व्यक्तित्व विद्यमान है।

◆◆◆

10. कबीर के काव्य में प्रयुक्त 'सबद' या 'साबदी' पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–कबीर के सबदों को विद्वानों ने पद भी कहा है। कबीर के सभी पद गेय हैं। इनके लिए 'वाणी' शब्द का प्रयोग भी किया गया है। गुरु गोरखनाथ की 'शब्दी' कबीर के सबदों व पदों के अत्यन्त निकट है। 'कबीर ग्रंथावली' और 'आदिग्रंथ' में संकलित कबीर के जो पद मिलते हैं उनका विभाजन रागों के आधार पर किया गया है। कबीर की प्रमुख रचना 'बीजक' में मौजूद पदों को सबद कहा गया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि पद, वाणी व सबद, तीनों ही पर्यायवाची हैं। कबीर की वाणी का यह एक प्रमुख काव्य रूप है। विषय की दृष्टि से इन पदों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–प्रथम, लौकिक भाव प्रधान है तथा द्वितीय, पारलौकिक भाव प्रधान है। लौकिक भाव प्रधान पदों में कबीरदास ने तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र अंकित किया है। इसका प्रमुख कारण है कि कबीर ने अपने युग में प्रचलित सभी सामाजिक रूढ़ियों, बाह्य आडम्बरों, कुप्रथाओं आदि को दूर करने हेतु यथाशक्ति प्रयास किया है। दूसरी ओर, उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों में एकता स्थापित करने का भी प्रयास किया है। दोनों धर्मों के लोगों को भटके हुए मार्ग से हटाकर उन्हें सही मार्ग पर लाने का प्रयास उन्होंने किया है–

जाति पाँति पूछे नहिं कोय।
हरि को भजै सो हरि का होय॥

पारलौकिक विषयों से संबंधित उनके पदों में वैराग्य, सिद्धांत निरूपण, विरह मिलन तथा उलटबांसियों आदि का वर्णन है। इन पदों में जहाँ एक ओर संसार की नश्वरता और सारहीनता का वर्णन है, वहीं दूसरी ओर प्रभु के नाम स्मरण पर बल दिया गया है। उनके सिद्धांत निरूपण संबंधी पदों में साधना और योग की अनेक बातें समाविष्ट हैं। परन्तु विरह और मिलन के पदों में सन्त कबीर की भक्ति की प्रगाढ़ता देखी जा सकती है। यहाँ कवि ने निर्गुण, निराकार ईश्वर के प्रेम को अपने पदों का विषय बनाया है। अविनाशी पुरुष से विवाह होने के बाद उत्पन्न प्रेम और उल्लास का उदाहरण देखिए–

दुलहिनी गावहु मंगलाचार।
हम घरि आए हो राजा राम भरतार॥

इसी प्रकार से विरहानुभूति के भी असंख्य पद देखे जा सकते हैं जिनमें एक विरहिणी आत्मा अपने प्रियतम को पाना चाहती है।

बालम आउ हमारे गेह रे, तुम बिनु दुखिया देह रे।
सबको कहै तुम्हारी नारी, मोको यही अंदेह रे।
एकमेक है सेज न सोवै, तब लगि कैसो नेह रे।

अतः स्पष्ट है कि कबीर के काव्य में सबदी या सबदों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'सबद' भाव की दृष्टि से ही नहीं अपितु काव्य कला की दृष्टि से भी उनकी अद्वितीय काव्य-रचना हैं।

◆◆◆

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. कबीरदास जी का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

उत्तर–कबीरदास जी भक्तिकालीन निर्गुण संत काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। ये एक महान कवि, भक्त तथा सच्चे समाज-सुधारक थे। जनश्रुति के आधार पर इनका जन्म सन् 1398 ई. में काशी नामक स्थान पर हुआ माना जाता है। किंवदंती है कि इनका जन्म एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था, जिसने लोक-लाजवश इनका परित्याग कर दिया और इन्हें काशी के 'लहरतारा' नामक तालाब के किनारे छोड़ गई, जहाँ से नीरू एवं नीमा नामक जुलाहा दंपत्ति ने इनको प्राप्त किया तथा इनका पालन पोषण किया। नीरू एवं नीमा ने इनका नामकरण 'कबीर' किया, जिसका अर्थ होता है– 'महान'। वस्तुतः कबीर ने अपने कार्यों से अपने नाम को सार्थक किया। बड़े होने पर इनका विवाह 'लोई' नामक युवती से हुआ, जिनसे इन्हें कमाल तथा कमाली नामक पुत्र तथा पुत्री हुई। कबीरदास अनपढ़ होने के साथ-साथ मस्तमौला, अक्खड़, निर्भीक, विद्रोही तथा क्रांतिकारी समाज सुधारक थे। इन्होंने अपना गुरु श्री रामानंद जी को बनाया। उन्होंने इन्हें राम-नाम का मंत्र दिया। इनके स्वाभिमानी एवं अक्खड़ स्वभाव के कारण तत्कालीन सम्राट सिकंदर लोदी ने इनके ऊपर कई अत्याचार किए, लेकिन ये उनकी परवाह न करते हुए अपनी वाणी द्वारा िंदू-मुस्लिम एकता पर बल देते रहे। सन् 1518 ई. में इस महान संत कवि का बनारस के समीप 'मगहर' नामक स्थान पर देहांत हो गया। 'कबीर चौरा' नामक स्थान पर इनकी समाधि बनी हुई है।

प्रश्न 2. कबीरदास जी के कृतित्व पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।

उत्तर–'मसि कागद छुयौ नहिं कलम गह्यौ नहिं हाथ' कहने वाले निरक्षर कबीर ने स्वयं अपने हाथ से कुछ नहीं लिखा। उनका काव्य अनुभवों का परिणाम है। उन्होंने इस जीवन और जगत के सम्बन्ध में जैसा भी अनुभव किया, अपनी अटपटी भाषा में कह दिया। बाद में उनके शिष्यों ने उनकी वाणी का संकलन कर लिया। वैसे तो कबीर की अनेक रचनाएँ बतलायी जाती हैं, लेकिन **'बीजक'** को ही उनका प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। कबीर के कुछ पद सिखों के धार्मिक ग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहिब' में भी स्वीकार किए जाते हैं। बीजक के तीन भाग हैं–**साखी, सबद** और **रमैनी**। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

1. साखी : 'साखी' संस्कृत के 'साक्षी' से बना है जिसका अर्थ होता है–गवाह। साखी को 'ज्ञान की आंखें' भी कहा जाता है। कबीर 'आंखों देखी' में विश्वास करते थे। उनका कहना है–

तू कहता कागज की लेखी।
मैं कहता हूँ आँखिन देखी॥

बीजक के जितने संस्करण निकले हैं, उनमें 353 साखियाँ मिलती हैं।

2. सबद : गेय पदों को 'सबद' कहा जाता है। यह संस्कृत के 'शब्द' से बना है। शब्द का एक अर्थ ब्रह्म अथवा परमतत्त्व होता है। जिन पदों में ब्रह्म अथवा परमपद के स्वरूप और उसे प्राप्त करने की साधना-प्रणाली का वर्णन हो, उन्हें 'सबद' कहते हैं। गेय पदों में रचना करने की परम्परा कबीर से पहले बौद्ध सिद्धों और नाथयोगियों में भी मिलती है। कबीर ने उसी का अनुसरण किया है।

3. रमैनी : 'बीजक' में 'रमैनी' को बहुत महत्त्व दिया गया है। चौपाई-दोहा शैली में लिखी गई रचनाओं को 'रमैनी' कहते हैं। बीजक में 84 रमैनियाँ मिलती हैं। 'बींजक' की रमैनियों में सात-सात चौपाइयों के बाद एक दोहा मिलता है। रमैनी में मुख्यतः सृष्टि, जीव, जगत आदि विषयों पर विचार किया गया है।

प्रश्न 3. कबीरदास जी की साहित्यिक विशेषताओं एवं भाषा-शैली पर टिप्पणी करें।

उत्तर–कबीरदास निर्गुण-निराकार ईश्वर में विश्वास करते थे। उनका कहना था कि ईश्वर कण-कण में विद्यमान है। उन्होंने बहुदेववाद तथा मूर्ति पूजा का खंडन किया। यही नहीं, उन्होंने गुरु को परमात्मा से अधिक महत्त्व दिया। उनका कहना था कि गुरु की कृपा से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने हिंदू-मुस्लमानों में प्रचलित अंधविश्वासों, रूढ़ियों तथा आडम्बरों का डटकर विरोध किया और सदाचार तथा मानव धर्म की स्थापना पर बल दिया। वे हिंदुओं तथा मुसलमानों में एकता स्थापित करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने जाति-पाति, वर्ग-भेद का विरोध किया। उनका कहना था कि बाह्याडम्बरों से ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। सच्चे मन से भक्ति करने पर ईश्वर मिलता है। उन्होंने माया का भी विरोध किया।

कबीरदास की भाषा जनभाषा कही जा सकती है जिसमें अवधी, ब्रज, खड़ी बोली, पूर्वी हिंदी, अरबी, फारसी, राजस्थानी तथा पंजाबी भाषा के शब्दों का मिश्रण है। इनकी भाषा को सधुक्कड़ी तथा खिचड़ी भाषा भी कहा जाता है। इन्होंने साखी दोहा तथा चौपाई की शैली में अपनी वाणी प्रस्तुत की है। यही नहीं, इन्होंने अनुप्रास, उपमा, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का सफल प्रयोग किया है। कबीर अपनी उलटबांसियों के लिए भी प्रसिद्ध हैं। इनकी भाषा में वर्णनात्मक, चित्रात्मक प्रतीकात्मक, भावात्मक आदि शैलियों का प्रयोग हुआ है। शान्त रस इनकी भाषा में मुख्य रस है, परन्तु अन्य रसों का भी अभा इनकी भाषा में नहीं है। हालांकि ये अनपढ़ कवि थे और इन्होंने अपना सारा काव्य केबल उच्चरित किया था, परन्तु भाषा प इनका जबरदस्त अधिकार था। इसलिए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन्हें भाषा का 'डिक्टेटर' कहकर संबोधित किया है।

प्रश्न 4. डॉ. श्यामसुंदर दास द्वारा सम्पादित 'कबीर ग्रन्थावली' का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर–डॉ. श्यामसुंदर दास के सम्पादकत्व में 'कबीर ग्रंथावली' का प्रकाशन काशी नागरी प्राचारिणी सभा द्वारा हुआ। इसमें कबीर की साखियों को अंगों में विभाजित किया गया तथा पदों का विभाजन रागों में किया गया। ऐसा विभाजन प्राचीन पंचबानियों में भी हुआ था। पर उनमें साखियों आदि का क्रम भिन्न था तथा थोड़ा पाठ-भेद भी पाया जाता है। 'कबीर ग्रंथावली' कबीर जी की वाणी को आधार बनाकर सम्पादित की गई है। इसमें ऐसी अनेक रचनाएँ हैं जो आदि ग्रंथ में भी प्राप्त होती हैं। जो साखियाँ तथा पद आदि ग्रंथ में नहीं हैं उन्हें 'कबीर ग्रंथावली' के अन्त में परिशिष्ट के रूप में संकलित किया गया है। आदि ग्रंथ में संकलित कबीर की रचनाएँ प्रायः प्रामाणिक ही समझी जाती हैं। धार्मिक पूज्य भावना के कारण आदि ग्रंथ के बारे में किसी को भी किसी प्रकार का संदेह नहीं है। आचार्य परशुराम ने इस संदर्भ में लिखा भी है, **"स्थूलतः कबीर साहब की रचनाओं का वह रूप अवश्य सुरक्षित मान लिया जा सकता है जिसे गुरु अर्जुनदेव के सामने उनके जानकारों ने प्रस्तुत किया होगा और जिसे भाई गुरुदास ने गुरुमुखी लिपि में अपने ढंग से लिपिबद्ध करा लिया होगा।"**

'कबीर ग्रन्थावली' के सम्पादक बाबू श्यामसुंदर दास ने उसकी भूमिका में लिखा है कि जिन दो प्रतियों को आधार बनाकर कबीर साहित्य का सम्पादन किया है उनमें से एक का लिपिकाल सम्वत् 1561 है और दूसरी का सम्वत् 1881 है। इन दोनों के लेखन काल में 320 वर्षों का अन्तर है। इनमें से पहली की अपेक्षा दूसरी में 131 साखियां तथा 5 पद अधिक मिलते हैं। बाबू श्यामसुंदर दास ने सभी साखियों को विभिन्न अंगों में विभक्त किया है। साखियों के बाद पद और पदों के पश्चात् रमैनियाँ दी गई हैं। आज अधिकांश विश्वविद्यालयों में यही 'कबीर ग्रन्थावली' पढ़ी-पढ़ायी जाती है। कुछ विद्वान् इसे कबीर साहित्य की प्रामाणिक रचना मानते हैं। इससे पूर्व दी गई भूमिका कबीर साहित्य पर समुचित प्रकाश डालती है। कुल मिला कर 'कबीर बीजक' की अपेक्षा पाठकों में यह रचना अधिक लोकप्रिय है।

प्रश्न 5. 'कबीर बीजक' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर–कबीर साहित्य से संबंधित दूसरी रचना है **'कबीर बीजक'**। यह कबीर पंथियों का पूज्य ग्रंथ है। इसमें न तो पदों का रागों के आधार पर विभाजन है तथा न ही अंगों के अनुसार वर्गीकरण। पुनः, इसकी भाषा आदि ग्रंथ तथा कबीर ग्रंथावली की भाषा से संबंधित है। इस पर पूर्वी हिन्दी का प्रभाव देखा जा सकता है। पुनः, इसमें लोक छंदों का प्रयोग है, जिसमें ककहरा, बसंत, चाचरी, बेली, हिंडोला आदि छंद मुख्य हैं। **'कबीर बीजक'** का संकलन कब हुआ, इस संबंध में भी विद्वानों के अलग-अलग विचार हैं। पर इतना निश्चित है कि कबीर बीजक की रचनाएँ 'आदि ग्रंथ' के बाद की हैं। जहाँ तक आदि ग्रंथ में संकलित कबीर की रचनाओं का प्रश्न है, उन्हें पूर्णतया प्रामाणिक माना जा सकता है। परन्तु 'कबीर बीजक' के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। उनमें एक तो बघना जी तथा भक्त कवि सूरदास के पद संकलित हैं। दूसरा, उसमें ऐसे नामों का भी उल्लेख मिलता है जिनका जन्म कबीरदास के बाद हुआ। फिर भी 'कबीर बीजक' के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। 'कबीर बीजक' के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए आचार्य परशुराम चतुर्वेदी कहते हैं, **"कबीर बीजक में संग्रहीत रगनाओं की एक विशेषता यह है कि उनमें सृष्टि रचना विषयक वर्णनों की भी प्रचुरता है। कबीर साहब यहाँ पर न केवल किसी दार्शनिक की भाँति विश्व के मूल तत्त्व का ही प्रतिपादन करते हैं अपितु उसके विकास क्रम का भी प्रश्न छेड़ते हैं। इस विषय को पीछे कबीर पंथ में भी बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है और उसकी कुछ रचनाएँ इसी के कारण पुराणों जैसी भी बन गई हैं..........गूढ़ से गूढ़ विषयों को भी सरल भाषा में व्यक्त कर उन्हें लोक-प्रचलित माध्यमों द्वारा उनको सब तक पहुँचाने की कार्य जितना कबीर बीजक में संग्रहित रचनाओं द्वारा उदाहृत किया जा सकता है, उतना ऐसे संग्रहों में संग्रहित पदों द्वारा सम्भव नहीं है। कबीर बीजक के कबीर साहब अन्य संग्रहों वाले कोरे सहृदय तथा स्पष्टवादी भक्तमात्र न रहकर एक तार्किक प्रचारक, लोक चतुर तया व्यंग्यकर्ता व्यक्ति ही थे।"**

भले ही 'कबीर बीजक' एक प्रामाणिक रचना न हो, लेकिन कबीरपंथियों के लिए इस रचना का विशेष महत्त्व है। दूसरे, कबीर साहित्य के मूल्यांकन एवं अध्ययन की दृष्टि से भी इसका अपना महत्त्व है। अतः 'कबीर बीजक' की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता।

प्रश्न 6. कबीर साहित्य के मूल प्रतिपाद्य पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर–कबीर के काव्य का मूल प्रतिपाद्य विषय आध्यात्मिक अनुभूति है। उस परब्रह्म के सौन्दर्य के दर्शन, उसके प्रति प्रेम, संयोग तथा वियोग के क्षणों की अनुभूति आदि उनके काव्य का भावपक्ष है। कबीरदास ने इस अनुभूति का वर्णन सफलतापूर्वक किया है। ऐसे अवसर पर हमें उनके ज्ञानी, भक्त, रहस्यवादी योगी, सभी प्रकार के व्यक्तित्वों की अनुभूति का परिचय मिल जाता है। वस्तुतः आध्यात्मिक प्रेम तथा आध्यात्मिक सौन्दर्यानुभूति ही कबीर की वाणी का प्रमुख प्रतिपाद्य है। इसी का वर्णन करते समय वे तत्कालीन सगुणवादियों की रूढ़ियों, आडंबरों तथा जड़-परंपराओं पर भी प्रहार करते दिखलाई पड़ते हैं।

कबीर के आध्यात्मिक प्रेम का आलंबन निर्गुण तथा निराकार परब्रह्म है। उसके किसी ऐसे रूप का वर्णन नहीं किया जाता जो इन्द्रियों द्वारा ग्रहीत है। वे स्पष्ट कहते हैं-

"पार ब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।
कहिबे कूं सोभा नहिं देख्या ही प्रमान।।"

कबीर के ईश्वरीय प्रेम में ऐसी क्रीड़ाओं तथा लीलाओं के लिए कोई स्थान नहीं जिनका वर्णन सगुण भक्त कवियों ने किया है। कबीरदास पति-पत्नी, पिता-पुत्र, स्वामी-सेवक आदि प्रतीकों द्वारा रहस्यात्मक शब्दावली में उस परमतत्व के प्रति अपने आध्यात्मिक प्रेम का वर्णन करते हैं। वस्तुतः इन प्रतीकों के कारण ही कबीर का आध्यात्मिक प्रेम सूक्ष्म, मूर्त तथा आभ्यांतर है। कबीर का ब्रह्म निर्गुण, निराकार तथा अलक्ष्य होने पर भी सर्वव्यापी है।

कबीर की सौन्दर्यानुभूति की भी लगभग यही स्थिति है। कबीर जिस परमतत्त्व का आत्म साक्षात्कार करना चाहते हैं उसके सौन्दर्य की अनुभूति न आँखों द्वारा हो सकती है और न स्थूल इन्द्रियों द्वारा। अतः प्रेम के समान उनकी सौन्दर्यानुभूति भी अभ्यन्तर रूप है। उनकी यह सौन्दर्यानुभूति उल्लास अथवा आह्लाद के रूप में देखी जा सकती है। निर्गुण निराकार के रूप सौंदर्य की अनुभूति के बाद कबीरदास कह उठते हैं– **"लाधा है कछु लाधा है"** अथवा **'पड़ि गया नज़र अनूप।"** यह अरूप सौन्दर्य अनुभूति गम्य है। इसका कोई बाह्य आकार-प्रकार नहीं है।

प्रेम अथवा रति का लौकिक रूप मानव की सभी इन्द्रियों, मन, बुद्धि आदि को आह्लादित कर देता है। लेकिन आध्यात्मिक स्तर का प्रेम या सौंदर्यानुभूति पारलौकिक सीमाओं का स्पर्श करने लगता है। इसलिए जब कबीरदास विरहानुभूति का वर्णन करते हैं, उस समय उनकी यह प्रेमानुभूति मन, बुद्धि आदि के क्षेत्र को पार करके आत्मा के क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है। कबीर का प्रेम तथा सौन्दर्यानुभूति अन्तःकरण और आत्मा के विषय हैं। उसकी अनुभूति में रहस्यवादी भक्त का सम्पूर्ण व्यक्तित्व तन्मय हो जाता है। इस अनुभूति के द्वारा कवि को जो आह्लाद प्राप्त होता है, वह विलक्षण प्रकार का है। सौंदर्य के अपार पारावार में डूबकर कवि उस अनूप के दर्शन करता है।

प्रश्न 7. कबीरदास के 'ब्रह्म' सम्बन्धी विचारों का प्रतिपादन कीजिए।

उत्तर–कबीर उच्च कोटि के महात्मा एवं भक्त थे। उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था–परब्रह्म का अन्वेषण करके उससे साक्षात्कार करना। यद्यपि कबीरदास को विभिन्न धर्मग्रंथों का ज्ञान था, लेकिन ब्रह्म के बारे में उन्होंने जो विचार व्यक्त किए हैं वे उनकी स्वानुभूति का परिणाम हैं। उन्होंने जो कुछ भी कहा, वह बुद्धि तथा हृदय के योग से कहा। ब्रह्म के साक्षात्कार का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं–

"लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।"

कबीर का ब्रह्म संबंधी ज्ञान उपनिषदों के अद्वैतवाद से प्रभावित है। आदि से अंत तक उनकी ब्रह्म भावना अद्वैत से संबंधित है। परन्तु जब वह प्रिय से विमुक्त होकर अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं तब वे द्वैत का सहारा लेते हैं। परन्तु यह द्वैत मात्र अज्ञान है। अपनी अद्वैतानुभूति को अभिव्यक्त करते हुए वे कहते हैं-

"कस्तूरि कुंडल बसे, मृग ढूंढे बन मांहि।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनियां देखे नाहिं।।"

अद्वैतवादियों के समान कबीरदास का विश्वास है कि ब्रह्म से ही संसार की उत्पत्ति हुई है और वही ब्रह्म उसे नष्ट भी कर देता है। वह ब्रह्म पूरी तरह निराकार, रूपहीन और संसार के कण-कण में व्याप्त है।

यद्यपि कबीरदास ने ब्रह्म के लिए अनेक नामों का प्रयोग किया है। परन्तु उनकी वाणी में राम तथा हरि शब्दों का प्रयोग हीं सर्वाधिक प्राप्त होता है। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वे विष्णु के अवतारवाद में विश्वास रखते थे। उनका राम न तो दशरथ पुत्र है तथा न ही देवकी पुत्र। सत्य तो यह है कि वे प्रभु का स्मरण करने के लिए इन नामों का सहारा लेते हैं। कुछ आलोचकों विचार है कि स्वामी रामानन्द के प्रभाव के कारण उन्होंने बार-बार राम शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु अन्यत्र वे निरंजन तथा अलख नामों से ब्रह्मा को याद कर उठते हैं। लेकिन हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि कबीर के ब्रह्म का कोई स्वरूप नहीं है। परन्तु जो साधक उसे पहचान लेता है वह पुनः ब्रह्म के समान हो जाता है।

कबीरदास जी बार-बार स्पष्ट करते हैं कि वह परब्रह्म सारे संसार में व्याप्त है। उस परब्रह्म के हाथ भी नहीं हैं। वह सत्त, रज, तम आदि गुणों से परे है। उसका कोई आदि-अंत नहीं। वह न पृथ्वी है, न वायु है, न आकाश है। अग्नि तथा पानी में भी वह नहीं रहता। सरस्वती, गंगा, यमुना, जैसी पावन नदियों में भी वह नहीं है। समुद्र की लहरों में भी वह निवास नहीं करता। वह पाप-पुण्य से अलग-थलग, वेद-पुराण तथा शास्त्रों से भी परे है। कबीर जी तो घोषणा करते हैं कि उस परमतत्त्व को न कोई देख सकता है, न प्राप्त कर सकता है। वह न खाता है, न पीता है, न जीता है, न मरता है। उसका कोई रूप-रंग अथवा वेशभूषा नहीं है। वह असीम, अनन्त, अनिर्वचनीय, अरूप तथा सर्वव्यापी है।

प्रश्न 8. 'माया' के बारे में कबीरदास के क्या विचार हैं? स्पष्ट करें।

उत्तर–कबीरदास ने अद्वैतवादियों से प्रभावित होकर माया को मिथ्या माना है। शंकराचार्य से पहले उपनिषदों तथा श्रीमद् भगवत गीता आदि ग्रंथों में माया को ब्रह्म की स्त्री बताया गया है। परन्तु शंकराचार्य ने माया को भावमय ब्रह्म कहा है। वह सभी को भ्रमित करती है। कबीरदास सांख्यवादियों की विचारधारा से प्रभावित होकर माया के बारे में चिंतन करते हैं। वे तो स्पष्ट कहते हैं कि रजस, तमस और सत्व, ये सब तेरी माया है। सृष्टि का जन्म इसी माया या प्रकृति से होता है। परन्तु यह माया समूचे संसार को अपने वश में करके उसे चरित्र-भ्रष्ट कर देती है। अतः कबीरदास इसे व्यभिचारिणी कहते हैं।

माया संसार में अज्ञान का अंधकार फैलाती है। इसीलिए इसे उन्होंने पापिनी, विश्वासघातिनी, मोहिनी, सँपिणी, ठगिणी, डाकिनी आदि कहा है। आत्मा संसार में आकर इसी जाल में फँसती है। सृष्टि के सारे संबंध माया-जन्य हैं, समस्त सृष्टि मायामय है-

"कबीर माया पापणी फंद लै बैठी हाटि,
सब जग तो फंधै पड़्या गया कबीरा काटि।।"

कनक और कामिनी माया के प्रधान प्रतीक हैं। काम, क्रोध, मोह, लोभ, तृष्णा आदि मानसिक विकार माया के मित्र हैं। इन्हीं के सहयोग से माया जीव को फाँसती है। उपनिषद् के समान कबीर ने भी ब्रह्म को माया के 'खसम' के रूप में चित्रित किया है-

"एकै पुरुष, एक है नारी, ताकर करहु विचारा।"

कबीरदास जी ने माया को परिवर्तनशील माना है। वह उत्पन्न तथा नष्ट होती रहती है। इसी भ्रम का शिकार होने के कारण जीव ईश्वर से विमुख हो जाता है और वह आवागमन के चक्कर में पड़ कर दुःख भोगता रहता है। माया सभी को दुःख देती है। स्वयं कबीरदास भी उस माया से बहुत दुःखी हैं। जीव को सदैव 'मोर-तोर' के बंधन में डाले रहने वाली माया अज्ञान रूपिणी है। मुक्ति प्राप्त करने के बाद ही जीव इस 'मोर-तोर' की समस्या से छुटकारा प्राप्त कर सकता है और यह मुक्ति राम की शरण में जाने पर ही प्राप्त होती है। परन्तु माया के बंधन में बंधा मानव हमेशा अपने बारे में सोचता है तथा परमात्मा से विमुख रहता है। ईश्वर के वर को प्राप्त करने के लिए इस माया रूपी ममता को त्यागना पड़ता है।

इसलिए एक सच्चे ज्ञानी को माया को छोड़ना पड़ता है। माया का निवास तो पाखंडियों के पास है। कबीरदास जी माया को कहते हैं कि वहाँ जाओ जहाँ बाह्याडम्बर है तथा भक्त लोग चंदन घिसकर टीका लगाते हैं। कबीरदास जी भक्तों को भी माया से बचने का उपाय बताते हैं–

"औंधा पड़ा न जल में डूबे, सूधा सूभर भरिया।
जाकौ यह जग धिन करि चालै, ना प्रसादि निस्तरिया।।"

प्रश्न 9. कबीरदास के 'जगत' सम्बन्धी विचार स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–कबीरदास ने अद्वैतवादियों के समान ब्रह्म को सत्य तथा जगत को मिथ्या माना है।

वे बार-बार संसार की सत्ता को नश्वर कहते हैं। कबीरदास जी संसार को बाजीगर का खेल कहते हैं। उनके अनुसार यह भ्रामक है। जैसा दिखाई देता है, वैसा है नहीं–

"जो दिसें सो तो है नाहिं, है सो कहा न जाई।

वे संसार के मिथ्या भाव को प्रकट करने के लिए उसे सेम्बल का फूल, आकाश-नीलिमा, धुआँ-धरोहर आदि कहते हैं। वे स्पष्ट घोषणा करते हैं-

"यहु ऐसा संसार है, ज्यों सेम्बर का फूल,
दिन दस के व्यवहार में झूठे रंग न भूल।।"

प्रायः मानव के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ। कबीरदास भी सृष्टि को देखकर उसके रहस्य को जानना चाहते हैं।

कबीर ने सृष्टि की उत्पत्ति और लय का कारण तो परमात्मा को माना है। परन्तु उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया कि सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई तथा किस क्रम से हुई। यह जिज्ञासा होने पर भी कबीरदास संसार को रहस्यमय घोषित करते हैं। परन्तु उन्हें यह अहसास भी होता है कि सृष्टि में कोई अव्यक्त सत्ता निवास करती है।

"जो तुम देखो सो यहु नांही यह पद अगम अगोचर माँही।।
कहै कबीर जे अम्बर जाने ताही सूं मेरा मन माने।।"

कबीरदास जी कहते हैं कि मैंने अपनी इन दो आँखों से संसार को देखने का प्रयास किया है। लेकिन मुझे प्रभु के सिवाय कुछ भी नजर नहीं आया। मेरे नेत्र उसी प्रभु के रंग में रंग गए हैं। इस प्रकार कबीरदास के विचारानुसार सम्पूर्ण सृष्टि उस अलौकिक नटवर की लीला है। उस परमात्मा ने कहने-सुनने के लिए इस संसार रचना की है। वह स्वयं इसमें छिपा है, पर वह दिखाई नहीं देता। सत्त, रज तथा तम के योग से इसने संसार की रचना की है तथा अपने को इसमें छिपा रखा है। वह स्वयं तो आनन्द रूप है तथा यह संसार उस आनन्दरूप, पल्लव रूपी गुणों का विस्तार है। पाँच तत्त्व उसकी शाखाएँ हैं। राम-नाम उसका सुंदर फल है। पीछे बताया जा चुका है कि सृष्टि के बारे में कबीरदास के विचार वेदान्त तथा सांख्य दर्शनों से प्रभावित हैं। लेकिन एकाध स्थल पर वे सूफी तथा इस्लाम की धारा से भी प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। कबीर एक स्थल पर कहते हैं कि– **'अल्लाह ने नूर से सृष्टि बनाई है।'** यह निश्चय से सूफी प्रभाव है। परन्तु यह भी सच्चाई है कि सूफी मत कुछ सीमा तक वेदान्त से प्रभावित है। उपनिषदों में भी स्वीकार किया गया है कि ज्योति से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। फिर भी हमें यह मान कर चलना होगा कि कबीरदास एक जन कवि थे और उन्होंने जन साधारण की दृष्टि से ही जगत के बारे में अपने विचार व्यक्त किए। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि कबीरदास इस संसार को भी नश्वर और अस्थिर मानते हैं।

प्रश्न 10. 'जीव तत्त्व' के बारे में कबीर के विचारों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–कबीरदास ने परमतत्त्व की चर्चा करते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि उसके अतिरिक्त और कोई तत्त्व नहीं है। अतः 'जीवात्मा' नामक तत्त्व भी उसी में समाहित हो जाता है। वे तो स्पष्ट कहते हैं कि हरि में पिंड है और इस पिंड में हरि है और वही सबमें है तथा निरन्तर विद्यमान है। शरीर के भीतर समझी जाने वाली आत्मा तत्त्व के बारे में वे कहते हैं कि न तो यह मनुष्य है, न देव है, न योगी, न यती है, न अवधूत है, न माता है, न पुत्र है, न गृहस्थी है, न उदासी, न राजा, न रंक, न ब्राह्मण, न बढ़ई है, न तपस्वी और न शेख है-

ना इहु मानुस ना इहु देउ ना इहु जती कहावै सेउ।।
न इहु जोगी न अवधूता। ना इहु माइ न काहू पूता।।

कबीरदास इसे उस राम का केवल एक अंश मानते हैं। यह उसी प्रकार नहीं मिट सकता जैसे कागज के ऊपर से स्याही का चिह्न नहीं मिटता। कभी-कभी लगता है कि कबीर का ब्रह्म तथा आत्मा एक ही हैं। कुम्भ के रूपक द्वारा उन्होंने यह सिद्ध किया है कि आत्मा शरीरबद्ध होने के कारण ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होने लगती है, पर यह अलग नहीं–

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, यह तत कथ्यो ग्यानी।।

कबीरदास आत्मा को जीव प्राण, दीपक की ज्योति, अद्वैती तत्त्व, निरजंन, ज्ञान स्वरूप, स्वयं प्रकाश चेतन रूप आदि मानते हैं। जो लक्षण उन्होंने ब्रह्म के दिए हैं, वही आत्मा के दिए हैं। इस प्रकार कबीर साहब ने आत्मा के जिस स्वरूप का वर्णन किया है,

वह भारतीय वेदान्त परम्परा के अनुसार है। अद्वैतवादी के समान वे भी आत्मा को प्रकाश रूप मानते हैं। इस सन्दर्भ में कबीरदास जी कहते हैं कि जो लोग आत्मा-परमात्मा को अलग-अलग मानते हैं उनकी बुद्धि मोटी है और वे नरक के अधिकारी हैं। वे तो आत्मा-परमात्मा में अंश-अंशी सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं। इस सम्बन्ध में वे कहते भी हैं-

"हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूँद समानी समद मैं, सो कह हेरी जाइ।।
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
समंद समाना बूंद मैं, सो कत हेरया जाइ।।"

प्रश्न 11. कबीरदास ने 'निर्गुण ब्रह्म' की भक्ति पर बल दिया है। स्पष्ट करें।

उत्तर–भक्ति आन्दोलन के कारण उत्तर भारत में निर्गुण व सगुण दोनों प्रकार की भाव-धाराओं का प्रचार-प्रसार हुआ। सगुण भक्ति काव्यधारा के अन्तर्गत सूरदास और तुलसीदास के नाम उल्लेखनीय हैं। ये दोनों कबीरदास के बाद हुए। कबीरदास ने ईश्वर की निर्गुण-निराकार वंदना पर बल दिया है। कबीर का राम दशरथ का पुत्र राम नहीं, वह तो निर्गुण राम है और प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में बसता है।

दशरथ सुत तिहूं लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।।

उत्तरी भारत के भक्ति आन्दोलन के इतिहास में कबीर के विचारों का विशेष महत्त्व है। वे सचमुच एक महान परिवर्तन लाना चाहते थे। वे अछूत समझे जाने वाले अभावग्रस्त और उपेक्षित लोगों को समाज की मुख्य धारा के साथ जोड़ना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने ईश्वर के उसी रूप की भक्ति पर बल दिया जो समाज के सभी वर्गों के लिए स्वीकार्य हो। परन्तु उन्होंने इस बात पर बल दिया कि जो साधक राम को ढूंढ़ता है वही उसे पा सकता है–

"जिन ढूँढ़ा तिन पाईयाँ, गहरै पानी पैठ।
जौ बोरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठ।।

कबीर की दृष्टि में सब समान हैं। छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच, यह सब समाज का बनाया हुआ है। ईश्वर की दृष्टि में सभी बराबर हैं। जो निर्गुण भगवान की भक्ति करता है वह उसे पा सकता है। लेकिन उस निर्गुण ब्रह्म को पाने के लिए वे गुरु को आवश्यक मानते हैं। गुरु ही साधक को सच्चा मार्ग बताता है। इसलिए गुरु के बिना साधक को सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। कबीरदास भी कहते हैं–

बलिहारी गुरु आपणैं घौं हांडी कै बार।
जिनि मानिष तै देवता, करत न लागी बार।।

कबीरदास ने ही सबसे पहले यह घोषणा की थी कि सभी प्राणी ईश्वर की सन्तान हैं। सभी मनुष्य समान हैं, जाति और धर्म का कोई भेद नहीं है। इसीलिए वे सभी की खैर मानते हैं। संत की न तो किसी के साथ दोस्ती है, न ही किसी के साथ दुश्मनी।

"कबीरा खड़ा बाजार में मांगे सब की खैर।
न काहू से दोस्ती न काहू से बैर।।"

प्रश्न 12. कबीरदास के 'राम' पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर–यूँ तो कबीरदास ने ध्रुव भक्त तथा प्रह्लाद भक्त आदि के उदाहरण देकर भगवान से भक्ति की याचना भी की है। यही नहीं, उन्होंने हरि, गोविन्द, नारायण, सारंग, केशव, राम आदि अवतारवाद के समर्थक नामों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। परन्तु धीरे-धीरे ज्ञान बुद्धि के साथ-साथ कबीर को यह बोध हुआ कि यह अवतारी राम तो भ्रम में डालने वाला है। कबीरदास ने तत्कालीन हिन्दू समाज को ध्यान से देखा और पाया कि वे लोग असंख्य रूढ़ियों, आडम्बरों और अंधविश्वासों के शिकार बने हुए हैं। उन्होंने अनुभव किया कि दशरथ पुत्र राम को लोगों ने बड़ा संकुचित बना दिया है। उनके दरबार में निम्न जाति के लोगों को प्रवेश नहीं दिया जाता। इस प्रकार के राम एक ही मिट्टी-पानी से बने और एक ही प्रभु की संतान हैं। वे मुसलमानों के लिए भी अलग नहीं हैं। कबीर ने यह भी देखा कि दशरथ पुत्र राम मंदिर के संकुचित दायरे में प्रस्तर प्रतिमा बन पुजारियों की पेट-पूजा का साधन बनकर रह गए हैं। अतः कबीरदास का अवतारवाद से विश्वास कम होना शुरू हो गया। उनके राम स्वामी रामानन्द के 'राम' से भिन्न हो गए। कबीर का राम शब्द निर्गुण-निराकार ब्रह्म का प्रतीक बन गया है। वे कहते भी हैं-

"अक्षय पुरुष इक पेड़ है निरंजन वाकी डार,
त्रिदेव शाखा भए पात भया संसार।"

यही नहीं, कबीरदास ने निर्गुण राम की भक्ति पर बल देते हुए कहा-

"निर्गुण राम जपहु रे भाई। अविगति की गति लखी न जाई।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीरदास हरि, गोविन्द, राम, केशव, माधव आदि पौराणिक नामों का प्रयोग सगुण अवतार के अर्थ में करते हैं। लेकिन वे इन शब्दों का प्रयोग सहसा नहीं करते। जब वे अपने परम आराध्य को इन नामों से पुकारते हैं तो उनका मतलब सभी अवतारों से नहीं होता। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, ***"उनका अल्लाह अलख निरंजन, देव है, जो सेवा से परे है। उनका विष्णु वह है जो संसार रूप में विस्तृत है। उनका कृष्ण वह है जिसने संसार का निर्माण किया है। उनका गोविन्द वह है जिसने ब्रह्माण्ड को धारण किया है। उनका राम वह है जो सनातन तत्त्व है। उनका खुदा वह है जो दस दरवाजों को खोल देता है। रब्ब वह है जो चौरासी लाख योनियों का परवरदिगार है। करीम वह है जो इतना सब कर रहा है। गोरख वह है जो ज्ञान से गम्य है। महादेव वह है जो मन को जानता है। सिद्ध वह है जो इस चराचर जगत का साधक है..... ।"***

यही कबीर का राम है। यही उनका भगवान है। यह राम निरंजन है। उसका रूप नहीं, रेखा नहीं। यह समुद्र भी नहीं, पर्वत भी नहीं, धरती भी नहीं, आकाश, सूर्य, चन्द्र, पानी, कुछ नहीं बल्कि इन सबसे अलग है।

प्रश्न 13. कबीर के रहस्यवाद का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर–आचार्य शुक्ल ने रहस्यवाद के बारे में कहा है कि ज्ञान के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है। कबीर के साहित्य में भावनात्मक और साधनात्मक दोनों प्रकार की रहस्यवादी चेतना देखी जा सकती है। कबीरदास का रहस्यवादी कवियों में सर्वोच्च स्थान है। इसका मूल कारण यह है कि वे मूलतः ज्ञानी भक्त हैं। अद्वैत वेदान्त और वैष्णव भक्ति उनकी साधना और रहस्यवाद के आधार हैं। उनका विचार है कि ब्रह्म कण-कण में समाया हुआ है। उनका रहस्यवादी ज्ञान शास्त्रीय ज्ञान नहीं है बल्कि उनकी सहजानुभूति का परिणाम है। कबीर के रहस्यवाद की तीन अवस्थाएँ हैं–

(i) प्रथम अवस्था में साधक के मन में अपने प्रियतम के प्रति अनुराग का उद्‌भव होता है जिसकी परिणति विरह में होती है। परन्तु गुरु कृपा से ही अनुराग उत्पन्न होता है। इसी को प्रेमानुभूति भी कहते हैं। अब संसार के मोह-माया साधक को काटने के लिए दौड़ते हैं। हरि सुमिरण द्वारा इस माया से बचा जा सकता है। यहाँ कबीर ने प्रेमाभिव्यक्ति के लिए कुछ प्रतीकों, रूपकों तथा अन्योक्तियों का प्रयोग किया है। कहीं पर वे दाम्पत्य प्रतीक का प्रयोग करते हैं तो कहीं वात्सल्य प्रतीक का।

(ii) रहस्यवाद की दूसरी स्थिति परिचय है जिसे ज्ञानी आत्मज्ञान कहते हैं। कबीरदास ने 'हम घरि आये हों राजा राम भरतार' कहकर अनुराग की स्थिति को प्रकट किया है। आत्मा रूपी वधू परमात्मा रूपी वर का वरण कर लेती है। कबीरदास ने इससे उत्पन्न आह्लाद का वर्णन अनेक सूर्यों की श्रेणी के अनन्त तेज के दर्शन के बराबर किया है। कबीरदास जी कहते भी हैं–

"पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।
कहिबै कू सोभा नहीं देख्या ही परिमान।।"

परिचय में ऐसा आभास होता है कि जीवात्मा रूपी प्रेमिका परमात्मा रूपी प्रिय में लीन हो रही है।

(iii) कबीर के रहस्यवाद की तीसरी अवस्था मिलन की अवस्था है। इस अवस्था में 'मैं' और 'तू' का भेद समाप्त हो जाता है। कबीर जी कहते भी हैं, **"मन का भ्रम मन थै भागा, सहज रूप हरि खेलन लागा।"** इस अवस्था में अब दुःखमय संसार सुखमय प्रतीत होता है। मंगल की अनुभूति होती है और शीतलता मिल जाती है।

कबीर के रहस्यवाद में साधनात्मक स्थिति भी देखी जा सकती है। इसके अन्तर्गत ज्ञान द्वारा प्रियतम को पाया जा सकता है। कबीर का साधनात्मक रहस्यवाद सिद्धों, नाथों और योगियों की विचारधारा से प्रभावित है।

प्रश्न 14. महात्मा कबीर के काव्य में आडम्बर-विरोध पर विचार करें।

उत्तर–कबीरदास कालीन समाज विभिन्न प्रकार के बाह्य आडम्बरों व रूढ़ियों से ग्रस्त था। विशेषकर, धार्मिक क्षेत्र में पुरोहित और मौलवी दोनों ही लोगों को गुमराह करने में लगे हुए थे। कबीरदास ने बाह्य आडम्बरों की कटु आलोचना की है। उन्होंने एक ओर हिन्दुओं के व्रत, मूर्ति पूजा, गंगा स्नान, केशमुण्डन आदि की आलोचना की, तो दूसरी ओर मुस्लिमों के रोजा, नमाज, अजान आदि के प्रति भी अपना आक्रोश व्यक्त किया। कबीरदास का विचार था कि मूर्तिपूजा और मस्जिद उपासना पाखण्ड के सिवाय और कुछ नहीं है। मूर्तिपूजा का विरोध करते हुए वे कहते हैं–

(क) पाथर पूजै हरि मिलै, तो मैं पूजूं पहाड़।

तातें यै चाकी भली, पीस खाय संसार।।"

(ख) कांकर पाथर जौरी के मस्जिद लई बनाए।

ता चढ़ि मुल्ला बाँग दै, बहरा हुआ खुदाय।।"

इसी प्रकार से कबीरदास ने व्रत और रोजा आदि की भी निन्दा की है। उनके अनुसार इन बाह्य आडम्बरों से मनुष्य का तन-मन पवित्र नहीं होता बल्कि मलीन होता है। वे कहते भी हैं–

"दिन भर रोजा रखत है, रात हनत है गाय।
वह तो खून ये बन्दगी, कैसे खुशी खुदाय।।"

कबीरदास ने सभी धर्मों के अन्धविश्वासों और बाह्य आडम्बरों का विरोध किया। उन्होंने तर्क और प्रमाण देकर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि बाह्य आडम्बर सारहीन हैं। वे तर्क देते हुए कहते हैं कि यदि गंगा स्नान से मुक्ति मिलती होती तो कछुओं व मछलियों को तो कभी की मुक्ति मिल गई होती। इसी प्रकार उन्होंने छुआछूत का भी डटकर विरोध किया। केश मुंड़ाने पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं–

केश मुड़ाए जै हरि मिलैं, सब कोई लेई मुंड़ाइ।
बार-बार के मूंड़ते, भेड़ न बैकुण्ठ जाइ।।"

कबीर ने जप-तप, तीर्थ-यात्रा, हज, सुन्नत, श्राद्ध आदि के प्रति भी कड़ा रुख अपनाया। उनका कहना था कि हज, काबा के बाद भी मुसलमान के मन की मैल दूर नहीं होती। इसी प्रकार वे श्राद्ध व पिण्डदान को दिखावा मानते हैं। यहीं नहीं, धर्म के नाम पर होने वाले मद्य और मांस सेवन की भी उन्होंने कड़ी निन्दा की। जीव हिंसा के प्रति सावधान करते हुए वे कहते हैं–

"बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जे जन बकरी खात हैं तिनको कौन हवाल।।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीरदास ने तत्कालीन समाज में व्याप्त छुआछूत, जातिभेद, मूर्तिपूजा, तीर्थ-व्रत, जीवहिंसा आदि बाह्य आडम्बरों की निन्दा की है।

प्रश्न 15. कबीर काव्य में मानव-जीवन पर विचार करें।

उत्तर–कबीर वाणी मानव जीवन से सम्बद्ध है। इसमें कवि ने यह स्पष्ट किया है कि यह संसार सारहीन है और क्षणभंगुर है। मानव परमात्मा की सर्वोत्तम कृति है। लेकिन यह भी नाशवान है। जो भी इस संसार में आया है उसे इस संसार से जाना ही पड़ेगा। जब मनुष्य का नश्वर शरीर नष्ट हो जाता है तो सभी सगे-सम्बन्धी उसका साथ छोड़ देते हैं। लेकिन फिर भी मनुष्य सांसारिक मोह-माया से मुक्त नहीं होता। वे कहते भी हैं–

"रहना नाहिं देश विराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद पड़े घुल जाना है।"

सच्चाई तो यह है कि जिस ईश्वर ने हमें यह जीवन दिया है वह कभी भी हमसे इसे वापिस ले सकता है। संसार में बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, योद्धा, विद्वान हुए, लेकिन कोई भी यहाँ स्थायी रूप से नहीं रह सका। मृत्यु किसी को नहीं छोड़ती। मानव जीवन की नश्वरता का प्रतिपादन करते हुए कबीरदास जी कहते हैं-

"यह तन काचा कुम्भ है लिया फिरे था साथ।
डबका लग्या फूट गया, कछु न आया हाथ।।"

कबीर साहब का मत है कि जीव स्वयं कर्म करता है और स्वयं भोगता है। कर्मों के वशीभूत होकर ही वह आवागमन के चक्कर में फंस जाता है। ईश्वरीय ज्ञान के बिना वह जन्म-जन्मान्तर के खेल से मुक्त नहीं हो पाता।

"जनम अनेक गया अरु आया, की बेगरि न भाड़ा पाया।"

कबीरदास का मानव-जीवन के लिए यही संदेश था कि मनुष्य को सत्य कर्म करना चाहिए।

पाँच तत्त्वों से बना हुआ यह शरीर कभी भी नष्ट हो सकता है। बुरे कर्म करके यह चादर मैली नहीं करनी चाहिए। गुरु कृपा और सत्संगति से मनुष्य सही रास्ता अपना सकता है। एक स्थल पर वे कहते हैं–

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. **कबीरदास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।**

उत्तर– कबीरदास निर्गुण संत काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। उनका जन्म 1398 ई. में बनारस में हुआ। कबीरदास जी के गुरु रामानंद माने जाते हैं। उनका विवाह लोई से हुआ। तमाम उम्र निर्गुण, निराकार ईश्वर के पदों का गायन करते हुए 1518 ई. में मगहर में उनका परलोकवास हुआ।

2. **कबीर के व्यक्तित्व पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।**

उत्तर– कबीर निर्गुण, निराकार ईश्वर को मानने वाले प्रमुख संत कवि थे। स्वभाव की दृष्टि से वे अक्खड़ थे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि वे सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के समान निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल से साफ, दिमाग से दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य तथा कर्म से वंदनीय थे।

3. **कबीर के कृतित्व पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।**

उत्तर– कबीर स्वयं निरक्षर थे। अतः उन्होंने स्वयं कुछ नहीं लिखा। उन्होंने जीव-जगत् के अपने सभी अनुभवों को बोलकर व्यक्त किया, जिसे उनके शिष्यों द्वारा संकलित किया गया। उनकी रचनाओं का संकलन 'बीजक' कहलाता है। उनकी कुछ रचनाएं 'गुरु ग्रंथ साहिब' में भी संकलित हैं। बीजक के तीन भाग हैं–साखी, सबद तथा रमैनी।

4. **कबीर की साखियों का महत्व बताइए।**

उत्तर– कबीर ने साखी शब्द का प्रयोग **'साक्षी'** अर्थ में किया है। अतः यह साक्षी शब्द का अपभ्रंश रूप है और साक्षी का अर्थ है–गवाही, अर्थात् जो कुछ स्वयं देखा या अनुभव किया गया है। कबीर ने साखी को ज्ञान की आँख कहा है और इन साखियों में विद्यमान ज्ञान के बिना संसार के प्रपंचों से मुक्ति नहीं मिल सकती है। कबीर ने साखी को जीवनानुभव के साक्षी रूप में प्रयुक्त किया है। इस तरह इन साखियों में कबीर ने प्रामाणिक एवं प्रत्यक्ष अनुभव से संबंधित अपने उन विचारों को रखा है जिनके अनुकूल आचरण करने से मानव मात्र का कल्याण हो सकता है। जीवन के कठोर अनुभवों और विसंगतियों को जितने सार्थक तरीके से साखियों के माध्यम से व्यक्त किया गया है, उतने अच्छे तरीके से उनको महाकाव्य में लिख पाना संभव नहीं था। कबीर ने अपनी साखियों का विभाजन अंगों में किया है, जैसे–गुरुदेव कौ अंग, सुमिरण कौ अंग, विरह कौ अंग, परचा कौ अंग, माया कौ अंग आदि। कबीर की साखियाँ मानव को मानवीय गरिमा और अन्तरात्मा की प्रतिष्ठा के लिए जाग्रत करती हैं। कबीर की साखियाँ अधिकतर दोहा छन्द में ही मिलती हैं। कबीर की साखियाँ उनकी लौकिक और आध्यात्मिक अनुभूतियों का भण्डार हैं जो जनसाधारण के विवेक की आंख खोलती हैं।

5. **कबीर की उलटबाँसियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।**

उत्तर– कबीर ने उलटबाँसियों का प्रयोग बहुतायत से किया है। इसका शब्द अर्थ होता है–लोक से उलटे अर्थ में प्रतीकों, शब्दों और बिम्बों का प्रयोग करना। **डॉ. पीताम्बरदत्त बडथ्वाल** का मत है कि आध्यात्मिक अनुभव की अनिर्वचनीयता के कारण साधक को कभी-कभी परस्पर विरोधी उक्तियों द्वारा व्यक्त करने का ढंग अपनाना पड़ता है। जैसे–चन्द्रविहीन चाँदनी, सूर्यविहीन सूर्यप्रकाश आदि और उसके आधार पर ऐसे गूढ़ प्रतीकों की सृष्टि हो जाती है जिन्हें उलटबाँसी या विपयर्य कहते हैं। **पं. परशुराम चतुर्वेदी** ने गुरु गोरखनाथ की उलटी चरचा के आधार पर उलटबाँसी शब्द को उलट तथा अंश के

योग से बना हुआ सिद्ध किया है जिसका सम्बन्ध ऐसी रचना से होगा जिसके किसी न किसी अंश में उलटी बातें मिलती हैं।

6. कबीर की भाषा का परिचय दीजिए।

उत्तर– कबीर की भाषा को खिचड़ी भाषा कहा जाता है। चूँकि वे घुमंतू प्रकृति के व्यक्ति थे, इसलिए सभी भाषाओं से शब्द ग्रहण करना उनका स्वभाव था। मूलतः वे काशी के रहने वाले थे और काशी में मुख्यतः भोजपुरी बोली जाती है। कबीर की भाषा पूर्वी हिन्दी है। कबीर की भाषा में बंगला, बिहारी, मैथिली, भोजपुरी, अवधी, ब्रज, खड़ी, राजस्थानी, पंजाबी, सिन्धी, गुजराती, लहँदा, अरबी, फारसी आदि सभी बोलियों के शब्दों का प्रयोग मिलता है। कबीर की भाषा में सरलता एवं सादगी है, उसमें अपनी बात लोगों तक पहुँचाने की क्षमता है।

7. कबीर ने गुरु के विषय में क्या कहा है?

उत्तर– कबीर ने गुरु को अत्यधिक महत्त्व देते हुए उसे ईश्वर से मिलाने वाला मार्गदर्शक बताया है। कबीर के अनुसार साधक के जीवन में गुरु का अत्यधिक महत्त्व है। गुरु साधक के दोषों का निवारण करके उसे ईश्वर से मिलाता है।

8. कबीर के समाज सुधारक रूप की दो विशेषताएं बताइए।

उत्तर– (i) आचरण की शुद्धता पर बल,

(ii) जातिगत ऊँच-नीच का विरोध।

9. 'कबीर ग्रंथावली' के संपादक कौन हैं?

उत्तर– बाबू श्याम सुंदरदास।

10. 'कबीर ग्रंथावली' का प्रकाशन कब हुआ?

उत्तर– 1928 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा।

11. 'कबीर ग्रंथावली' में साखियाँ कुल कितने अंगों में संकलित हैं?

उत्तर– 59 अंगों में।

12. कबीर की भक्ति-भावना की दो विशेषताएं बताइए।

उत्तर– (i) निर्गुण ईश्वर की साधना पर बल,

(ii) बाह्याडंबरों का विरोध।

13. कबीर के रहस्यवाद की दो विशेषताएं बताइए।

उत्तर– (i) प्रेम की तीव्रता,

(ii) आध्यात्मिकता।

14. कुसंगति के विषय में कबीरदास ने क्या कहा है?

उत्तर– कबीरदास के अनुसार कुसंगति मनुष्य के पतन का मार्ग है। कुसंगति मनुष्य को सांसारिक मोह-माया में फँसाकर ईश्वर से विमुख करती है। कबीरदास के अनुसार कुसंगति का परिणाम विनाश ही है।

15. कबीर का जन्म कब माना गया?

उत्तर– कबीर का जन्म संवत् 1455 (1398 ई.) के लगभग माना गया है।

16. जनश्रुति के अनुसार कबीर किसके गर्भ से पैदा हुए थे?

उत्तर– एक विधवा ब्राह्मणी से।

17. कबीरदास जुलाहा दम्पत्ति को कहां मिले थे?

उत्तर– लहरतारा नामक तालाब के किनारे।

18. कबीर का पालन किसने किया था?

उत्तर– नीरू तथा नीमा नामक जुलाहा दम्पत्ति ने।

19. कबीर का व्यवसाय क्या था?

उत्तर– कपड़ा बुनने (जुलाहे) का।

20. कबीर की पत्नी का क्या नाम था?

उत्तर– लोई।

21. कबीर के गुरु कौन थे?

उत्तर– स्वामी रामानन्द।

22. कबीर के बेटे का क्या नाम था?

उत्तर– कमाल।

23. कबीर की पुत्री का क्या नाम था?

उत्तर– कमाली।

24. कबीर का निधन कब हुआ था?

उत्तर– संवत् 1575 (1518 ई.) में।

25. कबीर भक्ति काव्य की किस शाखा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं?

उत्तर– कबीर भक्ति काव्य की सन्त काव्य शाखा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं।

26. कबीर की वाणी के संग्रह ग्रन्थ का क्या नाम है?

उत्तर– कबीर की वाणी के संग्रह ग्रन्थ का नाम **'बीजक'** है।

27. 'बीजक' के कितने भाग हैं?

उत्तर– कबीर वाणी के ग्रन्थ **'बीजक'** के तीन भाग हैं।

28. कबीर की काव्य-रचना 'रमैनी' किस शैली में लिखी गई है?

उत्तर– कबीर की **'रमैनी'** दोहा-चौपाई शैली में लिखी गई है।

29. कबीर की 'सबद' शीर्षक रचना किस भाषा में रचित है?

उत्तर– कबीर की 'सबद' शीर्षक रचना ब्रजभाषा में रचित है।

30. कबीर के काव्य में साखी किसे कहा गया है?

उत्तर– दोहों को।

31. साखी शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तर– साक्षी या गवाह।

32. कबीरदास के समकालीन दो अन्य संत कवियों के नाम लिखें।

उत्तर– रैदास तथा संत पीपा।

33. कबीर ने किस प्रवृत्ति को अपनाया था?

उत्तर– खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति को।

34. कबीर ने मगहर का उल्लेख किस सन्दर्भ में किया है?

उत्तर– मृत्यु के संदर्भ में।

35. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की मृत्यु कहाँ बताई है?

उत्तर– मगहर में।

36. कबीर को किस शासक ने मरवाने का प्रयास किया था?

उत्तर– सिकन्दर लोधी ने।

37. 'कबीर वाणी' के दो सम्पादकों के नाम लिखिए।

उत्तर– कबीर ग्रंथावली–डॉ. श्यामसुन्दर दास।
कबीर–डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी।

38. विद्वानों ने कबीर की भाषा को क्या नाम दिया है?

उत्तर– सधुक्कड़ी भाषा।

39. 'कबीर' शब्द का अर्थ क्या है?

उत्तर– महान।

40. कबीर को वाणी का डिक्टेटर किसने कहा है?

उत्तर– डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने।

41. कबीरदास किस निर्गुण शाखा के प्रतिनिधि संत थे?

उत्तर– ज्ञानमार्गी शाखा के।

42. कबीर से पूर्व के किन्हीं दो निर्गुण संतों के नाम लिखो।

उत्तर– ज्ञानदेव तथा नामदेव।

43. कबीर की परम्परा में पड़ने वाले किन्हीं दो सन्तों के नाम लिखो।

उत्तर– धर्मदास तथा गरीबदास।

44. कबीर ईश्वर के किस रूप में विश्वास करते हैं?

उत्तर– कबीर ईश्वर के निर्गुण रूप में विश्वास करते हैं।

45. विद्वानों ने कबीर को कहाँ का निवासी बताया है?

उत्तर– विद्वानों ने कबीर को काशी का निवासी बताया है।

46. कबीरदास ने हिन्दू धर्म के किस मत की प्रशंसा की है?

उत्तर– कबीर ने वैष्णव मत की प्रशंसा की है।

47. कबीर ने ईश्वर भक्ति का प्रमुख साधन किसे बताया है?

उत्तर– कबीर ने नाम स्मरण को ईश्वर भक्ति का प्रमुख साधन बताया है।

48. कबीर ने गोविन्द से बढ़कर किसे माना है?

उत्तर– कबीर ने गुरु को गोविन्द से बढ़कर माना है।

49. कबीरदास ने माया को क्या कहा है?

उत्तर– महाठगिनी।

50. कबीर के अनुसार माया कैसी वाणी का प्रयोग करती है?

उत्तर– मधुर वाणी का।

51. माया अपने हाथ में क्या लेकर घूमती रहती है?

उत्तर– तीन गुणों (सत्व, रजस, तमस) का फंदा।

52. कबीरदास ने मानव को कौन-सा रस पीने के लिए प्रेरित किया है?

उत्तर– कबीरदास ने मानव को हरि नाम का रस पीने के लिए प्रेरित किया है।

53. कबीर किस दार्शनिक मत से संबंधित थे?

उत्तर– अद्वैतवाद से।

54. कबीर के काव्य की भाषा को पंचमेल खिचड़ी किसने कहा है?

उत्तर– डॉ. श्यामसुन्दर दास ने।

55. भक्ति को दक्षिण से उत्तर में कौन लाए थे?

उत्तर– रामानंद।

56. 'आदि ग्रंथ' में कबीर की कुल कितनी साखियाँ संकलित हैं?

उत्तर– कुल 203 साखियाँ।

57. संत मत के संस्थापक कौन थे?

उत्तर– नामदेव।

58. कबीर की उलटबांसियों पर किसका प्रभाव सर्वाधिक है?

उत्तर– सिद्धों एवं नाथों का।

59. कबीर के राम कौन हैं?

उत्तर– निर्गुण ब्रह्म।

60. कबीर ने शाक्त तथा वैष्णवों में से किसका पक्ष लिया?

उत्तर– वैष्णवों का।

61. कबीर ने माया से बचने के लिए क्या उपाय बताया है?

उत्तर– ईश्वर की भक्ति।

62. कबीरदास ने मानव को कौन-सा रस पीने को कहा है?

उत्तर– हरि नाम रूपी रस।

63. कबीर ने किसके जीवन को श्मशान के समान बताया है?

उत्तर– जिसके जीवन में विरह (आत्म के विरह) का संचार न हो।

64. कबीरदास ने अपनी वाणी में कैसी नारी की प्रशंसा की है?

उत्तर– पतिव्रता नारी की।

65. कबीरदास ने भाई शब्द का सम्बोधन किसके लिए किया है?

उत्तर– जनसाधारण के लिए।

66. कबीर की किस रचना को सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई है?

उत्तर– साखियों को।

67. कबीर ने महाठगिनी किसे कहा है?

उत्तर– कबीर ने माया को महाठगिनी कहा है।

68. कबीर ने आत्मा को किस रूप में चित्रित किया है?

उत्तर– नारी रूप में।

69. कबीरदास ने कैसी नारी की निंदा की है?

उत्तर– कुलटा नारी की।

70. कबीर के अनुसार ईश्वर को खोजने का उचित स्थान क्या है?

उत्तर– हृदय।

71. कबीर ने अपने निर्गुण ब्रह्म को कहाँ का निवासी बताया है?

उत्तर– घट-घटवासी।

72. कबीर की उलटबांसियों में कौन से रहस्यवाद का वर्णन हुआ है?

उत्तर– भावनात्मक रहस्यवाद का।

73. कबीर की दृष्टि में काजी कौन है?

उत्तर– नमाज पढ़कर झूठी बंदगी करने वाला।

74. कबीर दास ने जातिगत भेद का खण्डन किन शब्दों में किया है?

उत्तर– जाति-पाँति पूछे नहिं कोइ,
हरि को भजे सो हरि को होइ।

75. कबीर ने किस धार्मिक सम्प्रदाय की प्रशंसा की है?

उत्तर– वैष्णव सम्प्रदाय की।

76. कबीर ने अज्ञानी गुरु की तुलना किससे की है?

उत्तर– अन्धे व्यक्ति से।

77. कबीर ने नारी के किस रूप को माया कहा है?

उत्तर– कामिनी रूप को।

78. कबीर ने मानव के किस रूप को अनिवार्य बताया है?

उत्तर– सदाचारी रूप को।

79. कबीर के प्रेम का आदर्श क्या है?

उत्तर– सती स्त्री।

80. कबीर ने ईश्वर की प्राप्ति के लिए क्या त्यागने का संदेश दिया है?

उत्तर– अहंकार।

81. कबीर ने किस भाषा को कूप जल कहा है?

उत्तर– संस्कृत भाषा को।

82. कबीर ने किस भाषा को बहता नीर बताया है?

उत्तर– लोकभाषा को।

83. कबीरदास ने गुरु की महिमा के विषय में क्या कहा है?

उत्तर– गुरु की महिमा अनन्त है।

84. कबीर के काव्य पर किस दार्शनिक मत का सर्वाधिक प्रभाव मौजूद है?

उत्तर– नाथ मत का।

85. कबीर ने विरह की तुलना किससे की है?

उत्तर– सर्प से।

◆◆◆

2

भक्तिकालीन हिंदी कविता : सूरदास

व्याख्या भाग

1 **मैया मैं नहिं माखन खायो।**
भोर भयो गैयन के पाछे, मधुबन मोहि पठायो।
चार पहर बंसीवट भटक्यो, साँझ परे घर आयो।
मैं बालक बहियन को छोटो, छीको केहि बिधि पायो।
ग्वाल-बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो।
तू माता मन की अति भोरी, इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद उपजि हैं, जानि परायो जायो॥
ये ले अपनी लकुटि कमरिया, बहुतहिं नाच नचायो।
सूरदास तब बिहँसी जसोदा, लै उर कंठ लगायो॥

शब्दार्थ–माखन = मक्खन (दूध से बना पदार्थ)। **भोर** = प्रातः। **गैयन** = गौओं। **पाछे** = पीछे। **मधुबन** = ब्रजभूमि के एक वन का नाम। **बंसीवट** = बरगद का वह पेड़ जिसके नीचे श्रीकृष्ण वंशी बजाते थे। **साँझ** = साँयकाल (शाम को)। **बहियन** = हाथ। **छीको** = खूँटी आदि में लटकाया जाने वाला एक उपकरण (जैसे- हँड़िया छीका पर लटका देना। **ग्वाल** = अहीर गोपालक। **बैर** = शत्रु, दुश्मन। **बरबस** = जबरदस्ती (बलपूर्वक किया गया कार्य)। **लपटायो** = लगाना। **भोरी** = भोली। **कहे** = कहने में। **पतियायो** = विश्वास करना, सच समझ लेना। **जिय** = हृदय। **भेद** = संशय, शंका। **उपजि** = उत्पन्न होना। **पराया** = दूसरा। **लकुटि** = लाठी। **कमरिया** = कंबल। **बिहँसि** = हँसकर। **उर** = हृदय। **कंठ** = गला।

प्रसंग–प्रस्तुत पद हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल और आधुनिककाल)'** में संकलित **सूरदास के पदों** से अवतरित है। मूल रूप से सूरसागर के **'बाललीला प्रसंग'** से उद्धृत इस पद में बालक श्रीकृष्ण की वाक्-पटुता का वर्णन सूरदास जी ने किया है। माता यशोदा कृष्ण से पूछती है कि क्या उसने माखन चुराकर खाया है, तो कृष्ण यहाँ माता को प्रत्युत्तर देते हैं।

व्याख्या–श्रीकृष्ण माता यशोदा से कहते हैं कि–हे माता! मैंने माखन नहीं खाया है। प्रातः होते ही आप मुझे मधुबन में गौओं के पीछे भेज देती हो। चारों पहर तो मैं वन में भटकता रहता हूँ और शाम को ही मैं घर आता हूँ। मैं तो छोटा बालक हूँ, जिसके छोटे-छोटे हाथ हैं। मैं अपने इन छोटे हाथों से किस प्रकार से छींका (दही रखने का बर्तन) प्राप्त कर सकता हूँ। सभी ग्वाल-बाल तो मेरे शत्रु हैं जो ये माखन मेरे मुख पर जबरदस्ती लगा देते हैं।

माँ, तू मन की बड़ी भोली है, इनकी बातों में आ जाती है। तेरे दिल में जरूर कोई भेद है, जो मुझे पराया समझकर मुझ पर संदेह कर रही हो। ये अपनी लाठी और कम्बल ले ले, इन्होंने मुझे बहुत नाच नचाया है। सूरदास जी कहते हैं, तब हँसकर यशोदा ने श्रीकृष्ण को अपने हृदय से लगा लिया।

विशेष–1. बालक कृष्ण की वाक्-पटुता दर्शनीय है।

2. सरल, सहज एवं भावानुकूल ब्रजभाषा का प्रयोग है।

3. तत्सम एवं तद्भव शब्दावली का प्रयोग है।

4. प्रसाद एवं माधुर्य गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. अनुप्रास एवं स्वाभावोक्ति अलंकारों का प्रयोग है।

6. पद छंद का प्रयोग है।

2

ऊधो मन न भए दस बीस।
एक हुतौ सो गयौ स्याम सँग, को अवराधैतव ईस।
इंद्री सिथिल भई केसव बिनु, ज्यौं देही बिनु सीस।
आसा लागि रहति तन स्वासा, जीवहिं कोटि बरीस।
तुम तौ सखा स्याम सुंदर के, सकल जोग के ईस।
सूर हमारैं नंद-नंदन बिनु, और नहीं जगदीस ॥

शब्दार्थ–हुतौ = ही था। **स्याम** = श्याम वर्ण वाले, श्रीकृष्ण। **को** = कौन। **अवराधै** = आराधना करें। **ईस** = ईश्वर, **निर्गुण** ब्रह्म। **इंद्री** = इन्द्रियाँ। **सिथिल** = शिथिल, निष्चेष्ट, जड़। **भई** = हो गई। **केसव** = केशव, श्रीकृष्ण। **देही** = शरीर। **सीस** = शीश, सिर। **तन** = शरीर। **स्वासा** = श्वास, साँस। **जीवहिं** = जीवित रहूँगी, जीऊँगी। **कोटि** = करोड़ों। **बरीस** = **वर्ष, साल**। **सखा** = मित्र। **सकल** = सारे। **जोग** = योग-साधना।

प्रसंग–प्रस्तुत पद हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल और आधुनिककाल)'** में संकलित **सूरदास के पदों से** अवतरित है। मूल रूप से सूरसागर के **'भ्रमरगीत प्रसंग'** से उद्धृत इस पद में **सूरदास** जी ने सगुण ब्रह्म की उपासना **को निर्गुण** ब्रह्म की उपासना की तुलना में श्रेष्ठ सिद्ध किया है।

व्याख्या–गोपी उद्धव को देखकर कहती है–हे उद्धव! मेरे पास दस-बीस मन नहीं हैं। मेरे पास तो केवल एक ही **मन था** और वह भी श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्ण के साथ मथुरा चला गया है। अब तुम्हीं बताओ कि बिना मन के तुम्हारे निर्गुण **ब्रह्म की** उपासना कौन करे।

श्रीकृष्ण के बिना मेरी सारी इन्द्रियाँ ठीक उसी प्रकार शिथिल पड़ गई हैं, जैसे सिर के बिना शरीर शिथिल पड़ **जाता है**। अब तो श्रीकृष्ण के वापस आने की आशा या उम्मीद में ही मेरे शरीर में साँस चलती हैं और इसी आशा में मैं करोड़ों **वर्ष** तक जीवित रहूँगी।

अन्त में सूरदास जी कहते हैं कि गोपी कहने लगी–हे उद्धव! तुम तो उन श्रीकृष्ण के मित्र हो जो सारे योग के **स्वामी हैं**; इसीलिए मैं तुम से कहती हूँ कि श्रीकृष्ण के बिना हम किसी अन्य या निर्गुण ब्रह्म की उपासना नहीं कर सकती हैं।

विशेष–1. गोपी ने श्रीकृष्ण के प्रति अपने एकनिष्ठ प्रेम का सुन्दर वर्णन किया है।

2. सरल, सहज एवं भावानुकूल ब्रजभाषा का प्रयोग है।

3. तत्सम एवं तद्भव शब्दावली का प्रयोग है।

4. प्रसाद माधुर्य गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. अनुप्रास, दृष्टांत तथा वक्रोक्ति अलंकारों का प्रयोग है।

6. पद छंद का प्रयोग है।

(क) सूरदास : साहित्यिक परिचय

1. सूरदास का संक्षिप्त जीवन परिचय देते हुए उनकी काव्यगत विशेषताएँ बताइए।

अथवा

सूरदास का साहित्यिक परिचय दीजिए।

उत्तर–सूरदास का जीवन परिचय : व्यक्तित्व–भक्तिकाल में अनेक निर्गुण एवं सगुण भक्त कवि हुए। सगुण कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास जी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों में सर्वश्रेष्ठ सन्त-भक्त कवि सूरदास विलक्षण प्रतिभा के स्वामी थे। वे एक साथ भक्त, कवि और संगीतज्ञ थे। इनके वात्सल्य, शृंगार और भक्ति के रससिक्त पद जन-जन की जिह्वा पर मुखरित हो मानव-मन को आत्म-विभोर कर देते हैं। सूरदास का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ जब समस्त हिन्दू जाति विदेशी आक्रमणकारियों से संत्रस्त होकर एकदम निराश हो चुकी थी। ऐसे समय में सूरदास ने भगवान कृष्ण की लीलामाधुरी के गीत गाकर हिन्दू जाति को नवस्फूर्ति प्रदान की और उनका मन उस परब्रह्म के माधुर्य स्वरूप में रमाकर बहुत बड़ा आश्वासन प्रदान किया।

महान कवि सूर का काव्य जितना परिचित, प्रचलित और प्रसिद्ध है, उनका व्यक्तिगत जीवन उतना ही अपरिचित और अस्पष्ट है। महात्मा सूर की जन्मभूमि के सम्बन्ध में चार स्थान चर्चित रहे हैं–गोपांचल, रुनकता, गौघाट और सीही। बहुत से विद्वानों ने बल्लभगढ़ के पास स्थित सीही ग्राम को ही सूरदास का जन्म-स्थान माना है और यह मत अब मान्य भी हो गया है। अधिकतर विद्वान इनका जन्म सम्वत् 1535 (सन् 1478) को और मृत्यु सम्वत् 1640 (सन् 1583) के आस-पास मानते हैं।

सूरदास जन्मांध थे अथवा बाद में हुए, इस विषय पर भी पर्याप्त विवाद रहा है। 'सूरसागर' इनका प्रामाणिक ग्रंथ है। इनके 'विनय-पदों' में इनके अंधे होने का उल्लेख है–

कर जोरि सूर बिनती करै,
सुनहुन को रूकमनी रवन।
कटौ न फंद मों अंध कै,
अब बिलंब कारन कवन।

सूरदास के काव्य में रंगों, हाव-भाव, जीवन तथा शरीर के सूक्ष्म व्यापारों, प्रकृति के विविध क्रियाकलापों का सजीव वर्णन पढ़कर इनके जन्मांध होने में सन्देह होता है। किन्तु समकालीन श्रीनाथ भट्ट ने इन्हें जन्मांध कहा है–

'जन्मांधे सूरदासोऽभूत' **(संस्कृत मणिमाला)**

इसके अतिरिक्त गुसांई हरिरास ने अपने 'भाव प्रकाश' में लिखा है–

'सो सूरदास को जन्म ही से नेत्र नाहीं है।'

स्वयं सूर ने भी कहा है–

'करमहीन जनम कौ आंधै मों तो कौन नकारी।'

उपर्युक्त सब प्रमाण सूर को जन्मांध ही सिद्ध करते हैं। ये अपने काव्य में रंग-रूप का जो संसार रच सके, उसके लिए यही कहा जा सकता है कि सूरदास जैसे महात्मा के लिए 'दिव्यदृष्टि' के कारण ही यह अनुपम सृजन सम्भव हो सका।

सूरदास का कृतित्व–वैसे तो सूरदास द्वारा लिखित कई ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है, तथापि प्रामाणिक रचनाएँ केवल तीन ही हैं–**'सूरसागर'**, **'साहित्य लहरी'** और **'सूरसारावली'**। इनमें **'सूरसागर'** ही सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है और यही सूरदास की कीर्ति का आधारस्तम्भ है। 'सूरसागर' में श्रीमद्‌भागवत के दशम् स्कन्ध की लीलाओं का विस्तार से वर्णन है, शेष स्कन्धों की कथा संक्षेप में कही कई है। इसमें लगभग 5206 पद मिलते हैं जिनमें से 4000 पदों में कृष्ण लीलाओं का हृदयाकर्षी वर्णन हुआ है। शेष पद विनय और प्रार्थना से सम्बन्धित हैं।

'सूर-सारावली' को 'सूरसागर' की भूमिका के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस रचना का प्रणयन 'सूरसागर' के उपरान्त हुआ। 'सूर-सारावली' में पदों की संख्या 1107 मानी जाती है।

'साहित्य-लहरी' दृष्टकूट पदों में रची गई तीसरी प्रमुख कृति है। इसके 118 पदों में राधा-कृष्ण की प्रेमलीला, नायिका भेद, रस और अलंकारों का वर्णन मिलता है। 'साहित्य लहरी' के अनेक पदों में सूरदास की भक्ति भावना ही व्यंजित हुई है। जहाँ तक सूर की कृतियों के प्रतिपाद्य का प्रश्न है, उस बारे में उल्लेखनीय है कि सूरदास ने जीवन और जगत के अनेक विषयों को अपने वर्णन का विषय बनाया है।

साहित्यिक/काव्यगत विशेषताएँ–सूरदास का काव्य अनन्य रूप से श्रीकृष्ण को समर्पित भक्ति काव्य है जिसमें भक्ति के साथ शृंगार रस की भी प्रचुरता है। सूरदास की उपर्युक्त तीनों रचनाओं के आधार पर उनके काव्य की प्रमुख साहित्यिक/काव्यगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. भक्ति-भावना–सूरदास श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पहले सूर ने निर्गुण भक्ति से सम्बंधित पदों की रचना की है। निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते समय उनकी भक्तिभावना का रूप दैन्य था, लेकिन पुष्टिमार्ग में दीक्षित हो जाने के उपरान्त इन्होंने सगुण-साकार श्रीकृष्ण के लीला सम्बन्धी पदों की रचना आरम्भ कर दी। उनका कहना था–

'अविगत गति कछु कहत न आवै

× × ×

रूप रेख गुन-जाति-जुगति बिनु निरालंब कित धावै।
सब विधि अगम विचारहिं तातें सूर सगुन लीला पद गावै।

सूर के कृष्ण-लीला सम्बन्धी पदों में उनकी वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भक्ति के ही दर्शन होते हैं।

2. वात्सल्य चित्रण–हिन्दी काव्य के अन्तर्गत सूरदास वात्सल्य रस के सम्राट माने जाते हैं। उन्होंने कृष्ण की बाल-सुलभ क्रीड़ाओं, चेष्टाओं तथा विभिन्न भाव-भंगिमाओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन किया है। साथ ही यशोदा के हृदय का भी कोई पक्ष उनसे अछूता नहीं रहा। ऐसा प्रतीत होता है मानो वे यशोदा के हृदय का कोना-कोना झाँक आए हों। उनका बाल-वर्णन अत्यन्त सहज, स्वाभाविक, जीवन्त एवं मनोवैज्ञानिक है। द्रष्टव्य है–

जसोदा हरि पालनै झुलावै
हलरावै, दुलरावै, मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै।
मेरे लाल को आओ निंदरिया, काहैं न आनि सुवावै।
तू काहै न बेगिहीं आवै, तोको कान्हा बुलावै।

वास्तव में, सूरदास वात्सल्य रस की दृष्टि से अद्वितीय हैं। उनको बाल मनोविज्ञान और माता के हृदय की सजलता का सम्यक ज्ञान था।

3. शृंगार-चित्रण–महाकवि सूरदास ने राधा और कृष्ण के बाल और युवा रूप के माध्यम से शृंगार का सूक्ष्म और व्यापक चित्रण किया है। राधा-कृष्ण के पारस्परिक प्रेम के अनेक प्रसंग, अनेक छवियाँ, अनेक भाव सूर के काव्य में व्यक्त हुए हैं। राधा-कृष्ण के प्रारम्भिक मिलन की झलक द्रष्टव्य है; जब वे ब्रज की गलियों में खेलने जाते हैं तो–

औचक ही देखी तहँ राधा, नैन विसाल भाल दिए रोरी।
संग लरिकिनी चलि इत आवति, दिन-थोरी, अति छबि तन गोरी।
सूर स्याम देखत हीं रीझै, नैन-नैन मिलि परी ठगोरी॥

सूर का वियोग शृंगार भी अत्यन्त व्यापक और मार्मिक है। गोपियों को श्रीकृष्ण के वियोग में शीतलता प्रदान करने वाली वस्तुएँ भी दाहक प्रतीत होती हैं–

बिनु गोपाल बैरनि भई कुंजै।
तब ये लता लगति अति सीतल अब भई विषम ज्वाल की पुंजै।
वृथा बहति जमुना, खग बोलत बृथा, कमल फूलें अलि गुंजै।
पवन, पानि, घनसार, सुमन दै दधिसुत किरन भानु भई भुंजै॥

4. प्रकृति-चित्रण—सूर-काव्य में प्रकृति का व्यापक चित्रण हुआ है। यद्यपि यह स्वतन्त्र चित्रण नहीं है फिर भी प्रभावशाली है। सूर ने प्रायः कृष्ण की लीलाओं की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का चित्रण किया है। सूरदास ने श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते समय वृन्दावन हो या गोकुल, वन हो या यमुना का तट या फिर कुंज-गलियाँ, इन सबका बड़ा ही हृदयाकर्षी चित्रण किया है। गोवर्धन लीला के अन्तर्गत वे भयंकर बादलों का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि—

घटा घनघोर घहरात, अहरात, दररात, ब्रज लोग डरपै।
तड़ित आघात तररात उतपात सुनी नारि-नर सकुचि तन प्रान अरपै॥

सूर ने गोपियों की सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का सहारा लिया है।

बिनु गोपाल बैरनि भइ कुंजे।
तब ये लता लगति अति सीतल अब भई विषम ज्वाल की पुंजै।
बृथा बहति जमुना, खग बोलत बृथा, कमल फूलें अलि गुंजै।
पवन, पानि, घनसार, सुमन दै दधिसुत किरन भानु भई भुंजै॥

5. गेय मुक्तक—सूरदास ने अपना सारा काव्य प्रायः गेय मुक्तक शैली में लिखा है। यद्यपि सूरदास ने कृष्ण-लीलाओं कृष्ण की नाना चेष्टाओं, नाना छवियों का बड़ा व्यापक चित्रण किया है, फिर भी यह क्रमबद्ध रूप में न होने के कारण मुक्तक ही कही जा सकती है।

6. भाषा—सूरदास ने ब्रज भाषा के साहित्यिक रूप को अपनाया। ब्रजभाषा में कहीं-कहीं संस्कृत, खड़ी बोली, राजस्थानी बुन्देलखण्डी, पंजाबी तथा अरबी-फारसी आदि भाषाओं के शब्दों का भी सुन्दर समन्वय किया है। मुहावरे, लोकोक्तियों और अलंकारों के सफल प्रयोग से इनके काव्य-सौन्दर्य में अभिवृद्धि हुई है।

7. छन्द—सूरदास ने अपने काव्य में गीति पदों का प्रयोग किया है। इन्होंने दोहा, चौपाई, सवैया, चौबेला, गीतिका आदि छन्दों का प्रयोग भी किया है।

8. अलंकार-योजना—सूर ने भावों को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए अलंकारों का भी समुचित प्रयोग किया है। यूँ तो सूर के काव्य में प्रायः सभी प्रमुख अलंकारों का प्रयोग हुआ है, लेकिन उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, रूपक, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकारों के प्रति विशेष प्रेम दिखाई पड़ता है।

अन्त में कहा जा सकता है कि सूर के पद भाव और कला दोनों दृष्टियों से सशक्त एवं समुन्नत हैं। उन्होंने जितनी तन्मयता से विनय के पद रचे हैं उतनी ही कलात्मकता से लीला के पदों का निर्माण किया है। वास्तव में सूर साहित्याकाश के सूर्य हैं। कहा भी गया है—

सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केसवदास।
अबके कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रयास॥

◆◆◆

(ख) सूरदास : भक्ति-भावना

2. सूरदास की भक्ति-भावना का विवेचन कीजिए।

अथवा

कृष्ण भक्त कवि के रूप में सूरदास की भक्ति-भावना पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—सूरदास की भक्ति-भावना—सूरदास भक्तिकालीन कृष्ण भक्ति काव्य के सर्वप्रमुख कवि हैं। श्रीकृष्ण के प्रति उनमें अनन्य भक्ति भाव के दर्शन होते हैं। उनके काव्य में भक्ति और कवित्व का अद्‌भुत सम्मिश्रण हुआ है। सूरदास भक्त हैं या कवि इस विषय में पर्याप्त मतभेद रहा है। कतिपय विद्वानों का मानना है कि सूर मुख्यतः भक्त ही थे और उन्होंने अपनी भक्ति-भावना को व्यक्त करने के लिए कविता का सहारा लिया।

सूरदास की भक्ति के दो रूप दृष्टिगत होते हैं–

(क) पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पूर्व की दैन्य-भक्ति।

(ख) पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के पश्चात् पुष्टिमार्गीय भक्ति।

वल्लभाचार्य से दीक्षित होने से पूर्व सूर भारतवर्ष में प्रचलित अन्य भक्ति-पद्धतियों एवं उपासना प्रणालियों से बहुत प्रभावित थे। इसीलिए उनके कुछ पद हठयोग एवं शैव-साधना से प्रभावित भी जान पड़ते हैं और कुछ निर्गुण भक्ति के भी पक्षधर दिखाई पड़ते हैं। सूर के पदों में नवधा भक्ति और विनय की प्रधानता है। नवधा भक्ति के अन्तर्गत श्रवण, स्मरण और कीर्तन का नाम आता है। भक्ति के इन तीनों भेदों में भगवान के नाम की ही प्रधानता है। सूर की यह मान्यता है कि जो व्यक्ति भगवान के यश का श्रवण करता है, उसका गायन करता है तथा जो भगवान की अतुल्य कीर्ति का स्मरण करता है, उसे हरि की भक्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है। अधम-से-अधम प्राणी भी हरिनाम की नौका पर सवार होकर भवसागर को पार कर लेता है–

को को तर्‌यौ हरिनाम लिये।
सुआ पठावति गनिका तारी, व्याध तरो सर घात किये।
प्रभु ते जन-जन तैं प्रभु बरतत, जाकी जैसी प्रीति हिये।

प्रभु-यश श्रवण की महिमा का बखान करते हुए सूर लिखते हैं कि–

यह लीला सुनै सुनावै, सो हरि भक्ति पाइ सुख पावै।

तथा– **जो पद स्तुति सुनै सुनावै, सूर सो ज्ञान भक्ति को पावै।**

सूरदास पर वल्लभाचार्य की पुष्टिमार्गीय भक्ति का सर्वाधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। इसी कारण सूरदास को **'पुष्टिमार्ग का जहाज'** भी कहा जाता है। पुष्टिमार्ग के अनुसार भगवान का अनुग्रह ही पुष्टि है। पुष्टिमार्गीय भक्ति को प्राप्त करने के लिए भक्त को अपना सब कुछ अर्पण करना पड़ता है। **वल्लभाचार्य** के अनुसार पुष्टिमार्गीय भक्ति के एकमात्र आलम्बन कृष्ण हैं। सूर के अनेक पदों में श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति भावना परिलक्षित होती है–

"मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पर आवै॥"

सूरदास के काव्य में पुष्टिमार्गीय भक्ति एवं पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के पूर्व दास्य भाव की भक्ति के जो व्यापक चित्र दिखाई देते हैं, उनके परिप्रेक्ष्य में सूरदास की भक्ति-भावना का विवेचन निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर किया जा सकता है–

1. दास्य भाव की भक्ति–'सूरसागर' के विनय और प्रार्थना सम्बन्धी पदों में सूरदास की दैन्य भक्ति-भावना परिलक्षित होती है। सूर ने अपने आप को परम पापी और प्रभु को पापियों का उद्धारक कहा है–

प्रभु हौं सब पतितन कौ टीकौ।
और पतित सब दिवस चारि के, हौं तो जनमत ही कौ।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं–

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
तुम सौं कहा छिपी करुनामय, सबके अन्तर्यामी।
पापी परम, अधम, अपराधी, सब पतितन में नामी।
सूरदास प्रभु अधम उधारन सुनियै श्रीपति स्वामी॥

दास्य अथवा दैन्य भक्ति के अन्तर्गत साधक स्वयं को दास और प्रभु को स्वामी मानकर उनकी पूजा-अर्चना करता है। इसमें एक ओर वैराग्य, पश्चात्ताप, विषवासना की निन्दा, आत्मालोचना है, तो दूसरी ओर प्रभु-महिमा, सत्संग-महिमा तथा उद्धारोपासना है।

2. वात्सल्य भाव की भक्ति–श्रीकृष्ण के बालरूप की लीलाओं का वर्णन, सुदामा तथा गोपियों का वर्णन तथा नन्द और माँ यशोदा के प्रेम-वर्णन में सूरदास की वात्सल्य भक्ति के दर्शन होते हैं। सूर को बाल मनोविज्ञान और माता के अन्तस् की सजलता का सम्यक् ज्ञान था। उन्होंने श्रीकृष्ण के माध्यम से बालकों के सौन्दर्य, स्वभाव एवं चेष्टाओं का सचेत-मनोवैज्ञानिक निरूपण किया है। यशोदा के मन की अभिलाषा का एक सुन्दर चित्र यहाँ द्रष्टव्य है–

जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरौ लाल घुटरुवनि रेंगै कब धरनी पग द्वैक धरै।
कब द्वै दंत दूध के देखौं कब तुतरे मुख बैन झरै।
कब नन्दहि कहि बाबा बोले कब जननी कहिं मोहिं ररै।

सूर ने एक माँ की हार्दिक भावनाओं का अत्यन्त सहज, स्वाभाविक व जीवन्त अंकन किया है।

सूरदास 'कहाँ लौं बरनौं सुन्दरताई' कहकर श्रीकृष्ण की सुन्दरता को अवर्णनीय-अनिर्वचनीय मानते हैं, लेकिन फिर भी उनके बाल-नटखट रूप का चित्रण किए बिना सुख का अनुभव नहीं करते। धूलधूसरित श्रीकृष्ण की शोभा का यह रूप देखिए,

"सोभित कर नवनीत लिए
घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मंडित मुख-दधि-लेप किए॥
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिए।
लट लटकनि मनु मत्त, मधुप-गन मादक मधुहिं पिए।"

कृष्ण की बाल क्रीड़ाओं का यशोदा के साथ साक्षात्कार करने वाले इस प्रज्ञाचक्षु भक्त ने भक्तिभाव की सहज सघन से यशोदा के बहाने मातृ-हृदय का ऐसा सहज, स्वाभाविक और हृदयाकर्षी चित्र चित्रित किया है कि सहृदय विमुग्ध और चकि रह जाते हैं। यदि विचार किया जाए तो वात्सल्य भाव ही भक्ति का सर्वशुद्ध भाव है जिसमें न तो विरक्ति की भावना है और किसी सांसारिक ऐन्द्रिक सुख की कामना है।

3. सख्य भाव की भक्ति–इस भक्ति में भक्त का भगवान के साथ सखा-भाव रहता है। सख्य भक्ति में सूर ने अप आराध्यदेव कृष्ण को अपना सखा मानकर उनके प्रति अपनी भक्ति-भावना प्रकट की है। उनको गोप-ग्वालों के साथ खेलते, गऊ चराते तथा हास-परिहास करते दिखाया गया है। सखाओं के साथ कृष्ण द्वारा माखन चोरी का वर्णन द्रष्टव्य है–

सखा सहित गए माखन-चोरी।
देख्यौ स्याम गवाच्छ-पंथ ह्वै, मथति दधि भोरी।
× × × × × ×
आपु गए हरुएँ सूनै घर।
सखा सबै बाहिर ही छाँड़े, देख्यौ दधि-माखन हरि भीतर॥
तुरत मथ्यौ दधि-माखन पायौ, लै-लै खात, धरत अधरनि पर।
सैन देइ सब सखा बुलाए, तिनहिं देत भरि-भरि अवनै कर॥

4. माधुर्य भाव की भक्ति–सूर ने माधुर्य भाव की भक्ति के अन्तर्गत राधा-कृष्ण तथा कृष्ण-गोपियों की शृंगारिक लीला का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। जहाँ सूरदास को श्रीकृष्ण का सौन्दर्य अत्यधिक रुचिकर लगता है, वहीं गोपियाँ भी श्रीकृष्ण की शोभा को निहारते ही रहना चाहती हैं और उसके सौन्दर्य का वर्णन करने में स्वयं को असमर्थ पाती हैं–

कहाँ लौं बरनौ सुन्दरताई ?
खेलत कुंवर कनक आँगन मैं, नैन निरखि छबि पाई॥

उपर्युक्त विश्लेषण के बाद कहा जा सकता है कि सूरदास एक उच्च कोटि के भक्त-कवि थे। उनकी भक्ति-भावना एक तरफ तो भागवत की भक्ति-विधान से अनुप्राणित है और दूसरी तरफ वल्लभ-सम्प्रदाय की मान्यताओं से युक्त है। सूर ने सख भाव की भक्ति को अपनाते हुए भी यशोदा-नन्द के वात्सल्य-भाव, राधा एवं गोपियों के माधुर्य भाव की सुन्दर व्यंजना की है जिसमें अनुभूति की गम्भीरता एवं रमणीयता के साथ-साथ हृदय की तल्लीनता भी पर्याप्त रूप में दिखाई देती है।

◆◆◆

(ग) सूरदास : बाललीला वर्णन/वात्सल्य वर्णन

3. सूरदास के बाललीला वर्णन पर प्रकाश डालिए।

अथवा

"सूर ही वात्सल्य है, वात्सल्य ही सूर है।"–आचार्य रामचंद्र शुक्ल की इस उक्ति के संदर्भ में सूरदास के वात्सल्य का विवेचन कीजिए।

उत्तर–सूरदास का बाललीला वर्णन अथवा वात्सल्य वर्णन–बाल वर्णन से अभिप्राय किसी बालक के सौंदर्य, उसकी बाललीलाओं उसके हस्तपाद संचालन, सहज कटाक्षों, उसके बाल मनोभावों आदि के उस सहज स्वाभाविक चित्रण से होता है, जिसे पढ़कर सामाजिक में सहज ही में 'वत्सल' नामक भाव जाग्रत होता है। अतः बाललीला वर्णन अथवा वात्सल्य वर्णन दोनों एक-दूसरे के

संपूरक हैं। सूरदास का साहित्य बाललीला वर्णन अथवा वात्सल्य वर्णन की दृष्टि से न केवल अपने समय का अपितु सार्वकालिक हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ साहित्य माना जाता है। सूरदास जी ने बालक कृष्ण को आलंबन मानकर वात्सल्य वर्णन किया है। उनके बाललीला वर्णन अथवा वात्सल्य वर्णन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. बाल कृष्ण के रूप-सौंदर्य का वर्णन–महात्मा सूरदास ने बाल वर्णन के अंतर्गत बालक कृष्ण के रूप का वर्णन किया है। कवि उनके रूप-सौंदर्य पर मुग्ध है और उनके रूप-सौंदर्य का वर्णन करते समय नवीन उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग करता है। कवि ने बाल कृष्ण के अंग-प्रत्यंग का इतना सुंदर वर्णन किया है कि पाठक के नेत्रों के सामने बाल कृष्ण का रूप-सौंदर्य साकार हो उठता है। ऐसा करते समय कवि उपमाओं की झड़ी लगा देता है। वह कृष्ण के शारीरिक अंगों का वर्णन करते-करते उनके वस्त्र, आभूषणों पर भी प्रकाश डालता है। बालक कृष्ण का सुंदर रूप-सौंदर्य देखकर यशोदा के हृदय में असीम प्रसन्नता उत्पन्न होती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

''आँगन श्याम नवावहिं, जसुमति नंदरानी।
तारी दै-दै गावहिं मधुरी मृदु बानी॥
पायन नूपुर बाजई कटि किंकिन कूजै।
नन्ही एड़ियन असिलता फल बिम्ब न पूजै॥''

सूरदास श्रीकृष्ण की सुंदर बाल छवि का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उनकी छवि देखकर कामदेव की शोभा भी नष्ट हो जाती है। यशोदा अपने पुत्र कृष्ण को सुंदर वस्त्र-आभूषण पहनाती है। गोपियाँ उन्हें दर्पण में अपनी छवि दिखाती हैं। बालक कृष्ण ने सिर पर मुकुट, कमर पर काछनी और अंगों पर आभूषण पहने हैं। उनके पैरों में नुपूर हैं और कमर में किंकनियाँ हैं। उसी समय ब्रज की गोपियाँ वहाँ आती हैं और बाल कृष्ण को दर्पण दिखाती हैं। इसी प्रकार यशोदा अपने पुत्र के दूध के दाँत देखकर बहुत खुश हो जाती है और उसके घुंघराले बालों तथा नेत्रों पर न्योछावर हो जाती है।

"लाल हौं बारी तेरे मुख पर।
कुटिल अलक, मोहनि-मन बिहँसनि भृकुटी विकट ललित नैननि पर।
दमकति दून-दँतुलिया विहँसत, मनु सीपज घर दियौ बारिज पर।
लघु-लघु लट सिर घुघरवारी, लटकन लटकि रह्यो माथैं पर।"

इसी प्रकार कवि ने बालक कृष्ण के जन्मोत्सव संस्कार स्मरण का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन किया है। जब वासुदेव रात के समय श्रीकृष्ण को गोकुल ले जाकर प्रसव पीड़ा से थकित यशोदा मैया के निकट सुला देते हैं और उनकी पुत्री को उठाकर ले जाते हैं, तब सवेरा होने पर यशोदा मैया देखती है कि रात को उन्होंने पुत्र को जन्म दिया है। अपने नवजात पुत्र को देखकर यशोदा मैया का हृदय गद्‌गद् हो गया। प्रसन्नता के मारे उनके मुख से बोल नहीं निकलता है। वे अपने पति नंद को बुलाने भेजती है, यथा–

"जागी महरि, पुत्र-मुख देख्यौ, पुलिक अंग उर मैं न समाई।
गद्‌गद् कंठ, बोल नहीं आवै, हरषबंत ह्वै, नंद बुलाई।
आवहु कंत, देव परसन भऐ, पुत्र भयौ, मुख देखौ छाई।
दौरि नंद गए, सुत-मुख देख्यौ, सो मुख मोपे बरनि न जाई। "

श्रीकृष्ण के जन्म का समाचार पूरे ब्रज में फैल गया। नंद बाबा व यशोदा मैया को बधाई देने और शिशु श्रीकृष्ण का सुंदर मुख देखने के लिए उनके घर पूरा ब्रज उमड़ पड़ा। पुत्र के जन्मोत्सव पर नंद व यशोदा की प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं है। आज कोई भी ब्रजवासी अपने कार्य के लिए घर से दूर नहीं था, बल्कि सीधे ही नंद के घर जा पहुँचा। पूरे गोकुल में आनंद व प्रसन्नता का वातावरण है; यथा–

"द्वारे भीर, गोप-गोपनि की, महिमा बरनि न जाइ।
अति आनंद होत गोकुल मैं, रतन भूमि सब छाइ।
नाचत वृद्ध, तरुन अरु बालक, गोरस कीच मचाइ।"

2. बालक श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन–रूप-सौंदर्य के अतिरिक्त कवि ने कृष्ण की बाल-लीला का हृदय-स्पर्शी वर्णन किया है। संयोग वात्सल्य के अंतर्गत बालक कृष्ण की तुतलाती भाषा, घुटनों के बल चलना, धीरे-धीरे खड़ होना, फिर गिरना, नंद को बाबा कहना, शरीर पर मिट्टी का लेप करना, मुख पर दही का लेप करना आदि न जाने कितनी बाल चेष्टाएँ हैं जिनका वर्णन सूर ने बड़ा मर्मस्पर्शी और स्वाभाविक रूप से किया है। संभवतः बाल विज्ञान के बड़े-बड़े विद्वान भी इस प्रकार का वर्णन नहीं कर पाएंगे। बालकों की रुचि का कवि को कितना ज्ञान था, वह निम्नलिखित उदाहरण से देखा जा सकता है–

"जसोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै, दुलरावै, मल्हावै, जोई सोइ कछु गावै।
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया काहे न आनि सुलावै।
तू काहै नहिं बेगहि आवै तोकौं कान्ह बुलावै।
कबहुं पलक हरि मूंदि लेत हैं कबहुं अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन है कै रहि करि-करि जसुमति मधुरै बतावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नंद भामिनि पावै।"

इसी प्रकार जब बाल कृष्ण पैरों के बल चलने लगते हैं तो यशोदा उसे देखकर आनंदित हो उठती हैं और नंद को य दृश्य देखने के लिए बार-बार बुलाती हैं। जब कृष्ण चलते हैं तो उनके पैरों की पाजेब बजने लगती है और वे मन को हर लेते है

"कान्ह चलत पग पद्वै-पद्वै धरनी।
जो मन में अभिलाष करति ही सो देखति नंद धरनी।
रूनुक छुनुक नुपूर बाजत पग यह है अति मन हरनी।
बैठि जात पुनि उठत तुरत है अति छवि जाति न बरनी।"

धीरे-धीरे बाल कृष्ण तनिक बड़े होने लगते हैं। वे दूध पीने से मन चुराने लगते हैं, तब यशोदा माता उसे चोटी बढ़ने क प्रलोभन देती है और कहती है कि यदि वह गाय का दूध पिएगा तो उसकी चोटी बड़ी हो जाएगी। तब सब बच्चों में उसकी चोट की अधिक शोभा होगी। यशोदा द्वारा फुसलाने पर कृष्ण दूध पीने लग जाते हैं। परंतु जब वह अपने हाथों से चोटी टटोलते है तो वह बड़ी नहीं होती। तब कृष्ण यशोदा माता से कहते हैं–

"मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पिवत भई, यह अजहूँ है छोटी॥
तू जो कहति बल के बैनी ज्यों, है है लांबी मोटी।
कांचौ दूध पियावत पचि-पचि, देत न माखन रोटी॥"

एक बार बालक कृष्ण को ब्रज के घर में माखन चुराते हुए गोपी ने पकड़ लिया। लेकिन कृष्ण घबराने वाले नहीं थे उन्होंने उस गोपी से कहा कि मैं तो इसे अपना घर समझकर आया था। गौरस में जब मैंने चींटी देखी तो मैंने दधि भाजन म हाथ डाल दिया। गोपी उसकी चालाकी से प्रसन्न हो गई और उसे छोड़ दिया। एक बार कृष्ण अपने ही घर में माखन चोरी म पकड़े गए। उनके मुख में माखन लगा हुआ था। इससे स्पष्ट था कि उन्होंने माखन चुरा कर खाया था। परंतु माता यशोदा स सफाई देते हुए वे कहते हैं–

"मैया मैं नाहिं माखन खायौ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि बरबस मुख लपटायौ॥
देखि तुहि छींके पर भाजन ऊँचे धरि लटकायौ।
तुही निरखि नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायौ॥
मुख दधि पोंछि कहत नंद नंदन दौना पीठि दुरायौ।
डारि सांटि मुसुकाई तबहिं गहि सुत को कंठ लगायौ॥"

3. **बाल मनोभावों तथा बाल-अन्तःप्रवृत्तियों का वर्णन**–बाल मनोभावों तथा बाल-अन्तःप्रवृतियों का चित्रण करने में सूरदास एक सिद्धहस्त कवि हैं। उन्होंने बालकों के हृदयगत मनोभावों, बुद्धि चातुर्य, स्पर्धा, खीझ आदि के बड़े हृदयग्राही चित्र अंकित किए हैं। एक वर्णन द्रष्टव्य है जिसमें बलराम ने कृष्ण को चिढ़ा दिया कि तू नंद और यशोदा का पुत्र नहीं है और तुम्हें तो मोल खरीदा गया है क्योंकि नंद, यशोदा दोनों गोरे हैं और तू काला है। इस पर कृष्ण के हृदय में खीझ उत्पन्न हो जाती है और वह यशोदा को शिकायत करते हुए कहते हैं–

"मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीनो, तोहि जसुमति कब जायो।
कहा कहौ एहि रिस के मारें, खेलन हौ नहिं जातु।

पुनि-पुनि कहत कौन है माता को है तुम्हरे तातु।
गोरे नन्द जसोदा गोरी, तुम कत स्याम सरीर।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलबीर॥"

4. सूर काव्य का वियोग वात्सल्य वर्णन—सूरदास ने वात्सल्य के संयोग पक्ष के साथ-साथ उसके वियोग पक्ष का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। वियोग वात्सल्य की प्रथम स्थिति तब उत्पन्न होती है जब कृष्ण मथुरा गमन करते हैं। उस समय ऐसा लगता है कि सूरदास स्वयं यशोदा के रूप में अपनी आँखों से आँसू बहा रहे हैं। उनके प्रत्येक शब्द से वात्सल्य का स्रोत उमड़ रहा है। इस अवसर पर माता का रोम-रोम पुकार कर कह उठता है—

"जसोदा बार-बार यों भाखै।
है कोई ब्रज में हितू हमारौ, चलत गोपलहिं राखै।
कहा करै मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायौ।
सुफलक सुत मेरे प्रान हनन कौ काल होइ आयौ।"

परन्तु यशोदा की बात को कोई नहीं सुनता और कृष्ण माँ की पुकार सुनकर भी नहीं रुकते। फलतः यशोदा का वियोगजन्य हृदय वात्सल्य के प्रबल वेग को सहन नहीं कर पाता। वह कटे वृक्ष के समान पछाड़ खाकर भूमि पर गिर पड़ती है—

"यह सुनि गिरी धरनि झुकि माता।
कहा अक्रुर ठगौरी लाई लिए जात दोउ भ्राता।
विरध समय को हरत लकुटिया पाप पुन्य उर नाहीं।
कछू नफा है तुमको यामें, सोचौ धौं मन माहीं।"

कृष्ण के साथ नंद बाबा भी मथुरा जाते हैं। लेकिन वे कृष्ण को मथुरा छोड़कर अकेले वापिस लौट आते हैं। माता यशोदा उन्हें अकेला देखकर क्रोध के मारे व्याकुल हो उठती हैं। उस समय तो यशोदा माता के हृदय से वात्सल्य की असंख्य धाराएँ फूट पड़ती हैं और वह व्यथित होकर अपने पति नंद को फटकारती हुई कहती हैं—

"जसुदा कान्ह-कान्ह कै बूझै।
फूटि न गई तुम्हारी चारों कैसे मारग सूझै।"

परंतु यशोदा को इतने से संतोष नहीं होता। वह आकुल होकर यहाँ तक कह डालती हैं—

"छाड़ि सनेह चले मथुरा, कत दौरि न चीर गह्यौ।
फाटि न गई वज्र की छाती, कत यह सूल सह्यौ।"

वात्सल्यजन्य वियोग की तीसरी स्थिति वह है जब कृष्ण मथुरा जाकर वहीं पर रहने लग जाते हैं। वे लौटकर ब्रज नहीं आते। इस वियोग वात्सल्य की जो सुन्दर झांकी सूरदास ने प्रस्तुत की है, वह अद्वितीय बन पड़ी है। माता यशोदा कृष्ण की अनुपस्थिति में कृष्ण की उन सभी वस्तुओं को नित्य-प्रतिदिन देखती हैं जिनसे कृष्ण खेलते थे। उसे बार-बार पुरानी बातें याद आती हैं। वह प्रतिदिन यह अभिलाषा करती है कि वह दिन कब आएगा जब वह अपने स्याम सलोने को छाती से लगाकर खिलाया करेगी। इस वात्सल्य वियोग के कारण माता यशोदा पागल-सी रहने लगती है। उसे कुछ अच्छा नहीं लगता। उसे अपने लाड़ले के खान-पान, रहन-सहन की चिन्ता लगी रहती है। इसलिए वह देवकी को यह संदेशा भेजती है—

"संदेसो देवकी सौ कहियौ।
हौं तौ धाय तिहारे सुत की, मया करत ही रहियौ।
जदपि टेव तुय जानति है, हौं तऊ मोहि कहि आवै।
प्रात होत मेरे लाल लडैते, माखन रोटी भावै।
तेल उबटनौं अरु तातौं जल, ताहि देखि भजि जाते।
जोई-जोई माँगत सोई-सोई देती, क्रम-क्रम करि कैन्हाते।
सूर पथिक सुनि मोहि रैनि दिन, बढ्यौ रहत उर सोच
मेरी अलक लडैतो मोहन, है है करत संकोच॥"

5. सूरकाव्य में वियोग वात्सल्य की दशाओं का वर्णन–जिस प्रकार वियोग शृंगार के अन्तर्गत विरह की विभिन्न अवस्था मानी जाती हैं, उसी तरह वियोग वात्सल्य की भी विभिन्न दशाएँ मानी गई हैं। सूरदास ने उन सभी अवस्थाओं को अपने का में चित्रित किया है। यथा–

(क) अभिलाषा–कब वह मुख बहुरौ, देखैगी, कब वैसी सचु जैहौ।

(ख) स्मरण–सूल होत नवनीत देखि मेरे मोहन के मुख जोग।

(ग) व्याधि–विहृवल भई यशोदा झेलती, दुखित नंद आनंद।

(घ) प्रलाप–(मोहन) अपनी गैया घेरि लै।
बिडरी जति काहु नहिं मानति, नैकु मुरली की टेरि दै।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास जी ने वात्सल्य वर्णन में एक ओर जहाँ बालक कृष्ण के स्वभाव, उनकी वेशभूषा त क्रीड़ाओं का सुन्दर वर्णन किया है, वहाँ दूसरी ओर माता यशोदा तथा नंद बाबा के भावों का सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक तथा हृदयस्प वर्णन किया है। सूर के वात्सल्य वर्णन की विद्वानों ने अत्यधिक प्रशंसा की है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के अनुसार–**"सूर वात्स का कोना-कोना झांक आए थे। जिस क्षेत्र को सूर ने चुना है, उस पर उनका अधिकार अपरिमित है, उसके वे सम्राट हैं।"**

◆◆◆

(घ) सूरदास का शृंगार-वर्णन

4. सूरदास के शृंगार-वर्णन की विवेचना कीजिए।

अथवा

सूरदास के शृंगार-वर्णन का वैशिष्ट्य बताइए। **(Most Imp**

उत्तर–सूरदास के शृंगार वर्णन की विवेचना निम्नलिखित दो बिंदुओं के अंतर्गत की जा सकती है–

(1) संयोग शृंगार–सूरदास ने शृंगार-रस के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का मार्मिक वर्णन किया है। एक आलोच के शब्दों में, **'सूरदास का प्रेम वर्णन ऐन्द्रिय रूप से लिप्साजन्य अथवा वासनापरक न होकर बाल्यकाल से लेकर यौवनावस्था त के निरन्तर साहचर्य के द्वारा क्रमिक विकास–प्राप्त सहज प्रेम है। अतः यह प्रेम लौकिक होते हुए भी लोकोत्तर है।"**

वस्तुतः सूर का उद्देश्य शृंगार का भौतिक आनन्द दिखाना न होकर मानसिक तन्मयता का चित्रण करना है। आध्यात्मि लक्ष्य रखते हुए भी सूरदास ने परम्परा निर्वाह के लिये तथा अपनी प्रकृति यानी भावुकता के प्रवाह में यत्किंचित बह जाने कारण भौतिक प्रेम का चित्रण किया है और इसमें कहीं-कहीं मर्यादा का उल्लंघन भी हुआ है। परन्तु सामान्यतया सूर ने प्रेम अंकुरित होने से लेकर उसके पल्लवित होने तक की सभी प्राकृत दशाओं का बड़ा ही मार्मिक तथा मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है

राधा और कृष्ण का पारस्परिक आकर्षण साथ-साथ खेलने वाले दो विपरीत-लिंगियों का सहजाकर्षण कहा जा सकता है यह सहज आकर्षण ही धीरे-धीरे प्रेम की तन्मयता में बदल जाता है। देखिए किस तरह अपने बाल-जीवन की क्रीड़ाओं के दौर श्रीकृष्ण को राधा मिलती है। एक दिन की बात है कि कृष्ण यमुना तट पर खेलने जाते हैं–

"खेलन हरि निकसे ब्रजखोरी
कटि काछिनी पीताम्बर ओढ़े हाथ लिए भंवरा चकडोरी,
गयो स्याम रवितनया के तट अंग लसत अदर की चोरी।"

इसी बीच जब वे अपने साथियों के साथ खेल-कूद रहे होते हैं कि उन्हें विशाल नेत्रों वाली तथा अपने गौर-वर्णा शरीर प नील वसन धारण किए हुए राधा दिखाई पड़ जाती है–

"औचक ही देखी तहै राधा नैन विशाल भाल दिये रोरी,
नील वसन फरिया कटि पहने बेनी पीठरुचिर झकसोरी।"

कृष्ण राधा की इस सौन्दर्यमयी आकृति को देखकर सहजाकर्षित होकर उसकी रूप-राशि से अभीभूत हो उठते हैं औ अनायास ही उनके नेत्र राधा के नेत्रों से मिलकर चार हो जाते हैं–

सूर स्याम देखत ही रीझे नैने नैन मिलि परी ठगोरी।

इस सहज आकर्षण का परिणाम होता है कि कृष्ण राधा से वार्तालाप करने का मोह संवरण नहीं कर पाते हैं और उससे एकाएक पूछ बैठते हैं–

"बूझत स्याम कौन तू गोरी
कहां रहति काकी है बेटी, देखी नहीं कबहूँ ब्रज खोरी।

राधा भी यद्यपि कृष्ण को देखकर आकृष्ट हो चुकी हैं, किन्तु कृष्ण के प्रश्न का वह जो उत्तर देती हैं, उसमें रूपगर्व भरा हुआ है तथा एक प्रकार का यह मीठा उपालंभ भी है कि मैं चोर-उचक्कों के गली-मुहल्लों से दूर ही रहती हूँ–

"काहे को हम ब्रज तन आवति खेलत रहित आपनी पौरी।
स्रवननि सुनत रहति नंद ढोटा करत रहत दधि-माखन चोरी।

कृष्ण के प्रश्न के उत्तर में राधा कृष्ण पर ताना मारती है। यह ताना सुनकर थोड़ी देर के लिये कृष्ण सकपका तो जाते हैं, किन्तु उन रसिक शिरोमणि की लच्छेदार बातों से बेचारी राधा कैसे बच सकती थी? इसीलिए कृष्ण कह उठते हैं कि चलो यह मान भी लिया कि मैं दधि-माखन की चोरी करता रहता हूं, तो भी तुम यह तो सोचो कि जब तुम्हारे पास ये वस्तुएं हैं ही नहीं तो मैं तुम्हारा क्या चुरा लूंगा और जब तुम्हें इस तथ्य का कोई भय ही नहीं है तो फिर मेरे साथ मिलकर क्यों नहीं खेलती हो? राधा इस प्रश्न का क्या उत्तर देती? अतः वह भोली बालिका कृष्ण की इन रसमयी बातों के चक्कर में फंसकर उनके साथ खेलने-कूदने लगती है।

तुम्हारो कहा चोरि हम लैहें खेलने चलौ संग मिली जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि बातनु भुरई राधिका भोरी।

इस घटना के बाद तो राधा और कृष्ण का प्रेमाकर्षण दिन-दूना, रात-चौगुना बढ़ता रहता है और कृष्ण कोई न कोई बहाना करके राधा के घर आने-जाने लगते हैं तथा राधा के साथ प्रेम-प्रदर्शन और विवर्धन करने लगते हैं। इसी तरह की गतिविधियों के बीच राधा-कृष्ण का आपसी प्रेम बढ़ता जाता है और–

धेनु बहुत अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुंचावत, एक बार जहं प्यारी ठाढ़ी।

वैसे तो राधा को कृष्ण की यह चंचलता बड़ी मनभावन प्रतीत होती है। लेकिन ऊपरी तौर पर क्रोध का नाटक करती हुई वह कहने लगती है–

"तुम पै कौन दुहावै गैया,
इत चितवत उत धार चलावत, एहि सिखायो है मैया।

राधा के द्वारा लगाया गया यह आरोप दोनों के बीच पनपे प्रेम की अभिव्यक्ति है। इसमें कितना मीठा प्रेम-भाव है कि क्या तुम्हें तुम्हारी मां ने यह भी नहीं सिखाया कि जब गायें दुह रहे हो तो इधर-उधर मत देखा करो। इसी प्रकार राधा और कृष्ण का मिलकर गायों को चराना और जरा-सा झगड़ा होते ही यह धौंस जमाना कि अपनी गाएँ अलग कर लो–

"करि ल्यौं नारी हरि अपनी गैया।"

ये भी प्रेम-भाव से ओत-प्रोत उद्गार ही हैं।

सूरदास ने यह भी चित्रित किया है कि राधा के साथ-साथ ब्रज की कई गोपियां भी कृष्ण को प्रेम करती हैं और उनका प्रगाढ़ प्रेम उनकी मुरली के प्रति भी सौतिया डाह से ओत-प्रोत हो उठता है। मुरली के प्रति गोपियों के निम्नांकित उद्गार इस सौतिया ईर्ष्या भाव के ही प्रतीक हैं–

"मुरली तऊ गोपालहिं भावति
सुन री सखी! जदपि नंद नंदहि नाना भांति नचावति।
आपनु पौढ़ि अधर सैया पर कर–पल्लव पर पलटावति।
सूर प्रसन्न जानि एक छिन धर तैं सीस डुलावति।"

सूरदास ने कृष्ण और गोपियों की रास-लीलाओं का वर्णन संयोग शृंगार के ही अंग के रूप में किया है। सूर के यहाँ कृष्ण मेघ के और गोपियां विद्युत की प्रतीक हैं–

"मानो भई घन घन अंतरि दामिनि
घन दामिनि घन अंतर सोभित हरि ब्रजभामिनी
रच्यौ रास मिली रसिक राह सो मुदित भई ब्रजभामिनी।
रूपनिधान स्याम सुन्दर घन आनन्द मनि विस्त्रामिनि।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूरदास के संयोग-शृंगार की योजना की प्रशंसा करते हुए लिखा है–

"सूर का शृंगार-वर्णन प्रेम संगीतमय जीवन की गहरी चलती धारा है जिसमें अवगाहन करने वाले को दिव्य माधुर्य अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई पड़ता। राधा-कृष्ण के रंग-रहस्य के इतने प्रकार के चित्र सामने आते हैं कि सूर का हृदय प्रेम नाना उमंगों का अक्षय भण्डार प्रतीत होता है।"

भौतिक भोग भी सूरदास के संयोग शृंगार में दिखाई देता है–

"दोऊ राजत रति रनधीर"

की टेक से आरम्भ होने वाला पद तथा उनकी ऐसी उक्तियां–

"नीबी ललित गही यदुराई
जबहिं सरा धर्यों श्रीफल पर औचिक ही यसुमति तहं आई।"

भोग विलास में लिप्त जब वे पकड़े जाते हैं तो मां को देखकर कृष्ण का यह बहाना करने लगना कि देखो माँ, इस गो ने मेरी गेंद छिपा ली है–

"देखो मोहि देति नहिं माता, राख्यो गेंद चुराई।"

इस सूरदास ने संयोग प्रेम के आध्यात्मिक और लौकिक दोनों ही तरह के चित्र प्रस्तुत किए हैं।

(2) सूरदास का वियोग शृंगार–भ्रमरगीत एक उत्कृष्ट वियोगानुभूति का प्रसंग है। इसके अंतर्गत सूर ने जिस प्रकार विप्रलं शृंगार को अभिव्यक्ति दी है, वह हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य निधि है। वियोग की प्रस्तुति का सूर का अपना एक निराला ढं है जिसका कोई सानी नहीं है। सूर की रागात्मकता की अभिव्यक्ति शृंगार के व्यापक धरातल पर हुई है। शृंगार के संयोग पक्ष माधुर्य और आनंद पक्ष का जितनी कुशलता से उन्होंने चित्रण किया है, उससे कहीं अधिक वियोग के मार्मिक व कौशलपूर्ण चित्र में उन्होंने अद्भुत सफलता प्राप्त की है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं–**"भ्रमरगीत में जिस वियोग का वर्णन है, वह सोलह आना वियोग है–अर्था गोपियों में संयोग की भावना का पूर्णतः लोप हो गया है। उनका विरह इतना गहरा है कि देश, काल और पात्र से सर्वथ मुक्त हो गया है।"**

कृष्ण का बचपन नंद-यशोदा, गोप-गोपियों के साथ उनके साहचर्य में ब्रज में व्यतीत हुआ। गोकुल के कण-कण में कृष्ण समरस होकर रहे और जब कृष्ण मथुरा चले गये तो पूरा ब्रजमण्डल वियोग के सागर में डूब गया। उन्हें जाते देखकर ही ब्रज हाहाकार मच गया, ब्रजबालाएं स्तब्ध रह गई, उन पर जड़ता छा गई–

"चलत जाति चितवति ब्रज जुवती, मानहु लिखो चितेरे।
जहाँ तु तहाँ एक टक रह गई, फिरति न लोचन फेरे॥"

गोपाल के चलते ही धैर्य, आंसू, मन आदि सब एक-एक करके चलने का उपक्रम करने लगे, रह गये तो केवल प्राण–

"चलत गुपल के सब चले।
यह प्रीतम सौं प्रीति निरंतर, रहें न अर्ध पले।
धीरज पहिल करी चलिबैं की, जैसी करत भले।
धीर चलत मेरे नैननि देखै, तिहिं छिनि आँसू हले।
आँसू चलत मेरी बलयनि देखे, भए अंग सिथिले।
मन चलि रह्यौ हतौ पहिलैं ही, चले सबै बिमले।
एक न चलै प्रान सूरज प्रभु, असलेहु सा सले॥"

सूर ने अपने वियोग वर्णन में गोपियों की मनोदशा में अक्षय प्रेम को एक व्यापक धरातल पर चित्रित किया है। वस्तुतः वियोग में प्रेम भाव और अधिक तीव्रता और उत्कृष्टता को प्राप्त होता है। सूर ने विरह से जुड़े भावों का अंकन बड़ी गहराई से किया है। इसलिए सूर का वियोग वर्णन केवल शरीर की भग्न दशाओं के चित्रण तक ही सीमित नहीं है वरन् उसमें प्रेम की सूक्ष्म व्यंजना की अनन्त संभावनायें भी दिखाई देती हैं। ब्रज और वृंदावन के अत्यंत सुरम्य प्राकृतिक परिवेश में गोपियों और कृष्ण के बीच बचपन से ही जिस प्रेम का उदय हुआ, वह कैसे मिट सकता है–

"लरिकाई को प्रेम कहो, अलि कैसे छूटे।"

वियोग वर्णन में सूरदास के हृदय की स्वाभाविक मनोदशा व्यक्त हुई है। सूरदास के वियोग वर्णन की अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता वियोग में मानवेत्तर जगत के साथ संबंध स्थापित करने के लिए की गयी उनकी कोशिश है। इसमें वर्णित है–वृंदावन का प्राकृतिक सौंदर्य, यमुना के सुंदर किनारे, लताओं और वृक्षों की हरियाली, ब्रज के जीवन की गतिविधियाँ, जो पहले सभी को बहुत अच्छी लगती थीं किन्तु अब काटने को दौड़ती हैं। इसलिये गोपियाँ मधुबन को व्यंग्य भरे शब्दों में कहती हैं–

"मधुबन तुम कत रहत हरे।
बिरह-वियोग स्याम सुंदर के ठाढ़े क्यौं न जरे।
तुम हो निलज, लाज नहिं तुमको फिर सिर पुहुप धरे।
ससा स्यार औ बन के पखेरू धिक् धिक् सबन करे॥"

सूरदास अपने परिवेश और जीवन की परिस्थितियों के बीच से प्रेम को विकसित करते हैं। यही कारण है कि गोपियाँ जिस ओर भी अपनी दृष्टि डालती हैं, कृष्ण की स्मृतियाँ उन्हें घेर लेती हैं, क्योंकि चारों ओर के वातावरण में कृष्ण के प्रति उनका प्रेम उपजा था। पूरा परिवेश उनके इस प्रेम का साक्षी रहा है, इसलिए यही परिवेश अब उनके वियोग को और तीखा बनाता है। एक ओर शरीर में विरह का ताप है और दूसरी ओर आँखों में निरंतर आँसुओं का प्रवाह है–

"निसि दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस ऋतु इन पै जबते स्याम सिधारे।
बिनु ही रितु बरसत निसि बासर सदा सजल दोउ तारे।
सुमिरि गरबज आस छाँड़त अश्रु सलिल के धारे॥"

कृष्ण के मथुरा जाने का प्रभाव मनुष्येत्तर प्राणियों पर भी दिखाया गया है। वे जिन गायों को चराते थे, उनके वियोग में वे गायें भी अत्यंत दुर्बल और उदास हो गई थीं–

"उधो। इतनी कहियो जाय।
अति कृस गात भई है तुम बिनु दुखारी गाय॥
जल समूह बरसत अँखियन तें, हूँकति लीन्हें नाँव।
जहाँ-जहाँ गोदोहन कीन्हें ढूँढ़ति सोइ सोई ठाँव॥"

वियोग वर्णन के चारों अंगों–पूर्वराग, मान, प्रवास और करुणा को हम सूर के वियोग वर्णन में देख सकते हैं। इसके अलावा विरह की दसों दशाओं–अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता एवं मूर्छा का भी सूर के विरह वर्णन में विस्तार से उल्लेख मिलता है–

मूर्छा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

"सोचति अति पछताति राधिका, मुर्च्छित धरनि ढही।
सूरदास प्रभु कै बिछुरे तें बिथा न जाति कही॥"

इस विवेचन से स्पष्ट है कि सूर का वियोग वर्णन बेजोड़ एवं अप्रतिम है। पूरे भक्ति काल में अन्यत्र कोई कवि उनके आसपास भी नहीं ठहरता है।

◆◆◆

(ङ) सूरदास : विरह-भावना

5. "सूरदास का विरह वर्णन बड़ा हृदयस्पर्शी तथा मार्मिक है।" इस कथन की सोदाहरण विवेचना कीजिए।

अथवा

'सूरसागर' के आधार पर गोपियों की विरह-भावना का वर्णन कीजिए।

उत्तर–सूरदास वात्सल्य और श्रृंगार के वर्णन में अद्वितीय हैं। वात्सल्य वर्णन में तो ये सर्वश्रेष्ठ हैं ही, श्रृंगार में भी इनकी कोई समानता नहीं कर सकता। श्रृंगार के संयोग और वियोग– दोनों ही पक्षों का चित्रण सूर ने किया है। उन्होंने बाल-जीवन की ही भांति विरही जीवन के भी चित्र बड़ी मार्मिकता के साथ अंकित किए हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार, **''इन दोनों प्रकार के चित्रों में विरह-जीवन के चित्र भावनाओं की गहरी अनुभूति लिए हुए हैं।''**

सूर-काव्य में श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने से वियोग वर्णन आरम्भ हो जाता है। कहते हैं कि प्रेम का वास्तवि परिचय वियोगावस्था में ही होता है जबकि संयोग में प्रेम का असली रूप छिपाने के अनेक अवसर रहते हैं। कृष्ण विद्यमानता में राधा और गोपियाँ इनसे प्रेम करती हैं, यह सामान्य बात है, परन्तु इनके प्रेम की तीव्रता तभी व्यक्त पाती है, जब कृष्ण मथुरा चले जाते हैं। 'सूर सागर' में गोपियों के इस वियोग की वेदना का भी रूप व्यक्त किया ग है। उसमें गोपियों की अन्तश्चेतना कितनी उद्वेलित होती है, यह देखते ही बनता है। श्रीकृष्ण को अक्रूर के साथ मथ जाते देखकर गोपियाँ ठगी-सी खड़ी रह गई। वे चित्र-लिखित सी रह कर कृष्ण को देखती रहती हैं और उनकी आँखों आंसुओं की अविरल धारा बहने लगती है--

रही जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ी।
हरि के चलत देखियत ऐसी, मनहु चित्र लिखि काढ़ी।
सूखे बदन, स्रवति नैननि तैं, जलधारा उर बाढ़ी।
कँधनि बाँह धरे चितवतिं मनु, द्रुमनि बेलि दव दाढ़ी॥
नीरस करि छाँड़ि सुफलकसुत, जैसें दूध बिनु साढ़ी।
'सूरदास' अक्रूर कृपा तै, सहीं बिपति तन गाढ़ी॥''

गोपियाँ तो श्रीकृष्ण को जाते देखकर स्तब्ध रह गई। लेकिन माँ यशोदा तो करुण विलाप ही करने लगी। श्रीकृष्ण व मथुरा जाने से रोकने के लिए पुकारती रही--

जसौदा बार-बार यौं भाषै।
हे कोउ ब्रज मैं हितू हमारौ, चलत गुपालहिं राखै।

लेकिन श्रीकृष्ण चले ही जाते हैं और पीछे छोड़ जाते हैं वियोग, सूनापन और स्मृतियाँ। कृष्ण के वियोग में ब्रज की सा शोभा ही लुट गई। जड़, चेतन, सभी उनके विरह में विह्वल हैं। कृष्ण के बिना गोपियाँ घर लौट आती हैं; लेकिन इन्हें अपना घ वीरान लगता है, अनेक प्रकार के सुख भी सपने जैसे प्रतीत होते हैं। रात को इन्हें नींद नहीं आती और रात-भर ये तारे गिनत रहती हैं--

आजु रैनि नहीं नींद परी।
जागत गनत गगन के तारे रसना रटत गोविन्द हरी॥

इतना ही नहीं, विरहिणी गोपियों को काली रात भी नागिन के समान प्रतीत होती है--

पिया बिनु नागिनि कारी रात।
जौ कहुं जामिनी उबति जुन्हैया, इसि उलटी ह्वै जात।

गोपियों को आशा थी कि उनके प्रियतम कुछ दिन मथुरा में रहने के बाद नंद बाबा के साथ लौट आएंगे, लेकिन जब नंद अकेले लौटे तो उनकी पीड़ा का रुका बांध बह निकला। वे अति व्याकुल होकर पुकार उठती हैं--

प्रीति करि दीन्हीं गरै छुरी।
जैसे बधिक चुगाई कपट-कन, पाछैं करत बुरी।
× × × ×
तरफत छाँडि गए मधुबन कौं, बहुरि न कीन्ही सार।
सूरदास प्रभु संग कल्पतरू उलटि न बैठी डार॥

कृष्ण के बिना ब्रज के कुंज दुश्मन दिखाई पड़ते है। जब कृष्ण ब्रज में थे तो गोपियाँ श्रीकृष्ण से इन कुंजों में मिलती थीं, परन्तु वियोगावस्था में ये आग की ढेरी के समान प्रतीत होते हैं। अब यमुना का पानी आनन्ददायक नहीं लगता, पक्षियों का चहचहाना व्यर्थ दिखाई पड़ता है। पवन, कपूर, जल, चन्द्रमा आदि शीतलता प्रदान करने वाले उपादान सूर्य की दाहक किरणों में बदल गए हैं--

बिनु गोपाल बैरिनि भइ कुंजै
तब ये लता लगति अति शीतल अब भई विषम ज्वाल की पुंजै।
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलनि अलि गुंजै।
पवन, पान, घनसार, संजीवन, दधिसुत किरनि भानु भई भुंजै॥

गरज़त-घुमड़ते मेघ तथा कूकती कोयल के स्वर से विरह विदग्ध गोपियों की पीड़ा और भी बढ़ जाती है। कभी-कभी स्वप्न में प्रिय-मिलन होता भी है तो क्षण भर के लिए, और इतने में ही गापियों की निद्रा उड़ जाती है। वियोग में जलने वाले व्यक्ति को प्रकृति के सभी रूपों में अपना ही रूप दिखाई देता है। जब गोपियाँ यमुना को देखती हैं तो ऐसा लगता है कि यमुना भी श्याम के विरह में काली पड़ गई है। वह विरह के ज्वर में जल रही है और पर्वत से भूमि तक बहने वाली जलधारा ऐसी प्रतीत होती है मानो विरह पीड़ित गोपिका पलंग से गिरकर लोट-पोट हो रही हो–

देखियत कालिन्दी अति कारी

अहो पथिक कहियो उन हरि सों भई विरह जुर कारी।

गिरि पर्यंक ते गिरति धरनि धँसि तरंग तलफ तन भारी।

तटबारू उपचार चूर, जलपूर प्रस्वेद पनारी।

सूर के इस प्रकार के वर्णन को देखकर छायावादी काव्य की मानवीकरण की प्रवृत्ति सजल हो उठती है। यमुना नदी में वियोगिनी के दुःख को कवि ने इस प्रकार अनुस्यूत कर दिया है कि सांगरूपक देखते ही बनता है। इस विरह भाव में भ्रम, सन्निपात आदि की व्यंजना स्पष्ट दिखाई पड़ती है। गोपियां वर्षा ऋतु में आकाश से गिरते जल बिन्दुओं को अपने आंसुओं से उपमित करके सौन्दर्य चित्रण में आकर्षण उत्पन्न कर रही हैं–

निसि दिन बरसत नैन हमारे।

सदा रहत वर्षा ऋतु हम पर जब तै स्याम पधारे।

दृग अंजन न रहत निसि बासर कर कपोल भर कारे।

कंचुकि पट सूखत नहिं कबहूं उर बीच बहत पनारे।

कृष्ण के विरह में राधा की रूप-छवि भी मलिन पड़ गई है, बाल बिखरे हुए रहते हैं, मुख मुरझाया हुआ है। उसकी विरहावस्था का यह चित्र भी अवलोकनीय है–

अति मलिन बृषभानुकुमारी।

हरि-स्रम जल भीज्यौ उर-अंचल, तिहिं लालच न धुवावति सारी।

अध-मुख रहति, अनंत नहिं चितवति, ज्यौं गथ हारे थकित जुवारी।

छूटे चिकुर, बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी।

उद्धव आकर जब उन्हें योग और निर्गुण ज्ञानोपदेश देते हैं तो उनकी विरह-ज्वाला और भी प्रज्वलित हो उठती है। सच भी है कि विरहाग्नि उपदेश के घी से नहीं बुझती। गोपियाँ तो हरि-दर्शन की अभिलाषी हैं। उनके दर्शनों से ही उनकी विरह-व्यथा शान्त हो सकती है। यह उपदेश उनको व्यर्थ प्रतीत होता है–

"अंखियाँ हरि दरसन की भूखी।

कैसे रहें रूप रस राँची ये बतिया सुनी रूखी।

अवधि गनत इक टक मग जोवत तब एती नहीं झूखी।

अब इत जोग-संदेशन ऊधौ अति अकुलानी दूखी।

बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी।"

सूरदास ने गोपियों के विरह-वर्णन में वियोग की ग्यारह दशाओं–अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्छा और मरण–सभी का सुन्दर अंकन किया है। **डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना** के अनुसार–**"सूर का विरह-वर्णन जायसी की भाँति भले ही अधिक गहन एवं गम्भीर न हो, फिर भी इसमें अनुभूति की तीव्रता एवं भावों की विशदता के दर्शन होते हैं।"** वस्तुतः सूर का वियोग-वर्णन जन-मन को अभिभूत करने की अपरिमित शक्ति रखता है।

◆◆◆

(च) 'भ्रमरगीत' काव्य एवं सूरदास

6. 'भ्रमरगीत' काव्य क्या है? सूरदास के 'भ्रमरगीत' काव्य की विशेषताएँ बताइए।

अथवा

सूरदास के 'भ्रमरगीत' का काव्य-वैशिष्ट्य स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–'भ्रगरगीत' काव्य एवं सूरदास–भ्रमरगीत का शाब्दिक अर्थ है–**भ्रमर का गान अथवा गुंजन**। 'भ्रमरगीत' काव्य परम्परा का मूल एवं आधारभूत ग्रंथ श्रीमद्भागवत है। भागवत में कृष्ण कथा के अन्य प्रसंगों के साथ सैंतालीसवें अध्याय में भ्रमरगीत का प्रसंग आया है। इसमें भ्रमरगीत का प्रारम्भ श्रीकृष्ण की गोकुल लीला के स्मरण से होता है। उन्हें अपने बचपन के ग्वाल-बाल सखाओं की याद आती है, साथ ही गोपिकाओं की भी। वे गोपियों को सांत्वना देने के लिये अपने मित्र उद्धव को ब्रज भेजते हैं। ब्रज पहुँचते ही उद्धव नंद-यशोदा से मिलते हैं और अपने उद्गारों से कृष्ण के ब्रह्म स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं। श्रीकृष्ण के इसी स्वरूप की प्राप्ति के लिये वे ज्ञान का उपदेश नंद-यशोदा को देते हैं। बाद में गोपियां उन्हें एकांत में ले जाती हैं। इसी वक्त एक भ्रमर उड़ता हुआ वहाँ आ जाता है। गोपियाँ भ्रमर के बहाने श्रीकृष्ण के प्रति उलाहने, उपालम्भ देने आरम्भ कर देती हैं। इस प्रकार भ्रमर को लक्ष्य करके गोपियों का उपालम्भ करना ही भ्रमरगीत के नाम से पुकारा जाता है। गोपियों ने भ्रमर को लक्ष्य करके उद्धव और श्रीकृष्ण दोनों को उलहाने दिये, व्यंग्य किये और अनेक तरह से फटकार लगाई। इस बात को आधार बनाते हुए कहा जा सकता है कि भ्रमंरगीत का तात्पर्य भ्रमर को इंगित करके गाया जाने वाला एक गीत भी है।

सूर का भ्रमरगीत–सूरदास ने श्रीकृष्ण की अन्यान्य लीलाओं की भांति भ्रमरगीत का प्रसंग भी श्रीमद्भागवत से ही लिया है। हिन्दी में सर्वप्रथम सूर ने ही भ्रमरगीत की रचना की और इन्हीं के कारण भ्रमरगीत की लोकप्रियता भी बहुत अधिक हुई।

सूरदास के आधार पर कहा जा सकता है कि भ्रमरगीत को लिखने के पीछे का मुख्य उद्देश्य निर्गुण पर सगुण की विजय एवं ज्ञान पर भक्ति की विजय को प्रमाणित करना था। चूंकि सूरदास के समय में ज्ञान और भक्ति में श्रेष्ठता को लेकर विवाद था, शायद यही कारण है कि उन्होंने इसमें निर्गुण भक्ति का तर्क और भाव से खण्डन करते हुए सगुण भक्ति का महिमा मंडन किया है। ज्ञान के समक्ष उन्होंने भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। सूर का भ्रमर गीत वाग्वैदग्धता, वचनवक्रता और उपालम्भ का काव्य है।

सूरदास के भ्रमरगीत की विशेषताएं–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भ्रमरगीत को सूरसागर का सार कहा है–**"भ्रमरगीत सूरसागर के भीतर का एक सार रत्न है।"**

काव्य को दो तरह से समीक्षित किया जा सकता है–काव्य का अनुभूति पक्ष और उसका अभिव्यक्ति पक्ष। प्रथम का सम्बन्ध वर्णित विषय से है यानी क्या कहा गया है, इसका उत्तर देना अनुभूति पक्ष है। दूसरे का संबंध 'कैसे कहा गया' से है अर्थात् इस अनुभूति की अभिव्यक्ति कितनी कलात्मक तरीके से की गई है, इसका विवेचन करना अभिव्यक्ति पक्ष है। समीक्षा के बिन्दु निम्नलिखित हैं–वर्ण्य विषय, मर्मस्पर्शी स्थल, कल्पना सौन्दर्य, प्राकृतिक सुषमा, रसाभिव्यक्ति, भाषा और काव्यरूप, अलंकार योजना, बिम्बयोजना, लक्षणा शक्ति।

(1) सूर के भ्रमरगीत की विषय-वस्तु–ब्रजभूमि में विहार करते व अपनी लीला दिखाते श्रीकृष्ण कंस के निमंत्रण पर अक्रूर जी के साथ मथुरा चले जाते हैं। वहाँ से वापस आने की कोई संभावना न पाकर गोपियाँ उनके लिए अपना संदेश भेजती हैं। पथिक संदेशों के डर से मथुरा जाने वाले रास्ते पर जाने से भी घबराने लगते हैं, क्योंकि संदेशों की संख्या बेहिसाब बढ़ चली थी। इस पद में संदेश भेजने की विवशता और विसंगति को देखा जा सकता है–

"संदेसनि मधुबन कूप भरे।
अपने तौ पठवत नहिं मोहन, हमरे फिरि न फिरे।
जिते पथिक पठाए मधुबन कौ बहुरि न सोध करे।
कै वै स्याम सिखाइ प्रमोधै, कै कहुं बीच मरे।
कागद गरे मेघ, मसि खूटी, सर दव लागि जरे।
सेवक सूर लिखन की आंधभ, पकल कपाट अरे।"

कृष्ण चाहकर भी गोपियों के प्रति अपने अनुराग को विस्मृत नहीं कर सकते थे। इसी चिन्ता में उद्धव नामक एक ब्रह्म ज्ञानी महापुरुष को कृष्ण ने गोपियों के प्रति अपने मन की व्यथा बताई, तो उन्होंने कृष्ण से कहा कि यदि आप कहें तो मैं ब्रज जाकर उन सबको समझा दूं कि वे आपके लिये दुःखी न हों, निर्गुण निराकार ब्रह्म का ध्यान करना आरंभ करें। कृष्ण उनको इसकी अनुमति दे देते हैं और इस संदर्भ में सूरदास ने इस सम्पूर्ण प्रसंग को एक अत्यंत अनूठे काव्य का रूप दिया है, जिसमें आदि से लेकर अंत तक व्यथा-कथा कही गई है। इस कथा के दो भाग हैं–एक तो उद्धव के संदेश देने जाने से पहले की वियोग कथा, जिसमें विरह दशा के प्रायः सभी वर्णन हैं और दूसरा, उद्धव तथा गोपियों का आपसी वार्तालाप, जिसमें प्रेम की अनन्यता पर तन्मयता सर्वत्र ध्वनित हुई है और इसी में निर्गुण का खण्डन व सगुण का मंडन उभरा है।

"काहे को रोकत मारग सूधौ?
सुनहु मधुप निर्गुण कटक तें राजपंथ क्यों रूधौ?
कै तुम सिखै पठाए कुब्जा, कै कही स्यामधन जू धौ॥"

(2) वाग्वैदग्धता–वाग्वैदग्धता का अर्थ है–वाणी की चार्तुय अर्थात् एक बात जो सीधे ढंग से कहने पर उतनी प्रभावी नहीं दिखती है वही बात यदि किसी वाक्चातुर्य के माध्यम से अलग ढंग से व्यक्त की जाये तो बहुत अधिक प्रभावशाली हो जाती है। सूर ने अनपढ़ गोपियों के माध्यम से वाणी की जिस प्रदग्धता का प्रयोग किया है वह अच्छे-अच्छे पढ़े लिखे लोगों को भी पानी पिलाने वाली है। वे कहती कुछ हैं और उसका अर्थ कुछ और ही होता है। यहां कुछ और अर्थ (बातों का) पाठक तक भी संप्रेषित होता है और वह वाह! वाह! कर उठता है।

यहाँ देखिए, गोपियां श्रीकृष्ण के पिछले सभी कार्यों (लीलाओं) का वर्णन करना चाहती हैं, क्योंकि उन्हें यह सबकुछ स्मरण करने में बड़ा अच्छा लगता है, परन्तु सूरदास ने उनकी स्मृति को दूसरे ही रूप में व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि कृष्ण ब्रज में इसलिए नहीं आ रहे कि वहाँ पर मुझसे गोपियाँ बहुत सारे काम करायेंगी। दरअसल वे कह कुछ रही हैं परन्तु उनका मन्तव्य कुछ और है। यह सूर की वाग्वैदग्धता के कारण ही संभव हो सका है। उदाहरण देखिए–

यदि डर बहुनि गोकुल आए।
सुनी री सखी! हमारी करनी समुझि मधुपुरी छाए।
अधरातिक तै उठि बाल बस मोहि जगैहैं आये।
बिनु पद त्रान बहुरि पठवैंगी बनहि चरावन गाय॥
सूनो भवन आनि रोकेंगी चोरत दधि नवनीत।
पकरि जसोदा पै ले जैहैं, नाचत गावत गीत॥
ग्वालिनी मोहि बहुरि बाँधेगी केते वचन लगाय।
ऐते दुःखन सुमरि सूर मन, बहुरि सकै को जाये॥

इसी प्रकार जब गोपियां अपने विरह की अभिव्यक्ति करती हैं तो सीधे यह न कहकर कि हमारा वियोग बढ़ रहा है या हमें कामदेव सता रहा है, वे इस तरह की बातें करती हैं मानो कुछ और ही वर्णन कर रही हैं। ऐसा कहना है कि यह ब्रजभूमि इन्द्र पर से कामदेव ने जागीर के रूप में ले ली है। इस बहाने से भी वर्णन हुआ है। वह कवि की वचन-चातुरी को समझने में पर्याप्त सहायक है–

कोई सखि नई चाह सुनि आई।
यह ब्रजभूमि सकल सुरपति पै मदन मिलिक कर पाई।
धन धावन बग पांति पटो सिर बैरख तड़ित सुहाई।
बोलिक पिक चातक ऊँचे सुर, मनो मिलि देत दुहाई।

(3) निर्गुण पर सगुण की विजय–सूरदास ने अपने भ्रमरगीत में निर्गुण ब्रह्म के स्थान पर सगुण की प्रतिष्ठा स्थापित करने का प्रयास किया है। गोपियों और उद्धव के बीच का सारा संवाद प्रेम की प्रतिष्ठा के बहाने सगुण की प्रतिष्ठा का प्रयत्न करता ही रहा है। उद्धव निर्गुण ब्रह्म की उपासना की बात कहना चाहते हैं, परन्तु गोपियां उनकी बात को अपने तर्कों के सामने ठहरने नहीं देती हैं। जिस समय उद्धव मथुरा लौटकर वापस जाते हैं और श्रीकृष्ण को ब्रज के समाचार देते हैं उस समय के उनके वचनों द्वारा स्पष्ट रूप से निर्गुण ब्रह्म के सामने सगुण की प्रतिष्ठा का आख्यान होता है। उद्धव कृष्ण से कहते हैं–

कहिबै मैं न कछू सक राखी।
बुधि विवेक अनुमान आपने मुख आई सो भाखी॥
हौं पचि कहतो एक पहर में, वै छन माहिं अनेक।
हारि मानि उठि चल्यो दीन हैं छाँड़ि आपनो टेक॥

उद्धव के कथन में सर्वत्र ही अपने तर्कों की पराजय की स्वीकृति है। इस तरह सूरदास ने अनेक स्थानों पर निर्गुण पर सगुण की विजय का वर्णन किया है। एक और उदाहरण देखा जा सकता है–

मैं समुझाई अति अपनी सो।
तदपि उन्हें परतीति न उपजी सबै लखो सपनी सो।
कही तिहारी सबै कही मैं और कछू अपनी।
श्रवन न बचन सुनत हैं उनके जो पट मह अकनी॥
कोई कहै बात बनाई पचासक उनकी बात जु एक।
धन्य-धन्य सो नारी ब्रज की दिन दरसन इति टेक॥

(4) प्रेममार्ग की उत्कृष्टता–सूरदास ने अपने भ्रमरगीत में ईश्वर की साधना के लिए प्रेममार्ग की महत्ता प्रदर्शित की है। वे गोपियों के माध्यम से यह कहना चाहते हैं कि उन्हें तो एकमात्र कृष्ण के साथ बिताये हुए सुख के क्षणों की ही चाह है। उन्हें ऐसा ब्रह्म नहीं चाहिये जो उनके साथ रस-क्रीड़ा न कर सके। वे उद्धव से कहती हैं–

रहु रे, मधुकर, मधु मत वारे।
कहा करौ, निर्गुन लै कै हौं जीवहु कान्ह हमारे॥

सूरदास ने गोपियों के माध्यम से प्रेम की उत्कृष्टता की अभिव्यक्ति की है। वे प्राकृतिक परिवेश में रचे-बसे कई प्रसंगों का उदाहरण देकर अपनी बात को सिद्ध करती हैं, जैसे–पतंग, चातक, चकोर, मृग आदि का प्रेम प्रसिद्ध है, उसी तरह वे कृष्ण के प्रति अपना प्रेम भी मानती हैं। अब चाहे वे मरें या जीवित रहें। जो व्यक्ति प्रेममार्ग में अग्रसर होता है वह जीने-मरने की चिंता नहीं करता है। अनेक उदाहरणों द्वारा ऐसा कथन करते हुए गोपियां उद्धव से कहती हैं–

ऊधो-प्रीति न मरन विचारे।
प्रीति पतंग जरै पावक परि जरत अंग नहिं टारै।
प्रीति परेवा उड़त गगन चहि गिरत न आप प्रहारै॥
प्रीति जानू जैसे पय पानी जारि उपनपो जारै॥
प्रीति कुरंग नाद रस लुब्धक तानि तानि सर मारै।
प्रीति जान जननी सुत कारन को न अपनपो हारै।
सूर श्याम सों प्रीति गोपिन की कहु कैसे निरुवारै।

सूर के काव्य में प्रेम की उत्कृष्टता को प्रतिष्ठित करने वाले बहुत से पद आये हैं। उन्होंने गोपियों के माध्यम से हर बार इसी बात पर बल दिया है कि प्रेम के मार्ग में ही बलिदान, दुःख, त्याग और सहिष्णुता का भाव मौजूद रहता है। प्रेम तो मन की बात है; तभी तो–'दाख छुहारा छाड़ि अमृत फल विषकीरा विष खात' वाली बात भी ठीक लगती है। इस तरह के कथन गोपियों के वचनों में बार-बार देखने को मिलते हैं। सूरदास ने अनेक पदों द्वारा प्रेममार्ग की उत्कृष्टता का प्रतिपादन किया है। यहां पर एक उदाहरण और पठनीय है–

ऊधो मन माने की बात।
जरत पतंग दीप में जैसे और फिरि फिरि लपटात॥
रहत चकोर पुहुमि पर मधुकर! ससि अकाश भरमात।
ऐसो जतन धरो हरि जू पै छन इत उत नहिं जात॥
दादुर रहत सदा जल भीतर कमलसिंह नहिं नियरात।
काठ फोरि घर कियो मधुप पैं बंधे अम्बुज के पात॥

वरषा बरसत निसदिन ऊधो, पुहुमि पूरि अघात।
स्वाति बूंद के काज पपीहा छन-छन रटत रहात॥
सेनि न खात अमृत फल भोजन तोमरि को ललचात।
सूर कृष्न कूबरी रीझे गोपिन देख लजात।

(5) **व्यंग्यात्मकता**–सूरदास के भ्रमरगीत में व्यंग्यशैली की प्रचुरता है। वे जहां दूसरे भावों की व्यंजना करते हैं वहाँ उनके द्वारा कुब्जा के प्रति किये गये व्यंग्य विशेष रूप में द्रष्टव्य हैं। गोपियां कृष्ण के न आने से व्यथित हैं। उन्हें कुब्जा का एक ऐसा उदाहरण मिल जाता है कि वे उसी पर घटाकर अनेक बातें कहती हैं। सूरदास ने गोपियों के असूया भाव को व्यक्त करने का यह अच्छा अवसर निकाल लिया है। वे कुब्जा को दासी, कुबड़ी आदि कहकर नाना प्रकार से श्रीकृष्ण की प्रेम-भावना पर व्यंग्य करती हैं। व्यंग्य के सम्बन्ध में सूरदास के भ्रमरगीत में व्यंग वचनों के द्वारा विभिन्न भावों की व्यंजना को प्रमुखता दी गयी है।

व्यंग्य और उलाहने बात को नए ढंग से कहने के लिए सूरदास के प्रमुख साधन हैं। गोपियां भ्रमर को देखकर श्रीकृष्ण को उसी के माध्यम से उलाहने देने लगती हैं। भ्रमर के माध्यम से, कहीं कुब्जा को केन्द्र बनाकर, कहीं राजा बनने पर और कहीं अपने वंश का अधिक ध्यान रखने पर, इसी तरह की बातों पर गोपियों द्वारा उलाहने दिलाए गए हैं।

◆◆◆

(छ) सूरदास : अभिव्यक्ति पक्ष/भाषा कौशल

7. सूरदास के काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष की विशेषताएँ बताइए। (Imp.)

अथवा

सूरदास के भाषा-कौशल का परिचय दीजिए।

उत्तर–सूरदास के काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष की विशेषताएँ–हम जानते हैं कि किसी कवि के काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष का संबंध कथ्य को उचित भाषा एवं शैली में कहने के ढंग से होता है। अभिव्यक्ति पक्ष की मजबूती के अभाव में भाव पक्ष प्रायः मर्माहत हो जाता है। सूरदास के काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष भी उतना ही उत्कृष्ट है, जितना उनका भाव पक्ष।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविवर सूरदास के अभिव्यक्त पक्ष पर टिप्पणी करते हुए लिखा है–**"सूरदास जी में जितनी सहृदयता और भावुकता है, प्रायः उतनी ही चतुरता और वाग्वैदग्धता भी है।"** सूर का काव्य ब्रजभाषा का शृंगार है। उसमें विभिन्न राग-रागनियों के अन्तर्गत एक भक्त-हृदय कवि के भावपूर्ण उद्‌गार व्यक्त हुए हैं। उनके काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष पर निम्नलिखित शीर्षकान्तर्गत विचार किया जा सकता है–

1. भाषा–भाषा ही रचना की अभिव्यक्ति होती है। प्रसंग, स्वभाव, विचार, भावना आदि सभी कुछ भाषा में द्योतित होते हैं। सूर का विपुल साहित्य ब्रजभाषा में रचित है और ब्रजभाषा के उन्नायकों में सूर का प्रमुख स्थान है। इसे काव्यात्मक, कलात्मक, सरस, मधुर तथा सम्पन्न बनाने में सूर का महत्त्व अद्वितीय है। 'सूरसागर' में पहले-पहल सूर की प्रौढ़ भाषा को देखकर यह लगता था कि ब्रजभाषा सूरदास के पहले से ही प्रचलन में रही होगी। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के शब्दों में– **"इन पदों के सम्बन्ध में सबसे पहली बात ध्यान देने योग्य है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यिक रचना होने पर भी ये (सूर) इतने सुडौल और परिमार्जित हैं। यह रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यांगपूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की उक्तियाँ सूर की जूठन-सी जान पड़ती हैं।"**

महाकवि सूर द्वारा 'सूरसागर' में जनभाषा को साहित्यिक रूप देने के कारण सूर की शब्दावली में लोक प्रचलित विदेशी शब्दों के साथ ही देशी मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ भी गृहीत हुए हैं।

2. अलंकार योजना–सूर ने प्रायः अलंकृत भाषा का प्रयोग किया है। लेकिन उनकी अलंकार योजना सायास नहीं है। सूर ने अलंकारों के प्रयोग से अपने भावों को उत्कर्ष प्रदान किया और काव्य सौन्दर्य में वृद्धि की है। इनकी अलंकार योजना के सम्बन्ध में **आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी** का उक्त कथन दर्शनीय है–**"सूरदास जब अपने विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकार शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है, उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है। उनके अलंकार भावों को चमचमा देते हैं।"**

सूर की अलंकार योजना की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे अपनी किसी बात को स्पष्ट करने के लिए अ उपमाएँ दे डालते हैं। जैसे श्रीकृष्ण के अधरों की लाली का वर्णन करते हुए सूर ने अपनी रचना-निपुणता के साथ-साथ अलं की विविधता एवं गहनता को भी व्यक्त किया है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

देखि सखि अधरन की लाली।
मनि मरकत तै सुभग कलेवर, ऐसे हैं बनमाली॥
मनौं प्रात की घटा साँवरी, तापर अरुन प्रकास।
ज्यों दामिनि बिच चमकि रहत है, फहरत पीत सुबास॥

सूरदास ने शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का प्रयोग अधिक किया है। शब्दालंकारों में सूर ने यमक, श्लेष, अनुप्र वीप्सा आदि का विशेष प्रयोग किया है। यमक अलंकार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

सारंग सारंग धरहिं मिलावहु।
सारंग विनय करत सारंग सौ, सारंग दुख बिसरावहु।

अर्थालंकारों में सूर ने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक का विशेष रूप से प्रयोग किया है। उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकारों का तो उ सम्राट ही कहा जाता है।

सूर द्वारा प्रयुक्त अलंकारों के निम्न उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

अनुप्रास– **"मुख-छबि कहा कहौं बनाइ।**
निरखि निसिपति बदन-सोभा, गयौ गगन दुराइ॥
अमृत अलि मनु पिवन आये, आइ रहे लुभाइ।
निकसि सर तै मीन मानौं. लरत कीर छुड़ाइ॥

उपमा– **हमारे हरि हारिल की लकरी।**

रूपक– **अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।**
काम क्रोध का पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा सब रसाल।

अलंकारों के उपर्युक्त उदाहरणों को देखकर कहा जा सकता है कि सूर का अलंकरण विधान भावानुकूल व प्रभावोत्पादक है

3. गीतात्मकता–साहित्य के अन्तर्गत संगीत की बड़ी महिमा रहती है। अष्टछाप के समस्त कवि उत्कृष्ट कोटि के भक्त कवि और गायक थे और सूरदास उनके सिरमौर थे। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने लिखा है कि –**"आचार्यों की छाप लगी हुई आ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का वर्णन कर उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झंकार अंधे कवि सूरदास की वीणा क थी।"** सूरदास गन्धर्व विद्या में निपुण थे। इसी निपुणता को रेखांकित करते हुए **स्वामी हरिराय** जी ने 'चौरासी वैष्णवन की वार्त में लिखा है कि **"सूरदास को कंठ बहौत सुन्दर हतौ। सो गान विद्या में चतुर और सगुन बताइबे में चतुर।"**

सूरदास की इसी सांगीतिक पहुँच के कारण उनकी उस समय बड़ी प्रसिद्धि थी। उनकी संगीत योजना अत्यन्त हृदयहारी है यहाँ एक बात और भी इंगित कर देना उचित प्रतीत होता है कि सूरदास केवल गायक ही नहीं थे, वे संगीत-शास्त्र के मर्मी आचा भी थे। उन्हें अनेक रागों की समुचित जानकारी थी। उनका प्रत्येक पद किसी-न-किसी राग पर आधारित है। सूरदास ने होली, मल्हा सोहिलो, रसिया आदि ब्रज के प्रमुख लोकगीतों का समावेश अपने काव्य में करके उनकी महत्ता को स्वीकृति दी है। इस प्रकार सू के पदों में कलागीतों के साथ ही लोकगीतों के तत्त्वों को भी महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। उनके गीतों में लोकगीतों की प्रायः समस्त विशेषताएँ प्राप्त हो जाती हैं। कुल मिलाकर इतना ही कहा सकता है कि उनके सभी पदों में संगीत के तीनों अंगों–गायन, वादन औ नर्तन का सुन्दर समन्वय है। निम्नलिखित पद सूर की गायन, वादन और नर्तन कला को एक साथ निरूपित करता है–

कंठ ताल अरु मंजीर, वंशी, मुरज, बीन, रबाब।
ढप, आनक, महुवर, उपंग, झांझ, किंनरी, मुखचंग॥
तननादिक दिमन द्रिम-द्रिम मृदंग–
बाजत थेई तायेई ता तत्तःादि दुरंग।
सुर-गन विमाननि चढ़े ब्रह्मा, रूद्र, नारद, इन्द्र पुलकति।
सूर जय-जय, जयति जय जय, जय जयति ललित त्रिभंग।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निष्कर्षात्मक शब्दों में कहा जा सकता है कि **"सूरसागर में कोई भी राग या रागिनी छूटी न होगी। इससे वह (सूरसागर) संगीत प्रेमियों के लिए भी बहुत बड़ा खजाना है।"**

4. छन्द विधान–कविता और छन्द का अभिन्न सम्बन्ध आदिकाल से ही चला आ रहा है। इसलिए विभिन्न राग-रागनियों में पद-रचना करते हुए भी सूर छन्दों की उपेक्षा न कर सके। सूर-काव्य में मुख्यतः चौपाई, चौबोला, दोहा, रोला आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त सूर ने राधिका, गीतिका, विष्णुपद, सरसी, सवैया, हरिप्रिया आदि छन्दों का भी सुन्दर प्रयोग किया है।

5. प्रतीक योजना–महाकवि सूरदास ने यथास्थान प्रतीकात्मकता का भी सहारा लिया है, जैसे भगवान के प्रति अपनी अनन्य भावना को निवेदित करने के लिए उन्होंने मीन और जल, चकोर और चाँदनी, भ्रमर और कमल जैसे प्रतीकों का प्रयोग किया है। सूर ने चकई, सुवा और भृंगी का भी प्रतीक रूप में प्रयोग किया है–

यह संसार सुवा सेमर ज्यौं, सुन्दर देखि लुभायौ।
चाखन लाग्यौ रूई उड़ि गई, हाथ कछु नहिं आयौ।

तथा–

मन सुवा तन पींजरा, तिहिं माँझ राखे हेत।
काल फिरत बिलार तनु धरि अब घरी तिहिं लेत॥

6. रस-निरूपण–सूर-काव्य में प्रायः सभी रसों के दर्शन हो जाते हैं। लेकिन भक्ति, वात्सल्य एवं शृंगार रस का वर्णन सर्वाधिक हुआ है। वात्सल्य का सूर ने इतना विशद् और सुन्दर वर्णन किया है कि वात्सल्य को एक अलग रस की संज्ञा प्राप्त हो गई। रस के सम्बन्ध में **आचार्य शुक्ल** का यह कथन उद्धरणीय प्रतीत होता है जो सूर की रस-विषयक दृष्टि को स्पष्ट करने में सार्थक है। उनका कहना है, **"वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्रों में जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आंखों से किया उतना किसी और कवि ने नहीं किया। इन क्षेत्रों का कोना-कोना वे झांक आए हैं।"** वात्सल्य का उदाहरण द्रष्टव्य है–

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नँद के आंगन, बिम्ब पकरिवैं धावत।
कबहूँ निरखि हरि आपु छाँह कौ, कर सौं पकरन चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दंतियाँ, पुनि पुनि तिहि अवगाहत॥

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सूर ब्रजभाषा के सम्राट हैं। उनकी कविता में मर्मस्पर्शी तीव्रता, जीवनदायिनी संजीवनी शक्ति, हृदयाकर्षक संगीतमयता तथा अंतःकरण को प्रभावित करने वाली उत्कृष्ट काव्य-कला के दर्शन होते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि सूरदास का काव्य भाव-पक्ष के साथ-साथ कला पक्ष की दृष्टि से भी उच्च कोटि का है।

◆◆◆

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. सूरदास का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

उत्तर–सूरदास हिन्दी साहित्य के महान कवियों में से एक हैं। वे अष्टछाप कवियों में प्रथम स्थान रखते हैं। वात्सल्य-वर्णन व विप्रलम्भ शृंगार-वर्णन में तो वे विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं।

जीवन-परिचय–सूरदास जी के जीवन पर प्रकाश डालने वाले दो साक्ष्यों–अन्तःसाक्ष्य तथा बाह्य-साक्ष्य–पर आश्रित होना पड़ता है। सूरदास जी ने अपनी कृति 'साहित्य लहरी' के एक पद में अपने वंश-वृक्ष का परिचय दिया है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे आदिकाल के प्रथम महाकवि चन्दबरदायी के वंशज हैं। उनकी जन्म तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। आचार्य शुक्ल ने उनका जन्म सम्वत् 1540 माना है। इसके लिए उन्होंने 'सूरसारावली' के 'सरसठ बरस प्रवीन' दोहे को आधार बनाया है। डॉ. द्वारिका प्रसाद पारीख व प्रभुदयाल मीतल ने उनका जन्म सम्वत् 1535 में माना है। इसके लिए उन्होंने गोकुलनाथ कृत 'निजवार्ता' को आधार माना है जिसमें बताया गया है कि सूरदास जी आचार्य वल्लभाचार्य से दस दिन छोटे थे। आजकल यही मत अधिक मान्यता प्राप्त है। सूरदास जी के जन्म स्थान को लेकर भी विद्वानों में मतैक्य का अभाव है। कुछ विद्वान् 'गोपांचल' को उनका जन्म-स्थान मानते हैं, परन्तु अधिकांश विद्वानों का मत है कि उनका जन्म हरियाणा के बल्लभगढ़ में सीही नामक गाँव में हुआ था।

सूरदास जी जन्म से ही अन्धे थे या बाद में अन्धे हुए थे—इस विषय पर भी विद्वानों में मतभेद है। आचार्य हजारी द्विवेदी ने कहा है कि सूर-काव्य किसी जन्मांध के द्वारा रचित नहीं हो सकता। यद्यपि अनेक विद्वानों ने सूरदास को जन्मांध करने का प्रयास किया है, परन्तु उनके काव्य में बालक श्रीकृष्ण, माता यशोदा, गोपियों, राधा आदि के जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म हाव का स्पष्ट चित्रण हुआ है, उसके आधार पर यह अवश्य कहा जाएगा कि निश्चय ही सूरदास जी ने कुछ समय तक इस जगत को अपनी आँखों से देखा था। अतः उन्हें जन्मांध नहीं कहा जा सकता।

सूरदास जी ने दीर्घायु प्राप्त की थी। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के उपरान्त वे 'श्रीहरि' मंदिर में श्रीकृष्ण-लीला के प गायन करते रहे। ऐसा माना जाता है कि सम्वत् 1640 में हिन्दी की इस महान विभूति का देहांत हो गया।

प्रश्न 2. सूरदास के कृतित्व (रचनाओं) पर टिप्पणी करें।

उत्तर–नागरी प्रचारिणी सभा ने अपनी खोज के आधार पर सूरदास द्वारा रचित काव्य रचनाओं की संख्या पच्चीस स की है। लेकिन उनकी केवल तीन रचनाएं ही प्रामाणिक हैं। ये हैं– (क) सूरसागर, (ख) सूरसारावली तथा (ग) साहित्य ल

(क) **सूरसागर**–यह सूरदास की सर्वाधिक प्रमुख रचना है। यह श्रीमद्भागवत पुराण को आधार बना कर लिखी ग लेकिन इसमें भागवत् के असमान श्रीकृष्ण की लीलाओं का सुन्दर गान है। यह काव्य-रचना वात्सल्य तथा के लिए प्रसिद्ध है। 'भ्रमरगीत' इसका मार्मिक स्थल है जिसमें निर्गुण पर सगुण की, विराग पर राग की तथा पर भक्ति की विजय का प्रतिपादन हुआ है। यह एक सफल उपालम्भ काव्य-रचना है।

(ख) **साहित्य लहरी**–यह एक लघु काव्य-रचना है जिसमें राधा-कृष्ण के प्रेम के अतिरिक्त नायिका-भेद, अलंकार तथ का विवेचन है।

(ग) **साहित्य लहरी**–यह सूरसागर की भूमिका प्रतीत होती है। इसमें होली के रूपक द्वारा सृष्टि की रचना पर प्र डाला गया है। यह एक सिद्धान्त प्रधान ग्रन्थ है।

प्रश्न 3. सूरदास के बाल लीला वर्णन पर टिप्पणी करें।

उत्तर–कविवर सूरदास ने 'सूरसागर' में बालक श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का बड़ा ही मनोहारी चित्रण किया है। श्रीकृष्ण विभिन्न चेष्टाओं और क्रीड़ाओं का विस्तृत वर्णन करने में वे सफल हुए हैं। यशोदा माता शिशु कृष्ण को कहीं तो पालने में झूले हैं, कहीं उसे झुलाती हैं, दुलार करती हैं और मल्हार गाती हैं। वे चाहती हैं कि कृष्ण को जल्दी से नींद आ जाए। इसी प्रकार से अन्य पद में शिशु कृष्ण हाथ से पैर का अंगूठा पकड़ कर मुँह में डालते हैं और प्रसन्न होकर खेल रहे हैं। उनकी इस शोभा को देख तो शिव, ब्रह्मा आदि भी चिन्ता में पड़ जाते हैं। यही नहीं, वे हाथ में मक्खन लिए हुए हैं तथा घुटनों के बल चलते हैं। उनके तन धूल लगी हुई है और मुख पर दधि का लेप है। इस प्रकार बाल-लीला के अनेक चित्र 'सूरसागर' में भरे हुए हैं। एक उदाहरण देखि

शोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुनि चलत रेनु तनु मण्डित, मुख दधि लेप किये।
चारु कपोल लोललोचन, गोरोचन तिलक दिये।
लट-लटकानि मनो मत मधुप गन मादक मदहिं पिये।
कठुला कंठ वज्र केहरि नख, राजत रुचि रहिये।
धन्य 'सूर' एको पल या सुख का सत कल्प जिये।

प्रश्न 4. सूरदास के वात्सल्य वर्णन पर टिप्पणी करें।

उत्तर–सूर के काव्य में वात्सल्य को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि सूर ने पुष्टि मार्ग दीक्षा प्राप्त की थी। आचार्य वल्लभ ने भी प्रभु के बाल रूप की आराधना पर अत्यधिक बल दिया था। 'सूरसागर' में वात्स सम्बन्धी पदों की संख्या 580 के लगभग है। इन पदों में उन्होंने कृष्ण के जन्मोत्सव, संस्कार, उनकी बाल छवि, उनकी वेशभ बाल चेष्टाओं, गोधन, गोचारण तथा बालकृष्ण के मन के भावों का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है। कवि ने कृष्ण की लीलाओं से नन्द और यशोदा दोनों को ही प्रसन्न होते हुए दिखाया है। वस्तुतः सूरदास ही हिन्दी के प्रथम कवि हैं जिन्होंने वर्णन में न केवल रुचि ली, बल्कि इतना कुछ वर्णन कर दिया कि औरों के कहने के लिए कुछ भी नहीं छोड़ा। इसीलिए उ ही कहा गया है—**सूर ही वात्सल्य है और वात्सल्य ही सूर है।** बाललीला के पदों में तो मानो वात्सल्य रस का सागर उमड़ने ल है। कवि कहीं श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव का वर्णन करता है, तो कहीं उनके घुटनों के बल सरकने का। कभी वे गाय चराने का करते हैं तो कभी चन्द्रमा के लिए। एक उदाहरण देखिए जिसमें यशोदा माता बालक कृष्ण को चलना सिखाती हैं–

सिखवत चलत जसौदा मैया।
अरबराई कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरैं पैंया।
कबहुँक सुन्दर बदन बिलोकति, उर आनंद भरि लेत बलैया।
कबहुँक बल को टेरि बुलावति, इहि आँगन खेलो दोऊ भैया।
कबहुँक कुल-देवता मनावति, चिरजीवी मेरो बाल कन्हैया।
सूरदास प्रभु सब सुखदायक, अति प्रताप बालक नंदरैया।

प्रश्न 5. सूरदास की भक्ति भावना पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।

उत्तर–सूरदास ने पुष्टि मार्ग में दीक्षा प्राप्त की थी। अतः उन्होंने पुष्टि मार्ग के सिद्धांतों के आधार पर कृष्ण को अपना आराध्य स्वीकार कर उनकी लीलाओं का गान किया। उनकी भक्ति सगुण भक्ति है। उन्होंने वैधी भक्ति को स्वीकार करते हुए भी प्रेमाभक्ति पर अधिक बल दिया। उनकी काव्य रचनाओं में दास्य, सख्य, वत्सल, मधुर तथा शान्त–मुख्य पाँच भावों की भक्ति का प्रतिपादन देखा जा सकता है। दास्य भक्ति का एक उदाहरण देखिये–

प्रभु हौं सब पतितन कौ टीकौ।
और पतित सब दिवस चारि के, हौं तो जनमत ही कौ।
बधिक अजामिल, गनिका तार्‌यौ और पूतना ही कौ।
मोहि छाँड़ि तुम और उधारे, मिटै सूल क्यों जी कौ?
कोउ न समरथ अघ करिबे कौ, खैंच कहत हौं लीकौ।
मरियत लाज सूर पतितनि में, मोहूँ तौं को नीकौ।।

सूर के काव्य में कृष्ण की प्रेम लीलाओं का भी पर्याप्त उल्लेख किया गया है। उनके क्रीड़ा स्थल में यमुना कुंज, लताकुंज आदि सम्मिलित हैं। फलस्वरूप कवि ने माधुर्य भक्ति के भी असंख्य पद लिखे हैं।

प्रश्न 6. सूरदास के शृंगार वर्णन पर टिप्पणी करें।

उत्तर–भले ही सूरदास भक्त कवि हैं, लेकिन वे शृंगार के भी सम्राट कहे जाते हैं। कवि ने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सुन्दर वर्णन किया है। ब्रज की गोपियाँ श्रीकृष्ण के रूप-माधुर्य पर आसक्त हो जाती हैं। दोनों ओर से हास-परिहास होता है और फलस्वरूप प्रेम व्यापार का श्रीगणेश हो जाता है। श्रीकृष्ण की बाँसुरी तो मानो गोपियों के लिए जादू का काम करती है। उसकी मधुर स्वर लहरी को सुनकर गोपियाँ लोकलाज को त्याग कर कृष्ण के पास पहुँच जाती हैं। राधा और कृष्ण के मिलन का कवि ने बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है। उदाहरण देखिये-

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज-खोरी।।
काहे को हम ब्रज-तन आवति, खेलति रहतिं आपनी पौरी।
सुनत रहति स्रवननि नंद ढोटा, करत फिरत माखन-दधि-चोरी।।
तुम्हरो कहा चोरि हम लेहैं, खेलन चलौं संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी।।

सूरदास जी का काव्य विप्रलम्भ (वियोग) शृंगार से भी ओत-प्रोत है। कवि ने श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद अर्थात् प्रवास की स्थिति में राधा और गोपियों की विरह वेदना का सर्वाधिक वर्णन किया है। 'भ्रमरगीत' में हमें गोपियों की विरह वेदना के मार्मिक पद पढ़ने को प्राप्त होते हैं। लेकिन सूर का विरह वर्णन अपेक्षाकृत अधिक उज्ज्वल, गहन और गम्भीर है। इस संदर्भ में डॉ. मुन्शीराम शर्मा ने उचित ही लिखा है- **"इस क्षेत्र में सूर की समता करने वाला, विरह-वेदना का इतना विस्तृत और गम्भीर अनुभव करने वाला कोई कवि दिखायी नहीं देता। सूर विप्रलम्भ शृंगार के एक अद्वितीय कवि हैं। ह्रदय की घनीभूत पीड़ा आँसुओं की शत-शत धाराओं में प्रकट होकर लहरें मार रही है।"**

प्रश्न 7. सूरदास की भाषा-शैली पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।

उत्तर–सूरदास के काव्य की भाषा साहित्यिक एवं परिनिष्ठित ब्रजभाषा है। उनकी भाषा अभिव्यक्ति को पूर्णता प्रदान करने में पूर्णतया सक्षम है। सूरदास जी ने अपने काव्य में मुख्यतः ब्रजभाषा के लोक प्रचलित शब्दों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है। सूरदास जी ने भाषा को प्रवाहमयी बनाने के लिए संस्कृत के तत्सम, तद्भव, देशज और अरबी, फारसी आदि भाषाओं के

शब्दों का भी खूब प्रयोग किया है। उन्होंने अपने काव्य में अर्थ-व्यंजना की वृद्धि करने के लिए लोकोक्तियों और मुहावरों क सफल प्रयोग किया है। अपनी कृतियों में सूरदास ने अलंकारों का भी खूब प्रयोग किया है। हम उनकी काव्य भाषा को अलंका का सागर कह सकते हैं। ऐसा कोई भी अलंकार नहीं है जिसका प्रयोग उनके काव्य में न हुआ हो। सूरदास जी का सम्पूर्ण काव भावात्मक होने के कारण गीति पदों में रचित है। उन्होंने अपने काव्य में दोहा, चौपाई, चौबोला, सार, सरसी, भक्ति, सवैय कुण्डलिया, गीतिका आदि छन्दों का सफल एवं सार्थक प्रयोग किया है। अतः निष्कर्ष रूप में उनके काव्य में गीतिकाव्य की स विशेषताएँ देखी जा सकती हैं। सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में काव्य कला-कौशल के कारण उनका काव्य बेजोड़ कहा जा सकता है।

प्रश्न 8. 'भ्रमरगीत' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर–'भ्रमरगीत' सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश है। यह 'सूरसागर' के दसवें स्कन्ध के पूर्वा खण्ड 'ब्रज चरित' में संकलित है। भ्रमरगीत का प्रतिपाद्य है–श्रीकृष्ण के वियोग में गोपियों की विरह व्यथा का चित्रण करन लेकिन सूरदास ने इस प्रसंग के माध्यम से निर्गुण पर सगुण का, ज्ञान पर भक्ति का तथा विराग पर राग का प्रतिपादन कि है। उद्धव श्रीकृष्ण के परम मित्र थे और निर्गुण भक्ति के पक्षधर थे। कृष्ण ने उसे सगुण का पाठ पढ़ाने के लिए मथुरा ब्रज में भेजा, लेकिन उद्धव अशिक्षित तथा प्रेम में पगली गोपियों के आगे नतमस्तक होकर पुनः मथुरा लौट आया। 'भ्रमरगीत अपनी मौलिक उद्‌भावनाओं लिए प्रसिद्ध है। कवि ने एक ही भाव को विविध रूपों में प्रकट किया है। सतही तौर पर लगत है कि कवि गोपियों की खीझ का वर्णन करना चाहता है, क्योंकि वे अपनी वियोगावस्था पर झुंझलाकर कृष्ण को भला-बु कहना आरंभ कर देती हैं।

वास्तव में 'भ्रमरगीत' गोपी-उद्धव संवाद से सम्बन्धित है। कुछ आलोचक इसे उपालम्भ काव्य की संज्ञा भी देते हैं, लेकि हम इसे व्यंग्य काव्य कहें तो अधिक उचित होगा। एक तो कृष्ण और उद्धव दोनों काले थे और भ्रमर भी काला होता है। दूसर भ्रमर रस का लोभी होता है, यह प्रेम की रीति को नहीं पहचानता। इसलिए गोपियाँ उद्धव को अतिथि मानकर अपने सभी व्यं बाण भ्रमर के प्रति चलाती हैं। सूरदास के भ्रमरगीत के बारे में आचार्य शुक्ल ने लिखा है- **"ऐसा सुन्दर उपालम्भ काव्य दूस नहीं मिलता। उसमें गोपियों की वचन वक्रता अत्यन्त मनोहारिणी है। न जाने कितनी मानसिक दशाओं का संचार उसके भीत है, कौन गिन सकता है?"**

गोपियाँ श्रीकृष्ण पर व्यंग्य करती हुई कहती भी हैं–

"काहे को गोपीनाथ कहावत
जो मधुकर वे श्याम हमारे,
क्यों न इहे लहि आवत।"

गोपियाँ यूँ भी कहती हैं कि उनके पास दस-बीस मन तो हैं नहीं, एक ही मन है और वह भी श्रीकृष्ण के पास चला जा है। अतः और मन कहाँ से आए? सूरदास के बाद भ्रमरगीत की एक लम्बी परम्परा देखी जा सकती है, लेकिन सूर रचित भ्रमरगी की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने नाना प्रकार के तर्क देकर निर्गुण ब्रह्म की उपासना का विरोध किया है और योग साध के स्थान पर माधुर्य भाव की भक्ति की प्रतिष्ठा स्थापित की है।

प्रश्न 9. सूरदास की 'राधा' पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।

उत्तर–सूरदास ने राधा का एक विशिष्ट व्यक्तित्व दर्शाया है। वह न केवल विलासिनी है और न केवल ग्वालिन। सूरदास उसे इन दोनों के मिले-जुले रूप के साथ चित्रित किया है। बाल्यावस्था में वह एक भोली-भाली बालिका के रूप में दिखाई देती है

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कबहूँ ब्रज खोरी।
काहे को हम ब्रजतन आवति, खेलति रहतिं आपनी पौरी।
सुनत रहतिं स्रवननि नंद-ढोटा, करत फिरत माखन-दधि चोरी।
तुम्हारौ कहा चोरि हम लेहौं, खेलन चलौं संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी॥

परन्तु जब राधा एक बार प्रेम के झूले पर बैठकर पींग बढ़ाने लगती है, तब उसका सारा भोलापन चंचलता, मान-मनाव चतुराई आदि में बदल जाता है। वह कभी तो हार को खोजने के बहाने से घर से निकलती है, तो कभी गाय दुहाने के लिए जल् से कृष्ण के पास पहुँच जाती है। इतना ही नहीं, अब यह चंचल किशोरी बातें बनाने में भी सिद्धहस्त हो गई है।

राधा जितनी चंचल है, उतनी चतुर भी है। वह श्रीकृष्ण से प्रेम करती है। उसके साथ काम-केली करती है, परन्तु गोपियों के सामने ऐसे व्यवहार करती है, मानो वह कृष्ण को जानती ही न हो; यथा-

कैसे हैं नंद-सुवन कन्हाई
देखे नहीं नैन भरि कबहुँ, ब्रज मैं रहत सदाई।

ज्यों-ज्यों राधा के यौवन में बढ़ोतरी होती जाती है, त्यों-त्यों वह मानवती भी होती जाती है। वह ऐसी मानिनी है कि स्वयं श्रीकृष्ण को उसे मनाने के लिए कभी तो नारी रूप में आना पड़ता है तो कभी उसका मनावन भी करना पड़ता है। परन्तु यहाँ ध्यातव्य है कि सूरदास की राधा संयोगावस्था में जितनी चंचल, चतुर, मानिनी दिखाई देती है, श्रीकृष्ण के मथुरा जाने के बाद उतनी ही अधिक वह गंभीर, अन्तर्मुखी बन जाती है।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि सूरदास के काव्य में राधा प्रेम की एक महान साधना के रूप में चित्रित हुई है। वह एक ऐसी सच्ची प्रेमिका है जो विरह की असहनीय ज्वाला में जलकर भी उफ़ तक भी नहीं करती है।

प्रश्न 10. 'सूरसागर' की मौलिकता पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर–सूरदास जी वल्लभाचार्य के शिष्य थे और उनके पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय में दीक्षित थे। सूरदास जी ने अपने गुरु के आदेशानुसार श्रीकृष्ण लीला विषयक पदों की रचना आरम्भ की। उनके पदों की संख्या सवा लाख बताई जाती है, परन्तु अभी तक सूरदास कृत 'सूरसागर' के जितने भी प्रामाणिक संकलन प्रकाशित हुए हैं, उनमें पदों की अधिकतम संख्या पाँच हजार के लगभग है। उनके वे पद किसी संकलन-ग्रंथ में स्कंधात्मक रूप में तो किसी में लीलात्मक क्रमानुसार संकलित हैं। इन पदों पर वैसे तो प्रत्यक्ष रूप से श्रीमद्‌भागवत का प्रभाव पड़ा है, फिर भी 'सूरसागर' में सूरदास जी ने अनेक नवीन कथाओं के चयन, विशदीकरण, लाक्षणिकरण, उनमें भाव-दशाओं की नई-नई उद्‌भावनाओं, योजनाओं आदि के रूप में अपनी मौलिकता सिद्ध की है।

उदाहरण के लिए, श्रीमद्‌भागवत पुराण में श्रीकृष्ण की ब्रज-क्रीड़ाओं का नाममात्र का वर्णन हुआ है जबकि 'सूरसागर' में सूरदास जी ने शिशु व बालक रूप में श्रीकृष्ण की लीलाओं, क्रीड़ाओं आदि की नई-नई कल्पनाएँ, उद्‌भावनाएँ प्रस्तुत की हैं। श्रीमद्‌भागवत में कालिया दमन का प्रसंग कालिदह-जलपान से संबंधित है जबकि 'सूरसागर' में ये दोनों घटनाएँ पृथक-पृथक हैं। इसी प्रकार तृणावत्त, शकरासुर, कागासुर आदि राक्षसों के वध की कथाएँ श्रीमद्‌भागवत में संक्षिप्त व वर्णनात्मक हैं जबकि सूरदास जी ने 'सूरसागर' में इन्हें गेय शैली में विस्तृत रूप से चित्रित किया है।

श्रीमद्‌भागवत में श्रीकृष्ण के नामकरण आदि संस्कारों का सामान्य-सा वर्णन किया गया है जबकि 'सूरसागर' में सूरदास जी ने श्रीकृष्ण के जीवन से जुड़े उनके संस्कारों, यथा–अन्नप्राशन, वर्षगाँठ, कर्ण छेदन आदि में अपनी लेखनी का परिचय दिया है। इन सबके अतिरिक्त 'सूरसागर' में सूरदास जी ने श्रीकृष्ण की बाल-लीला का जो वर्णन है, वह सर्वथा मौलिक व विस्तृत है।

'सूरसागर' की मौलिकता इस तथ्य से भी स्पष्ट होती है कि सूरदास जी ने भागवत पुराण में विस्तृत रूप से वर्णित अनेक कथाओं; यथा–वृत्तासुर, अघासुर, बकासुर आदि राक्षसों के वध की कथाओं को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में चित्रित किया है। इस प्रकार 'सूरसागर' में वर्णित कथाओं के न केवल उद्देश्य में मौलिकता है, बल्कि उनके विस्तार में भी अन्तर है। इसी प्रकार राधा-कृष्ण मिलन, पनघट-लीला, दान-लीला आदि के प्रसंग भी सूरदास की अपनी मौलिक उद्‌भावनाएँ हैं।

प्रश्न 11. सूर के वियोग शृंगार वर्णन पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–सूरदास को शृंगार वर्णन का सम्राट कवि भी कहा जाता है। काव्यशास्त्रियों ने शृंगार के दो भेद माने हैं–संयोग शृंगार तथा वियोग शृंगार। सूरदास ने अपने काव्य में राधा-कृष्ण व गोपियों और श्रीकृष्ण के माध्यम से शृंगार के इन दोनों रूपों का भेदोपभेदों के साथ सुन्दर वर्णन किया है। राधा, गोपियाँ जहाँ संयोगावस्था में श्रीकृष्ण के साथ जितनी अधिक काम-केलि, भोग-विलास आदि में रत रहती हैं, वियोगावस्था में वे उतनी ही अधिक दुखी, अतृप्त रहती हैं। सूरदास जी ने अपने काव्य में गोपियों, राधा की विरह-वेदना का बड़ा ही हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। वियोग शृंगार के चार भेद माने गए हैं–पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण। सूरदास जी ने इन चारों भेदों में से पूर्वराग शृंगार का थोड़ा-बहुत, परन्तु मान, प्रवास व करुण का सर्वाधिक वर्णन किया है। सूरदास जी ने श्रीकृष्ण के मथुरा प्रवास के दौरान गोपियों की व्याकुलता, विरह-वेदना, छटपटाहट आदि का जैसा वर्णन किया है, वह अपने आप में अद्वितीय है। गोपियाँ श्रीकृष्ण के वियोग में व्याकुल हैं।

सूरदास जी ने अपने काव्य में श्रीकृष्ण के वियोग में व्याकुल गोपियों की विरह-वेदना को 'भ्रमरगीत प्रसंग' के माध्यम से भी प्रस्तुत किया है। गोपियाँ उद्धव के समक्ष कभी तो अपनी विरह-वेदना को दर्शाती हैं और कभी प्रियतम की निष्ठुरता पर व्यंग्य करती हैं।

सूरदास जी ने अपने काव्य में वियोग शृंगार वर्णन के अन्तर्गत वियोगावस्था की सभी दस अवस्थाओं–अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता तथा मूर्च्छा का भावपूर्ण वर्णन किया है।

प्रश्न 12. सूर के वसन्त वर्णन पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–भारतीय संस्कृति में वर्ष भर में दो-दो महीने के अंतराल पर एक-एक ऋतु का आगमन माना जाता है। इस प्र भारतीय कवियों ने अपने काव्य में छह ऋतुओं–वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त व शिशिर का वर्णन किया है। इनमें से वसंत को सर्वश्रेष्ठ ऋतु माना गया है और इसे ऋतुओं का राजा माना गया है। इस ऋतु में प्रकृति अपना नूतन शृंगार करती है, जिस कारण चारों ओर प्राकृतिक सौंदर्य की छटा छा जाती है।

सूरदास जी ने अपने काव्य में वसंत ऋतु का बड़ा ही आकर्षक व प्रभावशाली वर्णन किया है। उन्होंने वसंत ऋतु का दो अवस्था में अधिक वर्णन किया है। उन्होंने गोपियों, राधा व श्रीकृष्ण की संयोगावस्था के अनेक चित्र इसी ऋतु के वर्णन के अंतर्गत खींचे। वस्तुतः वसंत ऋतु को संयोगावस्था में काम-भावना को उद्दीप्त करने वाली ऋतु माना जाता है। वसंत ऋतु आते ही चारों ओर की हरी-भरी डालियों पर अनेक प्रकार के फूल दिखाई देने लगते हैं, जिन पर भँवरे गुंजन करते हैं। इसी प्रकार सूरदास जी ने श्रीकृ को गोपियों व राधा के साथ वसंत ऋतु में रास-विलास करते दिखाया है। ऋतुओं के राजा वसंत में वृन्दावन के कुंज में चारों ओ पलाश के फूल खिले हुए हैं, राधा व कृष्ण एक हिंडौले पर विलास कर रहे हैं और उनके चारों ओर गोपियाँ उनकी सेवा कर रही है।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि सूरदास जी ने अपने काव्य में वसंत ऋतु का आलम्बन व उद्दीपन विभाव के अंतर्ग सुन्दर व स्वाभाविक वर्णन किया है।

प्रश्न 13. सूर के भाव पक्ष पर प्रकाश डालिए।

अथवा

सूर की भक्ति का कोई सानी नहीं है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–सूरदास की गणना हिन्दी के श्रेष्ठतम कृष्ण-भक्त कवियों में होती है। उन्होंने मुख्यतः तीन ग्रंथों–'सूरसागर 'साहित्य-लहरी' तथा 'सूरसारावली' की रचना की और ये तीनों ही ग्रंथ मूल रूप से श्रीकृष्ण-लीला विषयक प्रसंगों पर आधारि हैं। इन तीनों ग्रंथों का समुचित अध्ययन करने पर सूर-काव्य के वर्ण्य-विषय को छह भागों में बाँटा जा सकता है–विनय के प बालकृष्ण से संबंधित मनोविज्ञान के पद, कृष्ण की रूप-माधुरी संबंधी पद, श्रीकृष्ण व राधा के रति भाव संबंधी पद, मुरली संबं पद तथा वियोग शृंगार के भ्रमर गीत प्रसंग के पद।

सूरदास जी ने अपने विनय के पदों में विनय की सम्पूर्ण मनोदशाओं, भावों तथा वैष्णव-भक्ति संबंधी नियमों के अनुसा अनुकूलता, ईश्वर की महानता और स्वयं की लघुता, निराभिमानता, एकनिष्ठा, समर्पण की भावना आदि को प्रकट किया है कवि ने अपनी लघुता को दर्शाने के लिए स्वयं को 'पतितन को टीकौ' कहा है, तो दूसरी ओर अपने इष्टदेव को भक्तवत्सल दीनदयालु व कृपानिधान कहा है; यथा-

प्रभु हौं सब पतितन को टीकौ।
और पतित सब दिवस चारि के, हौं तो जनमत ही कौ।

बालक श्रीकृष्ण से संबंधित मनोविज्ञान के पदों में कवि सूरदास जी ने श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का सुन्दर वर्णन किया है। इन पदों में उन्होंने बालक श्रीकृष्ण को कभी तो हठ करते दिखाया है तो कभी माखन चोरी करते दिखाया है; कभी वे बाल-सुलभ क्रीड़ाएँ करते हैं तो कभी असुरों का संहार करते हैं। इन पदों में सूरदास जी ने चंचल, चपल बालक श्रीकृष्ण के चतुर स्वभाव का भी सुन्दर वर्णन किया है; यथा-

मैया मैं नहीं माखन खायौ।
ख्याल परे मे सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायौ।

सूरदास जी ने श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी संबंधी पदों में अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण के असीम, अनंत सौंदर्य की बड़ी ही मनोहर झाँकी प्रस्तुत की है, जिसका सहृदय पर सीधा प्रभाव पड़ता है। सूरदास द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण की इस रूप-माधुरी ने ही अनेक लोगों को कृष्ण-भक्तों के रूप में ढाला है।

प्रश्न 14. 'भ्रमर गीत में वाग्वैदग्ध्य' पर टिप्पणी कीजिए।

अथवा

'भ्रमर गीत' में वर्णित व्यंग्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–भ्रमरगीत में जो भावगत वाग्वैदग्ध्य है, उसमें व्यंग्य, विनोद-वृत्ति, उपालम्भ या उलाहना आदि गोपियों की प्रेमानुभूतियों में लिपटे हुए प्रतीत होते हैं। सूरदास केवल वचनवक्रता के पाश में बँधे नहीं रहते हैं, बल्कि वे तो भावों के साथ कथन का उचित

सामंजस्य बैठाने में रुचि रखते हैं। 'भ्रमरगीत' के प्रसंग में यह तो स्वतः स्पष्ट होता है कि गोपियाँ श्रीकृष्ण से अनन्य व एकनिष्ठ प्रेम करती हैं। अतः जब उद्धव उन्हें श्रीकृष्ण के संदेश के माध्यम से योग-साधना का, निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने का उपदेश देते हैं, तब उन गोपियों का यही प्रेम नाना प्रकार के भावों से ओत-प्रोत होकर निकलता है। गोपियाँ तो श्रीकृष्ण से बिना किसी शर्त के प्रेम करती हैं, परन्तु जब वे इसी के अनुरूप श्रीकृष्ण को अपने प्रति समर्पित नहीं पाती हैं, तब वे क्षुब्ध होती हैं।

भ्रमरगीत में गोपियों की वाग्विदग्धता और व्यंग्यात्मकता से उपहासात्मक हास्य पैदा होता है और इसमें एक पक्ष आनंदित होता है जबकि दूसरा पक्ष आहत होता है। लगभग तेरह मास तक श्रीकृष्ण के मथुरा से वापस आने की प्रतीक्षा करती गोपियाँ श्रीकृष्ण का संदेश सुनकर यह समझ चुकी हैं कि अब उन्हें अपने प्रियतम के दर्शन तो नहीं होंगे, अतः क्यों न उनके गर्व से चूर संदेशवाहक पर अपनी भड़ास निकाली जाए। यह सोचकर गोपियाँ उद्धव को अपने मनोविनोद का साधन मान लेती हैं। उपहास करने में दक्ष ये अनपढ़ ग्वालिनें कभी तो उद्धव पर सीधे चोट करती हैं तो कभी बात को पलटकर।

'भ्रमरगीत' में गोपियों के वाग्वैदग्ध्य (व्यंग्य) का तीसरा मुख्य लक्ष्य कुब्जा है। यहाँ ध्यातव्य है कि जब उद्धव ब्रज आते हैं, तब कुब्जा उनसे अपना संदेश गोपियों को सुनाने के लिए कहती है। वह गोपियों से कहती है कि पहले तो तुमने श्रीकृष्ण को रस्सी व ऊखल से बाँधा, उन्हें माखन-चोरी के लिए प्रताड़ित किया, उन्हें सवेरे-सवेरे गाय चराने के लिए वन में भेजा, फिर अब तुम श्रीकृष्ण के वियोग में क्यों व्याकुल होती हो। यह संदेश श्रीकृष्ण से एकनिष्ठ व अनन्य प्रेम करने वाली गोपियों को जहर बुझे तीर के समान लगता है। चूँकि उनका अपने प्रियतम श्रीकृष्ण पर तो कोई जोर नहीं चलता है, क्योंकि वे स्वयं मथुरा में बैठे हैं, अतः गोपियों का सारा प्रेम अब या तो नारी-सुलभ सौतिया डाह के रूप में उभरकर आता है या अपने प्रियतम पर दोषारोपण के रूप में उभरता है।

प्रश्न 15. सूर-काव्य के आधार पर नंद का शील-निरूपण कीजिए।

उत्तर–सूरदास जी का समूचा काव्य श्रीकृष्ण के जीवन-चरित पर आधारित है और चूँकि बालक श्रीकृष्ण का पालन-पोषण करने वाले नंद व यशोदा थे, अतः उनके काव्य में इन दोनों के चरित्र-चित्रण होना नितांत आवश्यक है। निस्संदेह सूरदास जी ने अपने काव्य में माता यशोदा का जितना विस्तृत चरित्र-चित्रण किया है, उतना नंद का नहीं किया है और इसका संभवतः एक कारण यही हो सकता है कि सूरदास ने एक माता का हृदय पाया था। सूरकाव्य में हमें नंद बाबा एक ऐसे पुत्र-स्नेही पिता के रूप में दिखाई देते हैं, जो अपने पुत्र की कुशलता के लिए सारी सम्पत्ति त्यागने को तैयार हैं।

जब नंद को पता चलता है कि उनकी पत्नी यशोदा ने एक पुत्र को जन्म दिया है, तब वे प्रसन्नता से भरकर वहाँ दौड़े चले आते हैं—

दौरि नंद गए, सुत मुख देख्यौ, सो सुख बरनि न जाइ।

बालक श्रीकृष्ण की बाल-सुलभ चेष्टाओं, क्रीड़ाओं आदि को देखकर न केवल माता यशोदा प्रसन्न होती हैं, बल्कि नंद बाबा भी अपने पुत्र के प्रेम में भाव-विभोर हो जाते हैं; यथा—

आए नंद हंसत तिहिं औसर, आनंद उर न समाइ।

नंद के पास अपने पुत्र को खिलाने, उसे भोजन कराने, दूध निकालना सिखाने आदि जैसे क्रियाकलापों के लिए भी पर्याप्त समय है। वे कभी तो श्रीकृष्ण को राधा के साथ खेलने के लिये कहते हैं-

सुनि बेटो वृषभानु महर की, का-हहिं लेइ खिलाइ।

कभी वे श्रीकृष्ण को अपनी गोद में बैठाकर उन्हें अपनी थाली से निकालकर भोजन का ग्रास देते हैं, तो कभी वे गोचारण से थके-हारे लौटे श्रीकृष्ण व बलराम के साथ भूखे ही सो जाते हैं।

नंद बाबा भीरु प्रवृत्ति के स्वामी हैं। जब-जब उनके पुत्र पर कोई संकट आता है या मथुरा का राजा कंस उन्हें मारने के प्रयास में किसी असम्भव कार्य का आदेश देता है, तब नंद बाबा उस संकट का डटकर सामना नहीं करते और न ही वे कंस के अत्याचारों का विरोध करते हैं, बल्कि वे दैत्यों से घबराकर अपने निवास-स्थान गोकुल को ही छोड़ देते हैं और वृंदावन में रहने लगते हैं।

अतः उपर्युक्त विवेचन के उपरांत संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सूर-काव्य में नंद बाबा को एक कर्त्तव्यपरायण पिता, पुत्र-स्नेही, निरभिमानी परन्तु भीरु-प्रवृत्ति के व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है।

प्रश्न 16. सूर-काव्य के आधार पर संक्षेप में श्रीकृष्ण का शील निरूपण कीजिए।

उत्तर–सूरदास जी ने अपने आरम्भिक पदों में प्रभु श्रीकृष्ण को भक्त-वत्सल बताया है। वे कहते हैं कि उनके प्रभु श्रीकृष्ण अत्यन्त भक्त-वत्सल हैं जिन्होंने अहिल्या, गज, अजामिल, गणिका आदि का उद्धार किया। वे न केवल अपने भक्तों की धृष्टता को सहन करते हैं, बल्कि बिना किसी स्वार्थ की भावना के उनका उपकार भी करते हैं।

सूरदास जी ने अपने काव्य में व शिशु रूप में श्रीकृष्ण के चंचल स्वभाव, हठ, मातृ-प्रेम, उनके सुन्दर रूप आदि का बड़ा व्यापक चित्रण किया है। 'सूरकाव्य' में हमें बालक श्रीकृष्ण के जिस रूप व छवि के दर्शन होते हैं, वह एक चंचल, चपल, हठी, मन को मुदित करने वाले बालक की छवि है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि इन पदों में कवि ने श्रीकृष्ण को माता यशोदा की दृष्टि से देखा न कि किसी अनन्य भक्ति की दृष्टि से। यही कारण है कि उनकी बाल-छवि के प्रत्येक पद में शिशु की बाल-सुलभ परन्तु मनमोहक छवियाँ, क्रीड़ाएँ आदि ही दिखाई देती हैं; शिशु रूप में श्रीकृष्ण अपने पालने में झूल रहे हैं और माता यशोदा उन्हें लोरी सुनाकर सुलाने का प्रयास करती है। कच्ची नींद में सो रहे शिशु कृष्ण किसी कारणवश अचानक जाग जाते हैं, तो यशोदा उन्हें दुलार-पुचकार कर पुनः सुलाने का प्रयास करती हैं।

सूरकाव्य में गोपालक के रूप में श्रीकृष्ण भले ही मुखिया नंद के पुत्र हैं, परन्तु उनमें ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, अमीर-गरीब आदि का कोई भेदभाव नहीं है।

चूंकि श्रीकृष्ण बचपन से ही चंचल स्वभाव के हैं, अतः वे किशोरावस्था में दही बेचने जाती गोपियों के साथ दान-माँगने के बहाने छेड़-छाड़ करते हैं, उनके उरोजों पर हाथ रखते हैं।

इसी प्रकार सूरकाव्य में श्रीकृष्ण गोपियों के साथ रास-लीला रचते हैं; जब वे पनघट पर पानी भरने जाती हैं, तब उनकी मटकी गिरा देते हैं, जब गोपियाँ यमुना में स्नान करती हैं, तब किनारे पर रखे उनके वस्त्रों को उठाकर पेड़ चढ़ जाते हैं और उन्हें एक-एक करके अपने सामने निर्वस्त्र रूप में आने के लिए कहते हैं।

प्रश्न 17. सूर काव्य में प्रकृति-चित्रण की संक्षेप में समीक्षा कीजिए।

उत्तर–सूरदास के काव्य में प्रकृति का अनेक रूपों में चित्रण हुआ है। उनके काव्य में निस्संदेह प्रकृति का विपुल मात्रा में और विभिन्न रूपों में चित्रण हुआ है, परन्तु यहाँ यह अवश्य कहा जाएगा कि प्रकृति-चित्रण करना उनके काव्य का मुख्य लक्ष्य नहीं है। सूरदास जी ने अपने काव्य में प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण करते समय केवल बिम्ब ग्रहण प्रणाली को ही अपनाया है। उन्होंने अपने काव्य में प्रकृति के बड़े ही संश्लिष्ट दृश्य एवं बिम्ब प्रस्तुत किए हैं। निस्संदेह प्रकृति का सुकोमल व सुकुमार रूप ही मनुष्य को अधिक प्रभावित करता है, परन्तु प्रकृति-चित्रण में केवल उसी कवि को सिद्धहस्त माना जा सकता है जो प्रकृति के सुकुमार रूप के साथ-साथ उसके भयानक व उग्र रूप में भी सौन्दर्य के दर्शन करे। अंधत्व के बावजूद कवि सूरदास ने प्रकृति के भयंकर व उग्र रूप का बड़ा ही स्वाभाविक, हृदयस्पर्शी व चित्रात्मक वर्णन किया है। उदाहरण के लिए, उनके काव्य में प्रकृति के उग्र रूप को दर्शाने वाले निम्न पद की पंक्तियाँ देखिए, जिसमें कवि ने दावानल के समय उठती भयंकर लपटों, जलते हुए बाँसों, चटक कर टूटते फल, फूल, पत्तों आदि का वर्णन किया है–

भहरात अहरात दावानल आयौ।
घेरि चहुँ ओर, करि सोर, अंदोर बन, धरनि आकास चहुँ पास छायौ।
बरत बन बाँस, थरहरत कुस-काँस, जरि उड़त है भाँस अति अति प्रबल धायौ।
झपटि झपट लपट, फूल-फल चट चटकि, फरत लट लटकि द्रुम-द्रुम नवायौ।
अति अगिनि झार, भंभार धुंधार करि, उचरि अंगार, झंझार छायौ।
बरत बन पात, महरात झहरात, अररात तरु महा धरनि गिरायौ।

सूरदास जी ने वातावरण निर्माण तथा पृष्ठभूमि के रूप में भी प्रकृति का पर्याप्त चित्रण किया है। वस्तुतः जब किसी काव्य में प्रकृति का इस प्रकार से वर्णन किया जाए कि वह काव्य में अभिव्यक्त मनोभावों की पृष्ठभूमि बन जाए, तब उसे 'पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति चित्रण' कहा जाता है। सूरदास जी ने अपने काव्य में पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का चित्रण दो प्रकार से किया है। जहाँ पर भी कवि ने श्रीकृष्ण व गोपियों, राधा के साथ संयोगावस्था का चित्रण किया है, वहाँ उन्होंने प्रकृति के उल्लासपूर्ण तथा सुखद रूप का चित्रण किया है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सूरदास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर– मध्यकालीन सगुण भक्तिधारा के अंतर्गत कृष्णभक्त कवियों में सूरदास का स्थान सबसे ऊपर है। सूरदास ने विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण को अपनी भक्ति का आधार बनाकर अपने काव्य की रचना की। उनका जन्म 1478 ई. में तथा देहावसान 1583 ई. में हुआ। उन्होंने श्रीकृष्ण के जिस रूप का, उनकी जिन बाल-सुलभ चेष्टाओं का वर्णन अपनी नेत्रविहीन दृष्टि से किया, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

2. सूरदास के जन्म स्थान पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर– सूरदास के जन्म स्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान सूरदास का जन्म मथुरा और आगरा के बीच स्थित **'रूनकता'** नामक स्थान पर हुआ मानते हैं। दूसरी ओर अनेक विद्वान सूरदास का जन्म स्थान हरियाणा में बल्लभगढ़ के पास स्थित 'सीही' नामक गाँव को मानते हैं।

3. सूरदास के कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर– सूरदास के द्वारा रचित पुस्तकों की संख्या वैसे तो 20 से अधिक मानी जाती है, परंतु उनकी तीन कृतियाँ क्रमशः 'सूरसारावली', 'साहित्य लहरी तथा 'सूरसागर' अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। 'सूरसारावली' को सूरदास विरचित 'सूरसागर' की भूमिका के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसमें कुल 1107 पद माने जाते हैं। 'साहित्य लहरी' में पदों की संख्या 118 है। 'सूरसागर' सूरदास की सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है।

4. सूरदास के काव्य की दो भावगत विशेषताएं लिखिए।

उत्तर– (i) सगुण साकार श्रीकृष्ण की भक्ति,

(ii) वात्सल्य चित्रण।

5. भ्रमरगीत का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– भ्रमरगीत का अर्थ है–भ्रमर का गान अथवा गुंजन। वस्तुतः भ्रमर को संबोधित करके लिखा गया गीत भ्रमरगीत कहलाता है। भ्रमरगीत काव्य परंपरा का आधारभूत ग्रंथ श्रीमद्भागवत है। हिन्दी साहित्य में अनेक कवियों ने भ्रमरगीत लिखे हैं। इनमें सूरसागर में संकलित सूरदास का भ्रमरगीत हिन्दी साहित्य की अन्यतम निधि है।

6. सूरदास के भ्रमरगीत की दो विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर– (i) प्रेममार्ग की उत्कृष्टता का वर्णन,

(ii) गोपियों की वाग्वैदग्धता।

7. सूरदास के वात्सल्य वर्णन की दो विशेषताएं बताइए।

उत्तर– (i) बालकृष्ण के रूप-सौंदर्य का वर्णन,

(ii) बाल मनोभावों व बाल अंतःप्रवृत्तियों का वर्णन।

8. सूरदास की भक्ति-भावना की दो विशेषताएं बताइए।

उत्तर– (i) दास्य भाव की भक्ति का वर्णन,

(ii) माधुर्य भाव की भक्ति का वर्णन।

9. 'सूरसागर सार सटीक' का संपादन किसने किया है?

उत्तर– डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने।

10. 'सूरसागर सार सटीक' में 'सूरसागर' के कितने पद संकलित हैं?

उत्तर– 831 पद।

11. सूरदास का काव्य किस भाषा में रचित है?

उत्तर– सूरदास का काव्य ब्रज भाषा में रचित है।

12. सूरदास की मृत्यु किस स्थान पर हुई थी?

उत्तर– सूरदास की मृत्यु पारसौली नामक स्थान पर हुई थी।

13. सूरदास के आराध्य देव कौन हैं?

उत्तर– सूरदास के आराध्य देव श्रीकृष्ण हैं।

14. सूरदास ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण को किस प्रकार का पुरुषोत्तम बताया है?

उत्तर– लीला पुरुषोत्तम।

15. "सूर वात्सल्य का कोना-कोना झाँक आये हैं।"–ये शब्द किसने कहे हैं?

उत्तर– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने।

16. सूरदास के गुरु कौन थे?

उत्तर– वल्लभाचार्य।

17. 'पुष्टिमार्ग का जहाज' किस कवि को कहा गया है?

उत्तर– सूरदास को।

18. 'पुष्टिमार्ग' के प्रवर्तक कौन थे?

उत्तर– वल्लभाचार्य।

19. अष्टछाप के किन्हीं दो कवियों के नाम लिखो।

उत्तर– सूरदास तथा नन्ददास।

20. 'सूरसागर' का उपजीव्य ग्रंथ कौन-सा है?

उत्तर– श्रीमद्भागवत।

21. वल्लभाचार्य अपने शिष्य सूरदास को किस नाम से पुकारते थे?

उत्तर– सागर।

22. 'सूरसागर' का कौन-सा स्कन्ध सबसे अधिक पदों से युक्त है?

उत्तर– दसवाँ स्कन्ध।

23. श्रीकृष्ण के प्रेम के लिए गोपी ने क्या छोड़ दिया?

उत्तर– श्रीकृष्ण के प्रेम के लिए गोपी ने अपनी जाति को छोड़ दिया।

24. वल्लभ संप्रदाय को 'अष्टछाप' क्यों कहा जाता है?

उत्तर– क्योंकि इसके अंतर्गत काव्य रचना करने वाले कवियों की संख्या आठ थी।

25. अष्टछाप की स्थापना किसने की?

उत्तर– वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने।

26. वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित दार्शनिक मत क्या कहलाता है?

उत्तर– शुद्धाद्वैतवाद।

27. "सूर है के काहे घिघियात हो?" वल्लभाचार्य ने यह कहाँ कहा था?

उत्तर– गऊघाट पर।

28. वल्लभाचार्य के संपर्क में आने के पूर्व सूर किस प्रकार के पद रचा करते थे?

उत्तर– दैन्य भाव के।

29. पुष्टिमार्ग के अनुसार जीव कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर– तीन प्रकार के–पुष्टि जीव, मर्यादा जीव, प्रवाह जीव।

30. सूर साहित्य में किस रस का सर्वाधिक वर्णन हुआ है?

उत्तर– वात्सल्य रस का।

31. 'सूरसागर' में वात्सल्य रस का आलम्बन कौन है?

उत्तर– श्रीकृष्ण।

32. 'भ्रमरगीत' में गोपियाँ किसके माध्यम से उद्धव पर व्यंग्य करती हैं?

उत्तर– भ्रमर के माध्यम से।

33. 'भ्रमरगीत' में गोपियों के तर्कों के सामने कौन हार मान लेता है?

उत्तर– उद्धव।

34. उद्धव गोपियों को कौन-सा पाठ पढ़ाना चाहता था?

उत्तर– योग-साधना का।

35. गोपियाँ किस प्रकार की भक्ति की पक्षपाती हैं?

उत्तर– सगुण ईश्वर की भक्ति की।

36. उपँग-सुत कौन है?

उत्तर– उद्धव।

37. करोड़ों स्वर्ग के सुखों की समानता किससे नहीं की जा सकती है?

उत्तर– श्रीकृष्ण की समीपता के सुख से।

38. गोपियों के हृदय में कौन बसता है?

उत्तर– श्रीकृष्ण।

39. गोपियों के अनुसार दूत किसे कहते हैं?

उत्तर– जो अपने स्वामी की बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहता हो।

40. सूरकाव्य में वात्सल्य रस का आश्रय कौन है?

उत्तर– यशोदा।

41. महाकवि सूरदास किस मनोविज्ञान के पंडित थे?

उत्तर– बाल मनोविज्ञान के।

42. श्रीकृष्ण ने उद्धव को गोपियों के पास क्यों भेजा था?

उत्तर– उसका ज्ञान-गर्व चूर करने व गोपियों के प्रेम की परीक्षा लेने हेतु।

43. मथुरा को 'काजर की कोठरी' क्यों कहा गया है?

उत्तर– क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण वहाँ जाकर गोपियों को भूल गए थे। यह स्थिति काजल की कोठरी में जाकर काले हो जाने वाली कहावत को चरितार्थ करती है।

44. गोपियों में सबसे अधिक करुण दशा किसकी है?

उत्तर– राधा की।

45. सूरकाव्य में किस क्षेत्र की लोक संस्कृति का चित्रण हुआ है?

उत्तर– ब्रज क्षेत्र की।

46. सूर के भ्रमरगीत में किस रस की सर्वाधिक अभिव्यंजना हुई है?

उत्तर– वियोग शृंगार रस की।

47. वियोग शृंगार रस का (भ्रमरगीत में) आलम्बन कौन है?

उत्तर– श्रीकृष्ण।

48. "सूर ही वात्सल्य है, वात्सल्य ही सूर है।" किसने कहा है?

उत्तर– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने।

49. सूर के किस काव्यांश में सर्वाधिक वाग्वैदग्ध्यता है?

उत्तर– 'भ्रमरगीत' में।

50. 'भ्रमरगीत' में मूली के पत्ते किसे कहा गया है?

उत्तर– योग साधना को।

51. पुष्टिमार्ग में पुष्टि का अर्थ है?

उत्तर– भगवद् अनुग्रह।

52. 'सूरसागर' का दसवाँ स्कन्ध किस शीर्षक से अभिहित किया गया है?

उत्तर– 'योग साधना' शीर्षक से।

53. उद्धव को अपने किस ज्ञान पर गर्व था?

उत्तर– निर्गुण ईश्वर और योग-साधना के ज्ञान पर।

54. सूरदास की नवधा भक्ति का मूल स्रोत क्या है?

उत्तर– श्रीमद्भागवत।

55. 'सूरसागर' प्रबन्ध काव्य है या मुक्तक?

उत्तर– मुक्तक।

56. सूरदास किस भक्तिधारा के कवि थे?

उत्तर– ईश्वर की सगुण भक्तिधारा के।

57. 'सूरसागर' में गोपियाँ दार्शनिक दृष्टि से किसकी प्रतीक मानी गई हैं?

उत्तर– जीव की।

58. सूरदास ने दार्शनिक आधार पर कृष्ण को किसका प्रतीक माना है?

उत्तर– ब्रह्म का।

59. 'भ्रमरगीत' में मथुरा की कौन-सी नारी गोपियों के व्यंग्यों का माध्यम बनी है?

उत्तर– कुब्जा।

60. 'सूरसागर' के अनुसार ब्रज के लोगों का मुख्य कार्य क्या था?

उत्तर– कृषि व गौ-पालन।

61. 'अष्टछाप' की स्थापना कब की गई थी?

उत्तर– संवत् 1602 को।

62. श्रीकृष्ण के प्रति सूरदास की भक्ति-भावना किस प्रकार की थी?

उत्तर– सरल भाव की।

63. 'सूरसागर' के अनुसार ब्रज के वासी किससे डरते थे?

उत्तर– कंस से।

64. किस विद्वान ने सूरदास को सनेत्र माना है?

उत्तर– श्रीकृष्ण पच्चुमनि ने।

65. पाठ्यक्रम में निर्धारित 'उद्धव संदेश' में श्रीकृष्ण के सखा का क्या नाम है?

उत्तर– उद्धव।

66. दृष्टिकूट पदों की रचना करना कैसा कार्य माना गया है?

उत्तर– असाधारण कार्य।

67. सूरकाव्य में ब्रह्म से जीव का कैसा नाता माना गया है?

उत्तर– प्रेम का।

68. श्री कृष्ण को मथुरा कौन ले गया था?

उत्तर– अक्रूर।

69. 'सूरसागर' का कौन-सा स्कन्ध राम भक्ति से सम्बन्धित है?

उत्तर– नवम् स्कन्ध।

70. सूरदास की प्रामाणिक रचनाओं की संख्या कितनी है?

उत्तर– तीन।

◆◆◆

3.1

रीतिकालीन हिंदी कविता : बिहारी

व्याख्या भाग

1 **मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।**
जा तन की झाईं परैं, स्यामु हरित-दुति होई॥

शब्दार्थ–भव बाधा = सांसारिक कष्ट, मुसीबतें। **हरौ** = दूर करो। **नागरि** = चतुर स्त्री। **जा** = जिस। **तन** = शरीर। **झाईं** = परछाई। **हरित** = हरी, प्रसन्न। **दुति** = चमक, कान्ति।

प्रसंग–प्रस्तुत दोहा हमारे हिन्दी पाठ्य पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल और आधुनिक काल)'** में संकलित **'बिहारी के दोहों'** से अवतरित है। मूलतः यह दोहा बिहारीलाल के एकमात्र ग्रंथ **'बिहारी सतसई'** में संकलित है। यह दोहा 'बिहारी सतसई' में मंगलाचरण के रूप में प्रयुक्त है। यहाँ कवि ने राधा के प्रति अपनी भक्ति-भावना को प्रकट किया है। इस दोहे के अनेक अर्थ हो सकते हैं।

व्याख्या–1. कवि कहता है कि हे चतुर राधा! मेरी सारी सांसारिक बाधाओं को दूर करो, क्योंकि आप अत्यधिक चतुर हैं तथा आपके शरीर की परछाई पड़ने पर कृष्ण प्रसन्नता से हरे-भरे अर्थात् आनन्दित हो उठते हैं।

2. कवि कहता है कि हे राधा जी! मेरे सांसारिक कष्टों को दूर करो। आपके सोने जैसे शरीर की उज्ज्वल छाया जब कृष्ण पर पड़ती है तो वे हरे-भरे दिखाई देते हैं। यहाँ कवि ने स्पष्ट किया है कि राधा के शरीर का रंग गोरा और कृष्ण के शरीर का रंग साँवला है। इसलिए दोनों रंगों के मिलने से हरे रंग का निर्माण हुआ है।

3. कवि कहता है कि हे राधा! तुम मेरी सभी सांसारिक बाधाओं को दूर करो, क्योंकि तुम्हारी झलक मात्र से ही कृष्ण की सारी शोभा नष्ट हो जाती है। भाव यह है कि तुम्हारे सौंदर्य को देखकर कृष्ण निष्तेज हो जाते हैं।

4. कवि राधा जी की वन्दना करते हुए कहता है कि चतुर राधा, मुझ पर दया करो। तुम्हारी परछाई मात्र से ही मेरे दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं और मुझे असीम आनन्द की प्राप्ति होती है।

विशेष–1. कुछ विद्वानों का विचार है कि बिहारी लाल ने राधा-वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षा ली थी, इसलिए यहाँ मंगलाचरण के रूप में राधा जी की वन्दना की है।

2. सरल, सहज तथा सरस ब्रजभाषा का सफल प्रयोग है।

3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. प्रसाद व माधुर्य गुण का प्रयोग हुआ है।

5. अनुप्रास व श्लेष अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

6. दोहा छन्द का सफल प्रयोग हुआ है।

2 **कनक कनक तैं सौ गुनी मादकता अधिकाइ।**
उहिं खाएँ बौराइ, इतिं पाएँ हीं बौराइ ॥

शब्दार्थ–**कनक** = धतूरा, सोना। **मादकता** = नशा। **बौराइ** = पागल हो जाना।

प्रसंग–प्रस्तुत दोहा हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल और आधुनिक काल)'** में संकलित **'बिहारी के दोहों'** से अवतरित है। मूलतः यह दोहा बिहारीलाल के एकमात्र ग्रंथ **'बिहारी सतसई'** में संकलित है। प्रस्तुत दोहे में कवि कहता है कि जिस प्रकार धतूरे का सेवन करने से व्यक्ति पागल-सा हो जाता है, उसी प्रकार धतूरे से कई गुणा मादकता कनक अर्थात् स्वर्ण में होती है, जिसके नशे में उन्मत्त व्यक्ति पागलों-सा व्यवहार करता है।

व्याख्या–कवि कहता है कि सोने में धतूरे से सौ गुणा अधिक नशा होता है। धतूरा खाने से व्यक्ति पागल-सा हो जाता है। लेकिन नशा उतरने पर वह फिर से सामान्य व्यक्तियों की तरह व्यवहार करने लगता है। लेकिन जिस व्यक्ति को सोना मिल जाए अर्थात् जिसे अधिक धन-सम्पत्ति प्राप्त हो जाए वह तो धन के नशे में इतना उन्मत्त हो जाता है कि उसकी दृष्टि में उचित-अनुचित का कोई भेद ही नहीं रहता। इसीलिए कवि ने यहाँ सोने अर्थात् धन-सम्पत्ति के नशे को धतूरे के नशे से सौ गुणा ज्यादा बताया है।

विशेष–1. यहाँ कवि ने धन-सम्पत्ति से उत्पन्न अभिमान आदि की भर्त्सना की है।

2. सरल, सहज तथा सरस ब्रजभाषा का सफल प्रयोग है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है
5. यमक, व्यतिरेक तथा काव्यलिंग आदि अलंकारों का सुन्दर एवं स्वाभाविक प्रयोग है।
6. दोहा छन्द का सफल प्रयोग हुआ है।

3 **थोरैं ही गुण्न रीझते, बिसराई वह बानि।**
तुमहूँ, कान्ह, मनौ भए आज काल्हि के दानि।।

शब्दार्थ–**थोरैं** = कम, थोड़े। **रीझते** = प्रसन्न हुए। **बिसराई** = भुलाना, छोड़ देना। **बानि** = आदत। **आज काल्हि के** = आजकल के। **दानि** = दानी। **भए** = हो गए।

प्रसंग–प्रस्तुत पद हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल और आधुनिककाल)'** में संकलित **'बिहारी के दोहों'** से अवतरित है। मूलतः यह दोहा बिहारीलाल के एकमात्र ग्रंथ **'बिहारी सतसई'** में संकलित है। इस दोहे में कवि ने ईश्वर को उपालंभ देते हुए अपने समय के दानियों पर व्यंग्य किया है।

व्याख्या–अपने प्रभु को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है कि हे प्रभु! आजकल आप भी बिल्कुल बदल गये हैं क्योंकि पहले तो आप अपने भक्तों के थोड़े-से गुणों पर रीझ जाते थे अर्थात् प्रसन्न हो जाते थे। लगता है कि आपने अपनी भक्त-वत्सलता की आदत का त्याग कर दिया है। तत्कालीन दानियों पर व्यंग्य बाण कसता हुआ कवि कहता है हे प्रभु! आपका स्वभाव तो आजकल के दानियों की भाँति हो गया है जो कि गुण ग्राहक नहीं रहे। वे शीघ्रता से अब किसी पर प्रसन्न नहीं होते।

विशेष–1. प्रभु को उलाहना देते हुए कविवर बिहारी ने प्रभु की तुलना तत्कालीन दानियों से की है जो कि आसानी से गुणी व्यक्ति को देखकर प्रसन्न नहीं होते थे। कवि की मान्यता है कि प्रभु को भी जमाने की हवा लग गई हैं

2. सरल, सहज एवं भावानुकूल ब्रजभाषा का प्रयोग है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग है।
5. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
6. दोहा छंद का सफल प्रयोग हुआ है।

4 **कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।**
भरे भौन में करत हैं, नैननु हीं सौं बात।।

शब्दार्थ : **नटत** = मना करना, इंकार करना। **रीझत** = प्रसन्न होना, मुग्ध होना। **खिझत** = चिढ़ाना, गुस्सा होना। **खिलत** = प्रसन्न होना। **लजियात** = शर्माना। **भौन** = भवन।

प्रसंग–प्रस्तुत दोहा हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल और आधुनिक काल)'** में संकलित **'बिहारी के दोहों'** से अवतरित है। मूलतः यह दोहा बिहारी के एकमात्र ग्रंथ **'बिहारी सतसई'** में संकलित है। यहाँ कवि ने नायक-नायिका के आँखों-ही-आँखों में होने वाले वार्तालाप का बड़ा ही मनोहर वर्णन किया है।

व्याख्या–कवि कहता है कि नायक आँखों द्वारा नायिका को संकेत करके कुछ कहता है। नायिका उसके संकेत को समझकर इंकार कर देती है। उसका आँखों द्वारा इंकार करने का ढंग इतना सरस और सुन्दर है कि उसके इशारे पर नायक मंत्र-मुग्ध हो जाता है। नायक के इस व्यवहार पर नायिका नायक से नाराज हो जाती है। उसका यह गुस्सा नकली है। क्योंकि जैसे ही पुनः दोनों की आँखें आपस में टकराती हैं तो दोनों प्रसन्नता के कारण खिल उठते हैं और शरमा जाते हैं। कवि कहता है कि इस प्रकार भीड़-भरे घर में नायक-नायिका आँखों ही आँखों में बातें कर रहे हैं।

विशेष–1. नायक और नायिका के हाव-भावों का कवि ने बड़ा ही सुन्दर और हृदयग्राही चित्रण किया है।

2. सरल, सहज एवं भावानुकूल ब्रजभाषा का प्रयोग है।
3. तत्सम एवं तद्भव शब्दावली का प्रयोग है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. दीपक, विभावना और अनुप्रास अलंकारों का प्रयोग है।
6. दोहा छंद का सफल प्रयोग हुआ है।

◆◆◆

आलोचनात्मक प्रश्न

(क) बिहारी : साहित्यिक परिचय

1. बिहारी का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए उनकी काव्यगत विशेषताएँ बताइए।

अथवा

बिहारीलाल का साहित्यिक परिचय लिखिए।

अथवा

बिहारीलाल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–**बिहारीलाल का जीवन-परिचय (व्यक्तित्व)**–रीतिकालीन काव्यधारा की हिन्दी काव्य में एक विशिष्ट परंपरा है। लगभग 200 वर्षों तक फैली इस काव्यधारा में अगणित कवियों ने अपने काव्य से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। परंतु इन तमाम कवियों में केवल रीतिकाल ही नहीं अपितु संपूर्ण हिन्दी साहित्य के सर्वप्रसिद्ध कवियों में कविवर बिहारी का नाम बड़े आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है। ये अपनी एकमात्र कृति 'बिहारी सतसई' के कारण ही विश्व-विख्यात कवियों में गण्य हैं। कहा जाता है कि तुलसीदास जी के 'रामचरितमानस' के बाद यदि किसी ग्रंथ पर सर्वाधिक टीकाएँ लिखी गई हैं **तो वह** कवि बिहारी की 'बिहारी सतसई' ही है।

प्राचीन भारतीय सन्त-कवियों की भाँति रीतिकालीन कविवर बिहारी का जन्म स्थान, जन्मतिथि, पिता का नाम आदि प्रश्न उलझे हुए हैं। इस विषय में हमें प्रायः कल्पनाओं और अनुमानों का सहारा लेना पड़ता है। एक विवरण के अनुसार बिहारी का जन्म ग्वालियर में हुआ, बचपन बुंदेलखण्ड में बीता और युवावस्था में वे अपनी ससुराल मथुरा आकर बस गए। इस सम्बन्ध में एक दोहा मिलता है जो स्वयं बिहारी का लिखा हुआ बताया जाता है–

''जनम ग्वालियर जानियै, खण्ड बुंदेलै बाल।
तरुनाई आई सुघर मथुरा बसि ससुराल॥''

इनकी जन्मतिथि के विषय में भी एक दोहा प्रचलित है–

"संक्त जुग सर रस सहित भूमि रीति गिनि लीन।
कातिक सुदि बुध अष्टमी, जनम हमें विधि दीन॥"

इस दोहे का अर्थ 'अकाना वामतो गतिः' के आधार पर ऐसा होगा–जुग=2, सर=5, रस=6, भूमि=1, अर्थात् 1652 वि.सं.। दोहे की द्वितीय पंक्ति स्पष्ट ही है। अतः बिहारी का जन्म कार्तिक सुदी अष्टमी, दिन बुधवार, विक्रमी सम्वत् 1652 (1595 ई.) को हुआ। प्रायः सभी विद्वानों ने इसी तिथि को प्रामाणिक तिथि के रूप में स्वीकार कर लिया है।

प्राप्त उल्लेखों के अनुसार इनके पिता का नाम केशव या केशवराय मिलता है तथा इनकी जाति ब्राह्मण थी–

प्रगट भए द्विजराजकुल, सुबस बसे ब्रज आय।
मेरो हरौ कलेस सब केसौ केसौराय॥

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं–

1. बिहारी ब्राह्मण वंश में विक्रमी सम्वत् 1652 को कार्तिक सुदी अष्टमी के दिन ग्वालियर में उत्पन्न हुए थे।
2. इनके पिता का नाम केशवराय तथा गुरु का नाम केशव था।
3. बिहारी के इष्टदेव श्री कृष्ण थे।
4. इनकी बाल्यावस्था बुंदेलखण्ड में बीती।
5. युवावस्था में ये अपनी ससुराल मथुरा में रहे।

बिहारी के एक भाई तथा एक बहन थी। इसी बहन से प्रसिद्ध कवि कुलपति मिश्र का जन्म हुआ था। कविवर बिहारी के पिता इन्हें आठ वर्ष की आयु में ग्वालियर से ओरछा (रियासत) ले गए। वहाँ महाकवि केशवदास से बिहारी का सम्पर्क स्थापित हुआ। फलस्वरूप केशवदास के सान्निध्य में उन्होंने काव्य ग्रंथों का अध्ययन किया और काव्याभ्यास किया। ओरछा के समीपवर्ती गुढ़ा ग्राम में निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुभवी महात्मा नरहरिदास रहते थे। बिहारी के पिता इनके शिष्य थे। बिहारी ने इनसे ही संस्कृत-धर्मशास्त्र एवं प्राकृत का अध्ययन किया। सम्वत् 1664 में महाकवि केशवदास का देहान्त हो गया। तभी बिहारी के पिता केशवराय बिहारी तथा अपने अन्य बच्चों सहित वृन्दावन आ गए।

वृन्दावन में बिहारी ने साहित्य के साथ संगीत का भी अभ्यास किया। उसी समय इनका विवाह मथुरा के एक चतुर्वेदी ब्राह्मण परिवार में हुआ। विवाह के बाद वह अपनी ससुराल में ही रहने लगे। सम्वत् 1675 में शाहजहाँ वृन्दावन आया और स्वामी हरिहरदास जी के स्थान का दर्शन करने के निमित्त उनके घर गया। वहाँ महात्मा नरहरिदास जी ने बिहारी की काव्य निपुणता का बादशाह के समक्ष वर्णन किया जिसे सुनकर शाहजहाँ इन्हें अपने साथ आगरा ले गया। आगरा में इन्होंने फारसी की शायरी का अध्ययन किया। यहीं इनकी भेंट अब्दुर्रहीम खानखाना से हुई। कहते हैं, खानखाना की प्रशंसा में बिहारी ने कुछ दोहे भी लिखे जिनसे प्रसन्न होकर रहीम ने इन्हें प्रभूत धन पुरस्कार में दिया।

शाहजहाँ ने पुत्र जन्मोत्सव में अनेक राजा-महाराजाओं को आमन्त्रित किया। बिहारी ने इस अवसर पर अपनी काव्य कला से अनेक राजाओं को प्रभावित किया। फलस्वरूप राजाओं ने कवि बिहारी की वार्षिक वृत्ति बाँध दी। वृत्ति प्राप्त करने के लिए एक बार बिहारी आमेर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उनको ज्ञात हुआ कि राजा जयसिंह अपनी नवोढ़ा रानी के सौन्दर्य पर रीझ कर राजकाज छोड़ बैठे हैं और महलों में ही पड़े रहते हैं। किसी में भी साहस नहीं था कि महाराज से कुछ कह सके। बिहारी ने बड़े कौशल से किसी प्रकार यह प्रसिद्ध दोहा महाराज तक पहुँचा ही दिया–

नहिं परागु नहिं मधुर मधु नहिं बिकासु इहिं काल।
अली कली ही सौं बँध्यो, आगै कौन हवाल॥

इस दोहे ने राजा पर रामबाण जैसा प्रभाव छोड़ा। वे पुनः राजकाज में लग गए और बिहारी को उनकी इस निपुणता के लिए प्रचुर धन दिया तथा भविष्य में भी ऐसे दोहों पर पुरस्कार का आश्वासन दिया। इसके पश्चात् कविवर बिहारी आमेर के राजकवि के रूप में रहने लगे।

किंवदन्ती है कि कविवर बिहारी की मृत्यु ब्रज में हुई, किन्तु इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। सम्वत् 1720 (1663 ई.) के आसपास ये परलोकवासी हुए।

बिहारी का कृतित्व–बिहारी ने अपने जीवन काल में केवल एक ही ग्रन्थ रचा, जिसका नाम 'बिहारी-सतसई' है। इसमें 713 दोहे हैं। इनमें से अधिकांश दोहे शृंगार रस के हैं। कुछ दोहे भक्ति से सम्बन्धित हैं। शेष दोहे संगीत, नीति, प्रकृति, वैद्यक, ज्योतिष आदि से सम्बंधित हैं। कविवर बिहारी ने स्वयं स्वीकार किया है–

''करी बिहारी सतसई भरी अनेक स्वाद।''

'बिहारी सतसई' के अध्ययन के आधार पर कविवर बिहारी के साहित्य की प्रमुख काव्यगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. शृंगार वर्णन–रीतिकालीन वातावरण में विलासिता की प्रवृत्ति अत्यधिक दिखाई पड़ती है जिसके कारण शृंगारिकता इस युग में खूब फली-फूली। बिहारी ने लगभग 600 दोहे शृंगार के रचे हैं। संयोग शृंगार की सम्भवतः कोई दशा, भाव, चेष्टा या मुद्रा ऐसी नहीं जिसका वर्णन बिहारी ने न किया हो। प्रेमालाप की इच्छुक नायिका की चंचल चेष्टाओं का कितना जीवन्त वर्णन निम्नलिखित दोहे में हुआ है–

''बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौहँ करैं भौहँनु हँसै, दैन कहैं नटि जाइ॥''

बिहारी का मन संयोग शृंगार में जितना रमा है उतना वियोग पक्ष में नहीं। बिहारी का वियोग वर्णन सहज, स्वाभाविक न होकर कृत्रिम व ऊहात्मक है। यही कारण है कि उन्होंने विरहिणी के विरह ताप का इतना अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है कि पढ़कर हँसी आती है। शीतकाल में भी उसकी सखियाँ गीले वस्त्र लपेट कर उसके पास जाती हैं, कहीं उसके विरह-ताप से झुलस न जाएँ।

2. भक्ति-भावना–शृंगार के बाद 'बिहारी-सतसई' में भक्ति-भावना को स्थान मिला है। बिहारी ने माधुर्य, सख्य एवं विनय भाव की भक्ति को व्यक्त किया है। कविवर बिहारी ने राधा-कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति भावना व्यक्त की है। उनके रूप-सौन्दर्य का बिहारी ने अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। कृष्ण के मनोहारी रूप को वे अपने हृदय में बसाना चाहते हैं–

सीस-मुकुट, कटि-काछनी, कर-मुरली, उर-माल।
इहिं बानक मो मन सदा बसौ, बिहारीलाल॥

बिहारी ने न केवल अपने आराध्य श्रीकृष्ण को महिमामंडित किया है, वरन् राधा के प्रति भी अपनी श्रद्धा और विश्वास व्यक्त किया है–

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परैं, स्यामु हरित-दुति होइ॥

3. नीति एवं उपदेश–सतसई में यथास्थान नीतिपरक दोहे भी बहुतायत में मिलते हैं। इनके अन्तर्गत उन्होंने सांसारिक विषयों पर लोक व्यवहार का ज्ञान दिया है। प्रस्तुत दोहे में कवि ने बताया है कि नाम बड़ा होने से कुछ नहीं होता, कार्य भी बड़ा होना चाहिए–

''बड़े न हूजै गुननु बिनु बिरद-बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ़यौ न जाइ॥''

4. मुक्तक शैली–रीतिकालीन दरबारी वातावरण में मुक्तक शैली का उत्कृष्ट रूप उभर कर सामने आता है। प्रबंधकाव्य
में निरन्तर एकरसता की आवश्यकता होती है जो उस समय कवि और श्रोता दोनों में न थी, अतः इस युग में मुक्तक शैली का
अत्यधिक प्रयोग हुआ। कविवर बिहारी ने 48 मात्राओं वाले दोहा जैसे छन्द में अनेक विस्तृत एवं गम्भीर भावों को पिरोया है।
वास्तव में वे 'गागर में सागर' भरने वाले जादूगर थे। द्रष्टव्य है–

''कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं, नैननु हीं सौं बात॥''

5. भाषा–बिहारी भाषा के प्रति अत्यन्त सजग कलाकार थे। उन्होंने ब्रजभाषा का भावानुरूप प्रयोग किया है। शब्दों का
चयन भी बड़ी सूझ-बूझ से किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में–**''बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है,**
वाक्य-रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है।''

6. अलंकार योजना–रीतिकालीन काव्य में अलंकारों की प्रधानता तो सर्वत्र परिलक्षित होती है और इसी कारण मिश्र बन्धुओं
ने इस काल को 'अलंकृत काल' भी कहा है। बिहारी के काव्य में भी अलंकारों की अधिकता है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

कनक कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाइ।
उहिं खाएँ बौराइ, इहिं पाएँ हीं बौराइ॥
× × × × ×
या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रंग, त्यौं त्यौं उज्जलु होइ॥''

अन्त में यही कहा जा सकता है कि बिहारी रीतिकाल के अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न कवि एवं सफल मुक्तककार हैं। वे शृंगार रस के शिरोमणि कवि हैं। उनका कला-पक्ष भी भाव-पक्ष की भाँति विशेष रूप से सराहनीय है।

◆◆◆

(ख) बिहारी का शृंगार वर्णन

2. प्रमाणित कीजिए कि कवि बिहारी शृंगार रस के एक श्रेष्ठ कवि हैं। **(Imp.)**

अथवा

'बिहारी सतसई' में चित्रित शृंगार वर्णन का विवेचन कीजिए।

उत्तर–बिहारी का शृंगार-वर्णन–शृंगार एक काव्य रस है, जिसे रसराज की संज्ञा दी गई है। शृंगार वर्णन के अंतर्गत नायक अथवा नायिका को आलंबन बनाकर उनके सौंदर्य, उनकी चेष्टाओं, हाव-भावों आदि का वर्णन किया जाता है ताकि आश्रय एवं सहृदय के हृदय में सुप्तावस्था में विद्यमान 'रति' नामक स्थायी भाव जाग्रत होकर शृंगार रस में परिणत हो जाए।

बिहारी शृंगार रस के प्रतिष्ठित व लोकप्रिय कवि हैं। इस युग के प्रत्येक कवि ने नख-शिख सौन्दर्य वर्णन, नायिका भेद और अलंकारों के लक्षण आदि का ही प्रमुख रूप से उल्लेख किया है, पर इन सब पर मांसल शृंगारिकता का आवरण चढ़ा हुआ है। इसलिए शृंगार ही इस काल का प्रमुख प्रतिपाद्य है। **डॉ. नगेन्द्र** के शब्दों में, **''साँचा चाहे जैसा भी रहा हो, उसमें ढली शृंगारिकता ही।''**

शृंगार वर्णन के सन्दर्भ में जहाँ तक बिहारी का प्रश्न है, तो इस विषय में **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** का यह मत द्रष्टव्य है–**''शृंगार रस के ग्रन्थों में जितनी ख्याति और जितना मान बिहारी सतसई का हुआ है, उतना और किसी का नहीं।''** **डॉ. विजयेन्द्र स्नातक** ने भी बिहारी के विषय में कहा है–**''शृंगार भावना को काव्य के चरमोत्कर्ष तक पहुँचाने की अभिलाषा से बिहारी ने सतसई की रचना की और उसमें सफलता पाई।''**

काव्य में रस का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रस ही काव्य की आत्मा है और रसों में शृंगार रस को श्रेष्ठ माना जाता है। इसे 'रसराज' भी कहा जाता है। शृंगार के दो पक्ष हैं–संयोग और वियोग शृंगार। नीचे बिहारी के काव्य में शृंगार वर्णन का विवेचन इन्हीं दो बिन्दुओं के अंतर्गत किया जा रहा है–

(क) संयोग शृंगार–बिहारी का मन संयोग शृंगार में अधिक रमा है। संयोग काल की ऐसी कोई स्थिति, भाव, दशा नहीं, जो बिहारी की दृष्टि से बची रही हो। उन्होंने पूरे मनोयोग से संयोग शृंगार का वर्णन किया है। सामान्यतः संयोग के चार अंग किए जा सकते हैं–**1.** रूप वर्णन, **2.** प्रेम-व्यापार, **3,** नायिका भेदकथन, **4.** हाव-अनुभाव आदि।

1. रूप वर्णन–नायक या नायिका के हृदय में प्रेम का उदय रूप दर्शन से होता है। 'बिहारी-सतसई' में रूप-सौन्दर्य का सुन्दर चित्रण हुआ है। बिहारी ने नायिका के सौन्दर्य के अंकन में अपनी शक्ति व क्षमता का भरपूर परिचय दिया है। कहीं-कहीं देह की दीप्ति तथा आभूषणों की चमक का प्रभाव देखते ही बनता है–

''अंग-अंग नग जगमगात दीप सिखा-सी देह।
दिया बढ़ाएँ हूँ रहै बड़ौ उज्यारौ गेह॥''

बिहारी ने नायिका के समस्त अंगों में–नेत्र, मुख, भृकुटि, कपोल, अधर, दाँत, उरोज, त्रिबली आदि के अनेक मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किए हैं। नेत्रों का एक चित्र द्रष्टव्य है–

''सायक-सम मायक नयन, रँगे त्रिबिध रँग गात।
झखौ बिलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात।''

2. प्रेम-व्यापार–बिहारी ने संयोग शृंगार के अन्तर्गत नायिका की आकर्षक चेष्टाओं व भाव-भंगिमाओं का वर्णन ब सूक्ष्मता से किया है। प्रेम में मस्त बिहारी के नायक व नायिका कभी आँख-मिचौली का खेल खेलते हैं, तो कभी जलक्रीड़ा क हैं। कभी एक-दूसरे की आँखों में झाँकते हैं, तो कभी हास-परिहास में लीन हो जाते हैं। निम्नलिखित दोहों में प्रेम-चेष्टओं सजीव अंकन द्रष्टव्य है–

"छला छबीले लाल को नवल नेह लहि नारि।

चूँबति, चाहति, लाइ उर पहिरति, धरति उतारी॥"

नायिका अपने प्रियतम के उपहार–छल्ले को पाकर कितनी प्रसन्न है, इसका जीवन्त वर्णन उक्त दोहे में हुआ है। इ प्रकार प्रेमालाप की इच्छुक नायिका अपने नायक की मुरली को छिपा लेती है–

"बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाई।

सौंह करैं भौहँनु हसैं, दैन कहैं नटि जाइ॥"

3. नायिका भेद कथन–नायिका भेद कथन द्वारा शृंगार के संयोग पक्ष के उद्‌घाटन एवं पोषण में अधिक सहायता मिल है। नायिका भेद कभी अवस्था के आधार पर, कभी रुचि के आधार पर, कभी लज्जा के आधार पर तो कभी नायक से सम्ब के आधार पर किए जाते हैं। प्रेम के आधार पर नायिकाओं के तीन भेद किए जाते हैं–मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा।

मुग्धा–जिस नायिका में लज्जा अधिक होती है–

"औरे-ओप कनीनिकनु गनी घनी-सिरताज।

मनीं धनीं के नेह की बनीं छनीं पट लाज॥"

मध्या–जिस नायिका में लज्जा और काम समान रूप से विद्यमान हों–

"पति रति की बतियाँ कहीं, सखी लखी मुसकाई

कै कै सबै टलाटलीं, अलीं चलीं सुखु पाइ॥

प्रौढ़ा–जिस नायिका में लज्जा न्यून होती है और काम अत्यधिक होता है। यह रति कला में भी दक्ष होती है–

"बिहँसि बुलाइ, बिलोकि उत प्रौढ़ तिया रस घूमि।

पुलकि पसीजति, पूत को पिय-चूम्यौ मुँह चूमि॥"

4. हाव-अनुभाव आदि–शृंगार रस के संयोग पक्ष में हावों और अनुभावों का भी विशेष महत्त्व होता है। आश्रयगत आंगि चेष्टाएँ अनुभाव हैं और आलम्बन की काममूलक आंगिक चेष्टाएं हाव कहलाती हैं। नायिका और नायक के हाव-भावों का सुन्द चित्र द्रष्टव्य है–

"कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।

भरे भौन मैं करत हैं, नैननु हीं सौं बात॥

(ख) वियोग शृंगार–बिहारी का मन संयोग शृंगार में जितना रमा है, उतना वियोग शृंगार में नहीं। उनका विरह वर्णन सह स्वाभाविक न होकर कृत्रिम एवं ऊहात्मक है। उसमें सहज संवेदना कम तथा अतिशयोक्ति अधिक है। प्राचीन आचार्यों ने वियो शृंगार के 14 भेद माने हैं जो इस प्रकार हैं–मान, प्रवास, विरह (करुण), पूर्व राग, गुण कथन, उद्वेग, अभिलाषा, स्मृति, चिन्त प्रलाप, जड़ता, उन्माद, व्याधि, मरण। लेकिन आचार्य विश्वनाथ ने वियोग शृंगार के चार भेदों का उल्लेख किया है–

1. पूर्व राग, 2. मान, 3, प्रवास तथा 4. करुण (विरह)। अधिकांश आचार्य ये चार भेद ही मानते हैं। यह वर्गीकर सर्वाधिक मान्य और प्रचलित है। 'बिहारी सतसई' में इन सभी भेदों का वर्णन हुआ है।

1. पूर्व राग–किसी नायक अथवा नायिका के शील और सौन्दर्य का वर्णन सुनकर एक-दूसरे के हृदय में प्रेम की जो भाव जाग्रत होती है, उसे पूर्व राग कहते हैं।

नायिका की सखी नायक के मन में नायिका के प्रति प्रेम भाव जाग्रत करने हेतु नायिका के सुन्दर नेत्रों का वर्णन कर रही है

बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।

हरिनी के नैनानु तैं, हरि, नीके ए नैन।

2. मान–नायक और नायिका का संयोग हो जाने पर नायक से अपराध या धृष्टता हो जाए तो जो प्रेमयुक्त कोप हो जाता है, उसे मान कहते हैं। मान के दो भेद हैं–

(i) प्रणयमान–प्रणयमान के अन्तर्गत प्रेमी और प्रेमिका के बीच रुष्ट होने का भाव पाया जाता है–

"कहा लेहुगे खेल पैं तजौ अटपटी बात।
नैंक हँसौंहीं हैं भई भौंहे सौंहें खात॥"

(ii) ईर्ष्यामान–नायक को जब किसी अन्य स्त्री से प्रेम हो जाता है तो नायिका में जो रोष उत्पन्न होता है, उसे ईर्ष्यामान कहते हैं।

"नख-रेखा सोहैं नई अलसौं हैं सब गात।
सौंहें होत न नैन ए, तुम सौंहें कत खात॥"

3. प्रवास–प्रियतम के विदेश चले जाने पर प्रियतमा के हृदय में जो वियोगजन्य मानसिक वेदना उत्पन्न होती है, उसे प्रवास कहते हैं। बिहारी ने प्रवास विप्रलम्भ का बहुत ही सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। नायिका का पति परदेस में है। वह उसे पत्र लिखना चाहती है, लेकिन लज्जावश कुछ नहीं लिख पाती–

"कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात।
कहिहै सबु तेरौ हियौ मेरे हिय की बात॥"

4. करुण–प्रियतम के वियोग में प्रियतमा के हृदय में उसके मिलन की जो तड़पन उत्पन्न होती है, उसे विरह कहते हैं। यह विरह जब उस स्थिति में पहुँच जाता है जब प्रेमी-प्रेमिका को एक-दूसरे से मिलने की आस ही छूट जाए या उनमें से किसी की मृत्यु हो जाए, तब यह विरह करुणावस्था में पहुँच जाता है। बिहारी द्वारा किसी प्रियतमा का करुण विरह वर्णन अवलोकनीय है–

"कह जु बचन वियोगिनी बिरह बिकल बिललाइ।
किए न का अँसुवा-सहित सुवाति बोल सुनाई॥"

सारांशतः कहा जा सकता है कि बिहारी का संयोग शृंगार और वियोग शृंगार कहीं-कहीं काव्यशास्त्रीय नियमों पर आधारित है। संयोग शृंगार कहीं-कहीं काव्यशास्त्र की परिधि को लाँघकर जीवन और जगत के यथार्थ धरातल पर उतर आया है तो वियोग शृंगार में भी स्वाभाविकता कम तथा चमत्कार अधिक मिलता है। वैसे इसका दोष बिहारी की अपेक्षा तत्कालीन परिस्थितियों को देना अधिक उचित होगा। संक्षेप में, उनका शृंगार वर्णन परम्परागत रीतिबद्ध एवं मांसल है।

◆◆◆

(ग) बिहारी का बहुज्ञत्व

3. बिहारी की बहुज्ञता पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

अथवा

'बिहारी सतसई' के आधार पर सिद्ध कीजिए कि बिहारी मात्र कवि ही नहीं थे, अपितु उन्हें विभिन्न विषयों, शास्त्रों का भी भरपूर ज्ञान था।

उत्तर–बिहारी की बहुज्ञता–कविवर बिहारी को वाङ्मय के विविध रूपों का समुचित ज्ञान था। इसके साथ-साथ उन्होंने लोक-जीवन का भी बड़ी गहराई के साथ अध्ययन किया। वस्तुतः बिहारी एक बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न कवि थे। उनकी सतसई में साहित्य शास्त्र के साथ-साथ अन्य शास्त्रों का ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है। बिहारी का जन्म एक सुशिक्षित परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम केशव राय था, जो एक सफल कवि होने के साथ-साथ एक सफल साहित्यकार भी थे। अपने पिता से ही पुत्र को संस्कार मिले। उन्होंने श्री नरहरि दास के चरणों में बैठकर विविध शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। राजाश्रय प्राप्त होने के कारण बिहारी को राजनीति के अन्तर्गत राजदरबारों का ज्ञान भी प्राप्त हुआ। उनके काव्य में ज्योतिष, गणित, विज्ञान, वैद्यक, धर्म, दर्शन, नीति आदि विषयों का प्रभाव भी स्पष्ट देखा जा सकता है। भले ही विद्यापति, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा, प्रसाद, गुप्त आदि लोगों को विविध विषयों का ज्ञान था, परन्तु हिन्दी साहित्य में बिहारी ही अपनी बहुज्ञता के लिए प्रसिद्ध हैं। **पण्डित अम्बिकादत्त** ने बिहारी की बहुज्ञता के बारे में लिखा है–

विद्या काव्य अनेक विधि पढ़ी परम लघु पाय।
स्वामी की आसीस सों भए, सब पूरन काम।
गान-ताल सब सीखियों जपत रहै हरि नाम।
निज भाषा अरू संस्कृत पढ़ि लीन्ही बहुभांति।

निःसन्देह बिहारी बहुज्ञ होने के साथ-साथ बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कवि भी हैं। निम्नलिखित विशेषताओं के आधार उनकी बहुज्ञता को परखा जा सकता है–

1. साहित्य शास्त्र का ज्ञान–कविवर बिहारी ने किसी लक्ष्य ग्रंथ की रचना नहीं की। परन्तु उनकी सतसई में रस, अलंकार, ध्व रीति, वक्रोक्ति, औचित्य आदि कारकों (तथ्यों) का सम्यक् निरूपण देखा जा सकता है। इससे पता चलता है कि बिहारी ने भार काव्यशास्त्र का गहन अध्ययन किया था। यही नहीं, बिहारी ने सतसई में नायक-नायिका भेद तथा नख-शिख वर्णन आदि अ साहित्यशास्त्र में किया है। उन्होंने अपने प्रत्येक दोहे में काव्य शास्त्र के सिद्धांतों को घटाने का प्रयास किया है–

जुबति जोन्ह मैं मिलि गई नैंक न होति लखाइ।
सौंधे कै डौरे लगी अली चली संग जाइ।। (शुक्लाभिसारिका नायिका का परि

2. गणित शास्त्र का ज्ञान–बिहारी गणित शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने अपने कुछ दोहों में गणित शास्त्र बारीकियों का परिचय भी दिया है–

कहत सबै बैदी दियै, आंकु दस गुनी होतु।
तिय लिलार बैंदी दियै, अगिनितु बढ़त उदोतु॥
कुटिल अलक छुटिपरत मुख बढ़िगी इती उदोतु।
बंक बिहारी देत ज्यौं दाम रुपैया होतु॥

उपर्युक्त दोनों दोहों में गणित संबंधी बातें कही गई हैं। पहली बात तो यह है कि किसी अंक के साथ शून्य लगा देने संख्या दस गुणी हो जाती है। दूसरा यह कि किसी अंक के दायीं ओर बंक लगा देने से रकम का अनेक गुणा पता चलता है इस सन्दर्भ में एक विद्वान ने लिखा भी है–

''गाँव का एक मामूली सा बनिया भी इस बात को जानता है कि रुपया सूचक अंक एक तिरछी पाई खींच कर उसके अग की (बायीं) ओर रखा जाता है और दाम सूचक दायीं ओर; पर उस बेचारे की गणितज्ञता को कोई नहीं मानता, परन्तु बिहारी जिन्होंने दोहे में यह भी नहीं बताया कि बंक दायीं ओर देने से दाम रुपया होता है या बायीं ओर।''

3. दर्शन शास्त्र का ज्ञान–कविवर बिहारी को दर्शनशास्त्र का समुचित ज्ञान था। उन्होंने सतसई के कुछ दोहों में दार्शनि सिद्धांतों का सुन्दर निरूपण किया है। प्रस्तुत सोरठे में कवि प्रतिबिम्बवाद का परिचय देते हुए कहता है–

हौं समुझयौ निरधार यह जगु कांचौ कांचु सौ।
एकै रूप अपार प्रतिबिम्बित लखियतु जहां।।

एक अन्य दोहे में कवि ने प्रमाणवाद की विवेचना की है–

बुधि अनुमान, प्रमाण श्रुति किये नीठि ठहराय।
सूक्षम गति परब्रह्म की अलख लखी नहिं जाय।।

इसी प्रकार कवि ने कुछ दोहों में अद्वैतवादी मान्यता, संसार के सभी पदार्थों में एक तत्त्व होने की प्रधानता तथा संसार के प्रत्येक वस्तु में ब्रह्म की उपस्थिति होने से सम्बन्धित दोहों की रचना की है।

4. भक्ति विषयक ज्ञान–भले ही बिहारी सतसई का प्रमुख प्रतिपाद्य शृंगार है, परन्तु कवि ने यत्र-तत्र भक्ति विषयक दोहे की भी काफी सुन्दर रचना की है। कवि ने कृष्ण के प्रति आस्था रखने वाले, सगुण-निर्गुण में आस्था रखने वाले, बाह्य आडम्बर के निंदक, मोह-माया के निंदक, निष्काम भक्ति युक्त तथा दयनीय तथा आत्मग्लानि युक्त दोहों की रचना की है। भक्ति विषयक दोहों में कवि की आत्मा की निश्छलता स्वाभाविक रूप से देखी जा सकती है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल॥
मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झांई परै, स्याम हरित दुति होई।।

5. राजनीति शास्त्र का ज्ञान–बिहारी ने अपना अधिकांश समय राजाश्रय में व्यतीत किया। अतः राजनीति से सम्बन्धित बारीकियों का उन्हें समुचित ज्ञान था। उन्होंने अपने दोहों में तत्कालीन शासन प्रणाली की बारीकियों पर समुचित प्रकाश डाला है। दोहरे शासन प्रबन्ध की कमजोरियों का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं–

दुसह दुराज प्रजानिकौ, क्यों न बढ़े दुख द्वंद।
अधिक अंधेरौ जग करत, मिलि मावस रवि चंद ॥

इसी प्रकार एक अन्य दोहे में कवि ने विपक्षी राजा के सुदृढ़ किले में सुरंग बनाकर उस पर विजय प्राप्त करने की राजनीतिक चाल का सुन्दर वर्णन किया है–

क्यों हूँ सहबात न लगै, थाके भेद उपाय।
हठ दृढ़ गढ़ गढ़वै सुचि लीजै सुरंग लगाय।

प्राचीनकाल में राजनीति के निम्न अंग बताए गए थे–स्वामी, मंत्री, कोष, मित्र, राष्ट्र, दुर्ग और बल। कविवर बिहारी ने राजनीति शास्त्र के इन अंगों की तुलना नायिका के विभिन्न अंगों से की है–

अपने अंग के जानि कै, जोबन-नृपति प्रवीन।
स्तन, मन, नैन, नितंब कौ, बड़ौ इजाफा कीन।

6. वैद्यक शास्त्र का ज्ञान–कविवर बिहारी को वैद्यक शास्त्र का भी समुचित ज्ञान था। उन्होंने आयुर्वेद शास्त्र के आधार पर भी कुछ दोहों की रचना की है। नाड़ी ज्ञान तथा रोग निदान का कवि को समुचित ज्ञान था।

कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

मैं लखि नारि ज्ञान, करि राख्यौ निरधारू यहै।
वहई रोगु निदान, वहै वैद औषधि बहै ॥

इसी भांति कवि ने विषम बुखार एवं उसके निदान स्वरूप सुदर्शन चूर्ण का उल्लेख किया है–

यह विनसतु नगु राखिकैं जगत बड़ौ जसु लेहु।
जरी विषम जुर ज्याइये, आइ सुदरसन देहु॥

नपुंसकत्व चिकित्सा के लिए पारद भस्म वाला यह दोहा है–

बहु धनु लै अहसानु कै, पारौ देत सराहि।
वैद वधू हंसि भेद सौं रही नाँह मुँह चाहि ॥

7. नीतिशास्त्र का ज्ञान–कविवर बिहारी को नीतिशास्त्र का विशद् ज्ञान था। नीति सदैव भारतीय संस्कृति का मुख्य आधार रही है। इसलिए कवि ने सतसई में जहाँ शृंगार, प्रकृति वर्णन तथा भक्ति आदि पर दोहों की रचना की है, वहीं पर उन्होंने कुछ नीति विषयक दोहे भी लिखे हैं। कुछ उदाहरण देखिए–

नर की अरू नल नीर की गति एकै करि जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊंचौ होइ ॥
बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमानु।
भले भले कहि छोड़िए, खोटे ग्रह जप दानु ॥

8. लोक जीवन का ज्ञान–कविवर बिहारी ने लोक जीवन का भी गहन अध्ययन किया था। उन्होंने अपने दोहों में विभिन्न पर्वों, नाटकीय खेलों, पतंगबाजी, आँख-मिचौली, लट्टू नचाना आदि का भी उल्लेख किया है। यही नहीं, कवि को कृषि विषयक ज्ञान भी काफी था। उन्होंने नगर तथा ग्राम्य जीवन का वर्णन करते हुए अनेक लोक-विश्वासों की चर्चा की है। श्रावण मास के प्रमुख पर्वों एवं तीज का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं–

तीज पख सखियन सजै, भूषण वसन शरीर।
सबै मरगजे मुँह करी, बहै मरगजे चीर॥

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि बिहारी निश्चय ही एक प्रतिभा संपन्न कवि थे और उन्होंने अपनी एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' के माध्यम से विविध विषयों के प्रति अपने ज्ञान का परिचय दिया है। फिर भी कुछ विद्वानों का कहना है कि दो-चार दोहों के आधार पर ही बिहारी को ज्योतिष-गणित का पंडित कहना भ्रामक होगा, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि

बिहारी ने विभिन्न विषयों की जानकारी बड़ी सहज उक्तियों के द्वारा दी है। परंतु इतना निश्चित है कि बिहारी एक बहुश्रुत और बहुपठित कवि थे। वे तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों से पूर्णतः परिचित थे। यही नहीं, वे धार्मिक प्रशासकों और अंधविश्वासों का चित्रण भी करते हैं। विशेषकर बिहारी ने होली, तीज, गणेश पूजा, संक्रांति आदि विभिन्न पर्वों का काफी सजीव वर्णन किया है। इस संदर्भ में डॉ. **राम सागर त्रिपाठी** का कथन उल्लेखनीय है–**''इन दोहों से यह तो सिद्ध नहीं होता कि बिहारी इन विषयों में पूर्ण निष्णात थे और उन्होंने इन विषयों का गंभीर अध्ययन किया था, किंतु इनसे इतना स्पष्ट अवश्य होता है कि बिहारी की रुचि अनेक शास्त्रों में थी और अध्ययनशीलता, जो कि कवि का एक अपेक्षित गुण है, उनमें विद्यमान थी।**

◆◆◆

(घ) बिहारी का नीति काव्य

4. रीतिकालीन कवि बिहारी के नीतिकाव्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–बिहारी का नीति काव्य–बिहारी सतसई में श्रृंगार के अतिरिक्त नीति के दोहे भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। कवि ने अपने नीतिकाव्य के अंतर्गत जीवन एवं जगत से संबंधित अनेक नीतिप्रद तथा शिक्षाप्रद बातें अपने दोहों के माध्यम से कही हैं।

कवि धन की निंदा करते हुए यह सिद्ध करता है कि नीच प्रवृत्ति के मानव के स्वभाव में बदलाव नहीं आ सकता। अन्यत्र कवि ने माला, छापा, तिलक आदि को त्यागने की सलाह दी है। कवि दुष्टों का सम्मान देखकर संसार की उल्टी चाल का वर्णन करता है और कहता है कि यह कितनी विचित्र बात है कि जिससे (व्यक्ति से) बुराई या हानि होने की आशंका होती है, लोग उसी का सम्मान करते हैं और साधु स्वभाव के लोगों को पूछते तक नहीं–

जपमाला, छापैं, तिलक सरै न एकौं कामु।
मन काँचैं नाचै वृथा, साँचे रावै रामु॥
बसै बुराई जासु तनु ताही कौ सनमानु।
भलौ-भलौ कहि छोड़ियै, खोटे ग्रह जपु दानु॥

नीतिपरक दोहों में कवि ने लोक प्रवास संबंधी अनेक बातों की चर्चा की है। एक स्थल पर कवि धन-सम्पत्ति और मानव-मन की समता का वर्णन करता है। यही नहीं, वह एक भिखारी पर व्यंग्य करते हुए कहता है कि तू दीन-हीन होकर घर-घर क्यों भटकता फिरता है और प्रत्येक व्यक्ति से क्यों याचना करता है। लगता है कि तुमने अपनी आँखों पर लोभ का चश्मा लगा रखा है जिससे तुम्हें कोई छोटा व्यक्ति भी बड़ा नजर आता है। अन्यत्र कवि कहता है कि केवल प्रशंसा के सहारे लेकिन गुणों के बिना कोई व्यक्ति बड़ा नहीं हो सकता; जैसे–धतूरे को हम कनक कहते हैं लेकिन इससे आभूषण तो नहीं बनते। कवि यह भी कहता है कि सोने में धतूरे की अपेक्षा मस्ती सौ गुणा अधिक होती है क्योंकि लोग धतूरे को खाकर उन्मत्त हो जाते हैं परन्तु सोने को पाकर पागलों जैसा व्यवहार करने लगते हैं। 'सतसई' से नीति सम्बन्धी कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

घर-घर डोलत दीन है, जनु-जनु जाचतु जाई।
दियैं लोभ-चसमा चखनु लघु पुनि बड़ौ लखाई॥
बड़े न हूजै गुननु बिनु बिरद-बड़ाई पाई॥
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौं गढ़्यौ न जाई॥
कनकु कनकु तै सौ गुनी मादकता अधिकाई।
उहिं खाए बौराई, इतिं पाँए हीं बौराई॥

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भले ही बिहारी ने संयोग और वियोग का विशद् वर्णन किया है परन्तु उनकी 'सतसई' भक्ति-भावना और नीति-भावना से अछूती नहीं कही जा सकती। कवि ने अनेक स्थानों पर भक्तिपरक तथा नीतिपरक दोहे लिखे हैं। पाठक इन दोहों को पढ़कर प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। कारण यह है कि हमें ऐसे दोहों में लोक व्यवहार सम्बन्धी अनेक बातें जानने को मिल जाती हैं। यथा–

बढ़त-बढ़त संपत्ति सलिलु मन सरोजु बढ़ि जाइ।
घटत-घटत सु न फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ॥

◆◆◆

नायिका की विरहाग्नि को शांत करने के लिए उसके शरीर पर गुलाब जल की शीशी उड़ेली जाती है लेकिन गुलाबजल की एक बूँद भी नायिका के शरीर का स्पर्श नहीं कर पाई थी क्योंकि नायिका की विरहाग्नि की तपन के कारण शीशी का सारा गुलाबजल ही सूख गया। बिहारी के ऐसे ऊहात्मक कथन अतिशय चमत्कार दिखाने के चक्कर में काव्यात्मकता से दूर चले जाते हैं।

(v) **दृष्टान्त अलंकार**–जहाँ समान धर्म वाले उपमेय और उपमान में बिम्ब-प्रतिबिम्ब का भाव रहता है वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है–

कहा भयौ, जौ बीछुरे, मो मनु तोमन-साथ।
उड़ी जाउ कित हूँ, तऊ गुड़ी उड़ाइक हाथ॥

बिहारी के अलंकार प्रयोग के सम्बन्ध में **आचार्य विश्वनाथ प्रसाद** मिश्र का कथन उल्लेखनीय है। वे कहते हैं–**"बिहारी अलंकार शास्त्र में प्रवीण थे। कहीं-कहीं अलंकार का ऐसा चमत्कार है जो लक्षण ग्रंथ लिखने वालों को भी नसीब नहीं। ऐसी निपुणता शास्त्र के अनुशीलन, अभ्यास और सामर्थ्य का पता देती है। अलंकारों की सफाई बिहारी को रीतिकाल का प्रतिनिधि कवि सिद्ध करती है।"**

3. छन्द-विधान–महाकवि बिहारी पिंगलशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे, फिर भी उन्होंने अपनी सतसई में दोहे जैसे लघु आकार के मात्रिक छन्द का ही प्रयोग किया। बिहारी सतसई में कहीं-कहीं एक-आध सोरठा छन्द का प्रयोग भी मिल जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि मुक्तक काव्य के लिए दोहा अत्यन्त उपयुक्त छन्द माना जाता है। इसीलिए बिहारी ने सतसई जैसे मुक्तक काव्य में दोहा छन्द का ही प्रयोग किया है।

4. मुक्तक शैली–रीतिकालीन दरबारी वातावरण में मुक्तक शैली का ही अधिक प्रचलन रहा है। प्रबंध काव्य के लिए निरन्तर एकरसता की अनिवार्यता होती है, जो उस समय कवि और श्रोता दोनों में मौजूद नहीं थी। इसलिए रीतिकाल में अधिकतर मुक्तक काव्य ही लिखे गए। कविवर बिहारी ने भी अपनी एक मात्र रचना 'बिहारी-सतसई' का प्रणयन मुक्तक शैली में ही किया और काफी लोकप्रियता प्राप्त की।

निष्कर्षतः बिहारी की सतसई भाव और अभिव्यक्ति, दोनों दृष्टियों से श्रेष्ठ है। इसके भाव और कला में पाठक या श्रोता को चमत्कृत करने की अद्‌भुत क्षमता मौजूद है।

◆◆◆

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. बिहारी का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

अथवा

'बिहारी सतसई' का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

अथवा

बिहारी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर–हिन्दी साहित्य में बिहारी एकमात्र ऐसे कवि व साहित्यकार हैं जो केवल एक ही कृति के बल पर अमर हो गए। उनका जीवन-परिचय इस प्रकार है–

जीवन-परिचय–रीतिकाल के सर्वप्रमुख कवि बिहारी का जन्म सम्वत् 1652 में ग्वालियर में हुआ था। उनका परिवार एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार था। उनके पिता का नाम केशवराय था तथा वे स्वयं साहित्य-रचना में लीन रहते थे। बिहारी ने उस युग के विशिष्ट कवि व आचार्य केशवदास से काव्य-रचना की शिक्षा ग्रहण की। इनका विवाह एक विदुषी व कवयित्री के साथ हुआ। सम्वत् 1664 में वे ओरछा नरेश के दरबारी कवि बने। उनकी वृन्दावन में शाहजहाँ से भेंट हुई और निमन्त्रण पाकर वे सम्वत् 1677 में आगरा के दरबार गए जहाँ उन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया। वहाँ उपस्थित जयपुर नरेश जयसिंह ने उन्हें अपना दरबारी कवि नियुक्त कर लिया। उन्होंने एक बार राजा जयसिंह को नव-यौवना एवं नव-विवाहिता पत्नी के रूप-जाल से बाहर निकालने के लिए निम्न दोहा लिखकर महल में भेजा–

नहिं परागु नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सौं बन्ध्यौं, आगे कौन हवाल।।

इस दोहे को पढ़कर भोग-विलास में डूबा राजा जयसिंह पुनः राजकाज की ओर प्रवृत्त हुआ। सम्वत् 1720 में इस प्रसि
कवि का स्वर्गवास हो गया।

कविवर बिहारी की एकमात्र रचना है—'सतसई'। इसमें कुल 713 दोहे हैं। कुछ आलोचक इन दोहों की संख्या 726 मान
हैं। इसमें 600 दोहे श्रृंगार रस से सम्बन्धित हैं। शेष में भक्ति, नीति, वैराग्य, प्रकृति वर्णन आदि से सम्बन्धित दोहे भी हैं।
रीतिकाल की सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। यही कारण है कि इसकी लोकप्रियता के कारण संस्कृत, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, मरा
आदि भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। विभिन्न विषयों से सम्बन्धित फुटकर दोहे होने के कारण यह काव्य-रचना वि
पाठकों में काफी लोकप्रिय है।

प्रश्न 2. बिहारी के कवित्व एवं भाषा पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–बिहारी मूलतः श्रृंगार के कवि हैं। उन्होंने श्रृंगार के दोनों पक्षों—संयोग पक्ष और वियोग पक्ष का बड़ा विशद वर्
किया है। कवि ने संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत श्रृंगारिक व्यापार, चेष्टाओं, हाव-भाव आदि का बड़ा सहज और जीवन्त वर्णन कि
है। प्रस्तुत दोहा द्रष्टव्य है जिसमें निवेदन-नकार का बड़ा स्वाभाविक और वास्तविक चित्र व्यक्त किया गया है—

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सौं बात।।

बिहारी के संयोग चित्रों में मात्र नागरता ही नहीं है, वरन् उनमें गाँव-देहात की मनोहारी छटाएँ भी समाहित हैं। नदी-संग
स्नान, झूलना, फागुन की मादकता, टाटी की स्थिति, फसलों का वर्णन आदि ऐसे ही दृश्य-चित्र हैं जो बिहारी के संयोग श्रृंगार क
गाँव से जोड़कर अपूर्व सौंदर्य प्रदान करते हैं। झूला का एक दृश्य और अकस्मात् नायक-नायिका का मिलन अवधेय है, जिस
सरलता और चतुरता का अद्‌भुत योग है—

हेरि हिंडोरै गगन तैं परी-परी सी टूटि।
धरी धाइ पिय बीच ही, करी खरी रस लूटि।।

बिहारी की कविता में संयोग श्रृंगार के साथ वियोग श्रृंगार के भी अनेक दृश्य-चित्र विद्यमान हैं। सामान्य रूप से वियो
श्रृंगार के चार भेद—पूर्वराग, मान, प्रवास, करुण—माने गए हैं। वैसे तो बिहारी ने पूर्वराग, मान, प्रवास, करुण आदि चारों वियो
श्रृंगार-रूपों का उद्‌भावन अपने दोहों में किया है, लेकिन प्रवास के निरूपण में उनका चित्त खूब रमा है। वियोग श्रृंगार-निरूप
में कवि ने अनेक स्थानों पर स्वाभाविकता और लोक-सीमा का भी अतिक्रमण कर डाला है। पुष्टि के लिए प्रस्तुत दोहा द्रष्टव्य है
जिसमें विरह-ज्वाल की ज्वाला का अतिरेक दर्शाया गया है—

आँधाई सीसी सु लखि बिरह-बरनि बिललात।
बिच हीं सूखि गुलाबु गौ, छींटौ छुई न गात।।

बिहारी न तो भक्त थे और न ही भक्तिकाल के कवि थे, फिर भी उनके दोहों में भक्ति भाव का वैसा ही प्रवाह दिखा
पड़ता है जैसा भक्तिकालीन कवियों के यहाँ। कवि ने अपनी 'सतसई' के अनेक दोहों में अपनी दीनता, लघुता, अपावनता तथ
प्रभु की शक्ति, शील, सौंदर्य आदि का बड़ा प्रभविष्णु वर्णन किया है। उदाहरणार्थ—

कौन भाँति रहिहै विरुदु, अब देखिबी मुरारि।
बीधे मोसों आइकै, गीधे गीधहीं तारि।।

लेकिन हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि बिहारी की भक्ति प्रबल श्रृंगारिकता और व्यापक विलासिता से थकित मन की
शरणभूमि है, सहज चित्त की आनन्दभूमि नहीं।

इनके अतिरिक्त बिहारी की कविता में नीति, प्रकृति, समाज, संस्कृति, सौंदर्य के अनेक बिम्ब विद्यमान हैं। उनके दोहों में
आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, राजनीति, मनोविज्ञान, युद्ध, काम, संगीत आदि विषयों का भी ज्ञान-विभास देखा जा सकता है। इन्हीं
विविध विषयों के उद्‌भास के कारण माना जाता है कि बिहारी बहुज्ञ थे। वे बहुश्रुत कवि थे, लोक का और शास्त्र का उन्हें
व्यापक-गम्भीर ज्ञान था। समाज-संस्कृति, मानव-मनोविज्ञान, गँवई-गाँव की वस्तु-चेतना से सम्पृक्त यह दोहा द्रष्टव्य है जिसमें कवि
ने घर-जँवाई की तुलना पूस के दिन से करके अपने विशद-व्यापक ज्ञान को एक साथ व्यक्त किया है-

आवत जात न जानियतु, तजि तेजहिं सियरान।
वरहिं जँवाई तो घट्यौ, खरौ पूस दिन मान।।

बिहारी ने 'गागर में सागर' भरा है। उनके दोहे अर्थ-गाम्भीर्य के निकष हैं। उनमें उक्ति-वैचित्र्य का मनभावन योग है। वे समास-शक्ति और कल्पना-शक्ति से ओत-प्रोत हैं, इसीलिए वे सफल मुक्तककार हैं। निःसंदेह, बिहारी के दोहों में अलंकारों का, मुहावरों का, लोकोक्तियों का, सूक्तियों का बड़ा काव्योत्कर्षकारी प्रयोग हुआ है। यद्यपि उनकी काव्य-भाषा ब्रजभाषा है, लेकिन यथास्थान संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अरबी, फारसी, देशज आदि शब्दों के विधान-व्यवहार से, आनुप्रासिकता, ध्वन्यात्मकता, मधुरता आदि प्रवृत्तियों के प्रयोग से भाषा की शक्ति और सम्प्रेषणीयता बढ़ गई है। वास्तव में, 'बिहारी सतसई' की लोकप्रियता का सबसे बड़ा आधार उसकी कलात्मक चारुता ही है। सचमुच बिहारी के दोहे बड़े बेधक-बेजोड़ हैं-

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें घाव करें गंभीर।।

प्रश्न 3. बिहारी के सौंदर्य बोध पर लघु टिप्पणी लिखिए।

उत्तर-'बिहारी सतसई' ही बिहारी का एकमात्र ग्रंथ है। बिहारी का सम्मान या यश उनकी सतसई पर ही अवलंबित है। बिहारी का प्रमुख प्रतिपाद्य यद्यपि प्रेम और शृंगार है, किन्तु उन्होंने भक्ति व नीति पर भी दोहे लिखे हैं। बिहारी ने अपनी सतसई में सौंदर्य को लेकर भी काव्य रचना की है। बिहारी ने चीजों को जिस रूप में देखा व अनुभव किया, उसी रूप में उनके सौंदर्य का चित्रण किया; यथा-

सतसई में .ारी-सौंदर्य का वर्णन 110 दोहों में किया गया है। प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन उन्होंने 35 दोहों में किया है। प्रेम-सौंदर्य सम्बन्धी 124 दोहों की रचना की है। बिहारी ने अपनी काव्य रचना सतसई में सौंदर्य की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है। जहाँ तक बिहारी के सौंदर्य-बोध का प्रश्न है, उन्होंने किसी वस्तु का, किसी पदार्थ का व किसी दृश्य का जिस रूप में अनुभव किया, उसकी सुन्दरता को अपनी आँखों में बसाया और उसे अपने काव्य में उसी रूप में अभिव्यक्त किया। उन्होंने जहाँ एक ओर वस्तु सौंदर्य का वर्णन किया है, वहीं उन्होंने दूसरी ओर भावनाओं एवं अनुभूतियों के सौंदर्य का भी वर्णन किया है। बिहारी ने नारी सौंदर्य का वर्णन करते समय नारी के अंग-अंग के सौंदर्य, उसके हाव-भावों और अनुभावों में सौंदर्य का सूक्ष्मतापूर्वक चित्रण किया है। नारी-सौंदर्य से सम्बन्धित यह दोहा देखिए-

"अंग-अंग-जग जगमगत दीपसिखा सी देह।
दिया बढ़ाएँ हूँ रहै, बड़ौ उज्यारौ गेह।।"

इसी प्रकार नख-शिख सौंदर्य, प्राकृतिक सौंदर्य, भावगत एवं अनुभूतिगत सौंदर्य तथा भाषागत सौंदर्य का सजीव चित्रण किया गया है। 'बिहारी सतसई' में चित्रित सौंदर्य को देखकर किसी आलोचक ने ठीक ही कहा है-

"सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर।।"

प्रश्न 4. बिहारी के लोकज्ञान पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर-कविवर बिहारी ने लोक जीवन का भी गहन अध्ययन किया था। उन्होंने अपने दोहों में विभिन्न पर्वों, नाटकीय खेलों, पतंगबाजी, आँख-मिचौली, लट्टू नचाना आदि का भी उल्लेख किया है। यही नहीं, कवि को कृषि विषयक ज्ञान भी था। उन्होंने नगर तथा ग्राम्य जीवन का वर्णन करते हुए अनेक लोक-विश्वासों की चर्चा की है। श्रावण मास के प्रमुख पर्वों एवं तीज का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं-

"तीज पख सखियन सजे, भूषण वसन शरीर।
सबै मरगजे मुँह करी, बहे मरगजे चीर।।"

इसी प्रकार कवि को यह पता है कि कौन-सा पौधा कब उगता है और कब पककर तैयार होता है। कवि जानता है कि सन, कपास तथा ईख की फसल कट जाने पर भी अरहर के खेत नहीं कटते। इसी का परिचय देते हुए कवि लिखता है-

"सन सूक्यौ, बीत्यौं बनौ, उखौ लई उखारि।
अरी-हरी अरहर अजौ, धर हरि जिय नारि।।"

इसी प्रकार कवि ने अपने कुछ दोहों में नागरिक सभ्यता पर भी प्रकाश डाला है और ग्राम्य जीवन की सुंदर झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। खेत की रखवाली करने वाली कृषक बालिका का स्वाभाविक चित्र देखिए-

"पहुला हारू दियै लसै, सन की बेंदी भाल।
राखति खेत खरे-खरे, खरे उरोजनु बाल।।"

इसी प्रकार कवि ने चौपाल का खेल, अर्क निकालने की प्रक्रिया, कामशास्त्र, अश्वशास्त्र, रत्न प्रक्रिया, पाकशास्त्र के ज्ञान से संबंधित असंख्य दोहे लिखे हैं। सतसई भले ही एक शृंगार प्रधान रचना हो, लेकिन कवि ने भक्ति विषयक दोहे अवतारणा भी की है। ऐसे स्थलों पर कवि की आत्मा बड़ी निश्चल और निष्कपट भी दिखाई देती है।

(क) तौ लगि या मन-सदन में हरि, आवें दिहिं वाट।
विकट जरे जौं लौं निपट, खुलै न कपट कपाट।।

(ख) जपमाला छापा तिलक, सरै न एकौ कामु।
मन कांचे नाचै वृथा, सांचै रांचै रामु।।

प्रश्न 5. बिहारी को बहुज्ञत्व का धनी कहना कहाँ तक उचित है? सोदाहरण उत्तर दीजिए।

उत्तर–कविवर बिहारी रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। उनकी प्रसिद्धि या श्रेष्ठता का कारण उनकी एकमात्र रचना 'बि सतसई' नामक ग्रंथ है। उन्होंने अपनी इस रचना में विभिन्न विषयों पर दोहे लिखकर इसको चार चाँद लगाए हैं। उनके व्यापक ज्ञान एवं अक्षुण्ण लोकानुभव था। वे अपनी बहुज्ञता, लोकानुभव व शास्त्रीय ज्ञान के बल पर ही सतसई में ज्ञान खजाना भर सके हैं। 'सतसई' में ऐसे अनेक दोहे हैं जिनमें ज्योतिष पुराण, कृषि, राजनीति, समाज-शास्त्र, धर्म-दर्शन आदि विशद् वर्णन मिलता है। इसके साथ-साथ उन्होंने तत्कालीन रूढ़ियों तथा आडम्बरों का भी खण्डन किया है। उदाहरण के लि निम्नलिखित दोहे देखिए–

"चित्त पितृ मारक जोग गनि, भयो भयैं सुत-सोग।
फिरि हुलस्यौ जिय जोइ सी, समुझै जारज योग।।" **(ज्योतिष विषय)**

"मै लखि नारी ज्ञान करि राख्यो निरधारू यह।
वह ई रोगु-निदान, वहै वैद्य, औषधि वहै।।" **(आयुर्वेद से संबंधित)**

"मेरी भवबाधा हरौ, राधा नागरि सोई।
जा तन की झाई परैं, स्यामु हरित-दुति होई।।" **(विज्ञान सम्बन्धी)**

गणित शास्त्र सम्बन्धी उनका ज्ञान बहुत अच्छा था। उन्होंने अपने कुछ दोहों में गणितशास्त्र की बारीकियों का परि दिया है–

"कहत सबै बेंदी दियै, आकु दस गुनौ होतु।
तिय लिलार बेंदी दियै, अगिनितु बढ़त उदोतु।।"

बिहारी ने अपना अधिकांश समय राजाश्रय में व्यतीत किया था। अतः उन्होंने तत्कालीन राजाओं की राजनीति को बारी से समझा है तथा उस पर प्रकाश डाला है। दोहों में शासन प्रबन्ध की कमजोरियों का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं–

दुसह दुराज प्रजानिकौ, क्यों न बढ़े दुख दंद।
अधिक अंधेरो जग करत, मिलि मावस रवि चंद।।

नीतिशास्त्र के ज्ञान सम्बन्धी निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए–

बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमानु।
भले-भले कह छोड़िए, खोटे ग्रह जप दानु।।

अतः स्पष्ट है कि बिहारी के विविध-विषयों सम्बन्धी ज्ञान को देखते हुए उन्हें बहुज्ञत्व का धनी कहना सार्थक है।

प्रश्न 6. बिहारी की भक्ति-भावना पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर–मूलतः बिहारी शृंगार के कवि हैं, किन्तु उन्होंने अपनी 'सतसई' में कुछ दोहे भक्ति पर भी लिखे हैं। ये दोहे सं में भी कम हैं और न ही इनमें सूर, मीरा, तुलसी जैसी भक्ति की तन्मयता है। इसलिए उन्हें भक्त कवि की संज्ञा नहीं दी सकती। 'सतसई' में प्राप्त भक्ति-विषयक दोहे बिहारी द्वारा विविध भाव-भूमियों को अपनाने और उनके जीवन के विविध के ज्ञान और अनुभव के परिचायक हैं।

बिहारी की भक्ति-भावना की सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने किसी भी मत-मतान्तर का खण्डन-मण्डन न करके सहज एवं सरल हृदय से अपने आराध्य की आराधना की है। उनका मत है कि भक्ति करते समय सब प्रकार के वाद-विवादों से दूर रहना चाहिए—

"अपनैं-अपनैं मत लगे, बादि मचावत सोरु।
ज्यौं-त्यौं सबकौं सेइबो, एक नंद किसोरु।।"

बिहारी ने अपनी भक्ति में सब प्रकार के भावों का समावेश कर लिया है। साथ ही उन्होंने प्रभु-भक्ति के लिए सभी प्रकार के विचारों को दूर करने का सन्देश दिया है।

"भजन कह्यौ तातैं भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार।
दूरि भजन जातैं कह्यौ, सौतैं भज्यो गँवार।।"

धर्म के नाम पर हो रहे आडम्बरों का खण्डन करते हुए बिहारी ने कहा है—

"जपमाला, छापा, तिलक, सरै न एकौ कामु।
मन काँचे नाचै वृथा, साँचै राचै रामु।।"

भक्ति-भावना की पहली शर्त आत्म-समर्पण की भावना ही होती है। इसके माध्यम से ही भक्त अपने आराध्य के प्रति निष्ठा व्यक्त करता है। अपने पर दया करने के लिए उसके प्रति विश्वास भी कर सकता है। आत्म-समर्पण सम्बन्धी यह दोहा देखिए—

"दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईंहिं न भूलि।
दई-दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि।।"

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बिहारी के काव्य में ऐसे अनेक दोहे हैं जिनमें उनकी भक्ति-भावना की तन्मयता के दर्शन होते हैं। कवि अपने-आपको गुणहीन एवं अधम कहकर अपनी मुक्ति की कामना करता हुआ ईश्वर से प्रार्थना करता है। अतः कहा जा सकता है कि बिहारी के काव्य का मुख्य विषय भक्ति तो नहीं है लेकिन शृंगार के बाद गौण विषय अवश्य है।

प्रश्न 7. बिहारी के महत्त्व एवं हिन्दी साहित्य में उनके योगदान पर टिप्पणी करें।

उत्तर–बिहारी कतिपय उन गिने-चुने कवियों में हैं जो स्थायी यश के अधिकारी बन गये हैं। मध्यकाल के कवियों में तुलसी और सूर को छोड़कर इतनी अधिक प्रतिष्ठा शायद ही किसी कवि ने प्राप्त की हो। 'रामचरितमानस' को छोड़कर इस काल का शायद कोई और ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' की तरह नहीं अपनाया गया। एक दृष्टि से तो 'बिहारी सतसई', 'रामचरितमानस' से भी आगे बढ़ जाती है। यदि केवल मध्यकाल की ही टीकाओं को लिया जाए, तो 'रामचरितमानस' पर भी उतनी टीकाएँ नहीं लिखी गई, जितनी 'बिहारी सतसई' पर। किसी ने दोहों में कुण्डलियाँ लगाई, किसी ने कवित्त बनाए और किसी ने सवैया छन्दों से दोहों की व्याख्या की। संस्कृत के ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद करने की परम्परा रही है। किन्तु यह सौभाग्य 'बिहारी सतसई' को प्राप्त हुआ कि उसकी एक नहीं, अनेक व्याख्याएँ संस्कृत में की गयीं। 'बिहारी सतसई' का संस्कृत के आर्या छन्द में भी अनुवाद किया गया। आधुनिक काल में भी बिहारी पर जितना कार्य हुआ है, उतना मध्यकाल के बहुत कम कवियों पर किया गया है। आशय यह है कि केवल 713 दोहे लिखकर बिहारी ने एक पूरा साहित्य तैयार कर दिया है। साहित्य-जगत में बिहारी जैसा महत्त्वपूर्ण स्थान बहुत कम कवियों को प्राप्त हुआ है और हिन्दी-साहित्य की समृद्धि में उनका जो योगदान है उसके लिए हिन्दी साहित्य जगत उनका सदा आभारी रहेगा।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. बिहारी का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर– बिहारी रीतिकाल के सर्वप्रिय कवि हैं। इनका जन्म 1595 ई. में ग्वालियर में हुआ। इनका बचपन बुंदेलखंड में बीता तथा युवावस्था में ये अपनी ससुराल में आकर बस गए। इनके पिता का नाम केशवराय तथा इनके गुरु का नाम केशव था। ये जयपुर के राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। इनका परलोकवास 1663 ई. में हुआ।

2. बिहारी के कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर– बिहारी रीतिकाल के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि है। कृतित्व की दृष्टि से उनकी एक ही रचना है–'बिहारी सतसई'। 'बिहारी सतसई' में कुल 713 दोहे हैं। इनमें से 600 से अधिक दोहे शृंगार रस के हैं। कुछ दोहे भक्ति से संबंधित हैं। शेष दोहे संगीत, नीति, प्रकृति, वैद्यक, ज्योतिष आदि विषयों से संबंधित हैं। 'रामचरितमानस' के बाद 'बिहारी सतसई' मध्यकाल की सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय रचना है।

3. 'बिहारी रत्नाकर' का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर– 'बिहारी रत्नाकर' रीतिकालीन कवि बिहारीलाल विरचित 'बिहारी सतसई' की सर्वाधिक प्रामाणिक टीका है। इसके टीकाकार जगन्नाथदास 'रत्नाकर' हैं। इसका प्रथम प्रकाशन 1926 ई. में हुआ था।

4. बिहारी रत्नाकर में कुल कितने दोहे हैं?

उत्तर– 713.

5. बिहारी के काव्य की दो विशेषताएं लिखिए।

उत्तर– (i) शृंगार वर्णन,

(ii) भक्ति-भावना।

6. बिहारी की भाषा पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

उत्तर– बिहारी की भाषा मध्यकालीन सर्वप्रिय भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। उन्होंने ब्रजभाषा का भावानुरूप प्रयोग किया है। शब्दों का चयन भी बड़ी सूझ-बूझ से किया है। आचार्य शुक्ल के अनुसार–**"बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है।"**

7. बिहारी के शृंगार वर्णन की दो विशेषताएं बताइए।

उत्तर– (i) नायक-नायिका का रूप वर्णन,

(ii) नायक-नायिका के प्रेम-व्यापार का वर्णन।

8. बिहारी के अलंकार विधान पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर– रीतिकाल के कवि होने कारण बिहारी के काव्य में सायास रूप से अनेकानेक अर्थालंकारों एवं शब्दालंकारों का प्रयोग हुआ है। उन्होंने दोहे जैसे छोटे से कलेवर में एक-दो-तीन नहीं अपितु पाँच-पाँच, सात-सात अलंकारों की योजना की है। अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, काव्यलिंग, दृष्टांत आदि इनके प्रिय अलंकार हैं।

9. बिहारी की बहुज्ञता पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर– बिहारी को रीतिकाल का बहुज्ञ कवि कहा जाता है। उन्हें केवल साहित्य और साहित्यशास्त्र का ही ज्ञान नहीं था, अपितु वे राजनीति, अर्थशास्त्र, गणित, ज्योतिष, संगीत, दर्शनशास्त्र, वैद्यकशास्त्र जैसे विषयों के भी अच्छे जानकार थे। इन सभी विषयों का वर्णन उन्होंने अपनी रचना 'बिहारी सतसई' में किया है। इसीलिए उन्हें बहुज्ञ कवि कहा जाता है।

10. 'बिहारी रत्नाकर' के संपादक का नाम बताइए।

उत्तर– जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'।

11. बिहारी किस युग के कवि थे?

उत्तर– रीतिकाल के।

12. सर्वप्रथम बिहारी ने किस राजा के यहाँ आश्रय लिया था?

उत्तर– शाहजहाँ के दरबार में।

13. **बिहारी की प्रमुख रचना का क्या नाम है?**

उत्तर– बिहारी सतसई।

14. **जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' कृत 'बिहारी रत्नाकर' में 'बिहारी सतसई' के कितने दोहों की टीका गई है?**

उत्तर– 713 दोहों की।

15. **बिहारी ने किस राजा के लिए दोहा लिखकर उसे उसके कर्तव्य का बोध कराया था?**

उत्तर– राजा जयसिंह को।

16. **'बिहारी सतसई' में नीति सम्बन्धी कुल कितने दोहे हैं?**

उत्तर– 'बिहारी सतसई' में नीति सम्बन्धी कुल 45 दोहे मिलते हैं।

17. **बिहारी की 'सतसई' में शृंगार रस सम्बन्धी कुल कितने दोहे संकलित हैं?**

उत्तर– 'बिहारी सतसई' में शृंगार रस सम्बन्धी 600 दोहे संकलित हैं।

18. **कविवर बिहारी किससे अपनी बाधा हरने के लिए प्रार्थना करते हैं?**

उत्तर– कविवर बिहारी राधा जी से अपनी बाधा हरने के लिए प्रार्थना करते हैं।

19. **कविवर बिहारी के अनुसार काव्य रस रूपी सागर में कैसे तैर सकते हैं?**

उत्तर– कविवर बिहारी के अनुसार काव्य रस रूपी सागर में पूर्ण रूप से डूबकर अर्थात् तल्लीन होकर तैर सकते हैं।

20. **उन दो शास्त्रों के नाम लिखो जिनके विषय में बिहारी ने दोहे लिखे हैं?**

उत्तर– गणित शास्त्र तथा दर्शन शास्त्र।

21. **'पिय बिछुरन को दुसहु दुःख' दोहे में महाभारत के किस पात्र का उल्लेख है?**

उत्तर– दुर्योधन का।

22. **'बिहारी रत्नाकर' के कुल कितने दोहे पाठ्यक्रम में निर्धारित हैं?**

उत्तर– 30 दोहे।

23. **'तन भूषण, अंजन दृगनु' प्रसंग में 'दृगनु' में बिहारी ने किस चीज का संकेत किया है?**

उत्तर– काजल का।

24. **बिहारी की नायिका की 'दुखिया अखियानु को सुखु सिर्ज्योई नांहि'–किस कारण है?**

उत्तर– प्रेमाश्रुओं के कारण वह नायक को देख नहीं पाती और उसे बिना देखे व्याकुल हो जाती है।

25. **'मेरी भव बाधा हरौ' से आरम्भ होने वाले दोहे में बिहारी ने किसकी वंदना की है?**

उत्तर– राधा जी की।

26. **बिहारी के दोहे 'नहिं परागु नहिं मधुर मधु' में किस शासक को सम्बोधित किया गया है?**

उत्तर– राजा जयसिंह को।

27. **बिहारी की सतसई के दोहों को किसके तीर के समान बताया गया है?**

उत्तर– नाविक के तीर के समान।

28. **मुक्तक को 'रस के छींटे' किस विद्वान ने कहा है?**

उत्तर– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने।

29. **बिहारी ने राजा जयसिंह के किस पुत्र का विद्यारंभ संस्कार करवाया था?**

उत्तर– रामसिंह का।

30. **किस परम्परा में बिहारी श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं?**

उत्तर– मुक्तक परम्परा में।

31. **"यूरोप में बिहारी सतसई के समान कोई रचना नहीं।"–ये शब्द किसने कहे थे?**

उत्तर– डॉ. ग्रियर्सन ने।

32. **बिहारी के प्रेरणास्रोत किन्हीं दो ग्रंथों के नाम लिखो।**

उत्तर– 'गाथा सप्तशती', 'आर्य सप्तशती'।

33. **बिहारी की सतसई में सर्वाधिक किस रस का वर्णन हुआ है?**

उत्तर– शृंगार रस का।

34. **किसके अनुसार बिहारी की पत्नी भी एक अच्छी कवयित्री थी?**

उत्तर– डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार।

35. **बिहारी की मृत्यु कब हुई थी?**

उत्तर– 1663 ई. में।

36. **'मंगल बिंदु सुरंगु' दोहा बिहारी के किस ज्ञान से सम्बन्धित है?**

उत्तर– ज्योतिष ज्ञान से।

37. **शृंगारिक दोहों के अलावा बिहारी ने किन अन्य विषयों पर भी दोहे लिखे हैं?**

उत्तर– भक्ति, नीति तथा प्रकृति पर।

38. **राधिके सुजान पर बिहारी ने किसको न्योछावर किया है?**

उत्तर– उर्वशी को।

39. **'बिहारी सतसई' पर 'लाल चन्द्रिका' नामक टीका के लेखक कौन हैं?**

उत्तर– लल्लू लाल जी।

40. **किसने सूर, तुलसी व केशव के पश्चात् बिहारी को हिन्दी साहित्य का चौथा रत्न कहा है?**

उत्तर– लाला भगवानदीन ने।

41. "इनके दोहे रस की पिचकारियाँ हैं। वे एक ऐसी मीठी रोटी हैं, जिसको जिधर से तोड़ा जाए, उधर से ही मीठी लगती है।"–बिहारी के दोहों के विषय में यह कथन किसका है?

उत्तर– आचार्य रामचंद्र शुक्ल का।

42. किसने बिहारी को ऐसा पीयूषवर्षी घनश्याम कहा है, जिसके उदय होते ही सूर और तुलसी आच्छादित हो जाते हैं?

उत्तर– राधाचरण गोस्वामी ने।

43. बिहारी के अनुसार कैसे मन में प्रभु का निवास हो सकता है?

उत्तर– सच्चे मन में ही प्रभु का निवास हो सकता हैं।

44. बिहारी के अनुसार सांई (ईश्वर) को कब नहीं भूलना चाहिए?

उत्तर- बिहारी के अनुसार सुख में भी हमें सांई (ईश्वर) को नहीं भूलना चाहिए।

45. कैसा चश्मा पहनकर छोटा आदमी भी बड़ा लगता है?

उत्तर– लोभ का चश्मा पहनकर छोटा व्यक्ति भी बड़ा लगता है।

46. बिहारी किस वर्णन में बेजोड़ हैं?

उत्तर– संयोग वर्णन में।

47. 'बिहारी सतसई' में भक्ति संबंधी कितने दोहे हैं?

उत्तर– 50 दोहे।

48. नल के पानी और मनुष्य की गति समान क्यों कही गई है?

उत्तर– क्योंकि दोनों जितना नीचा होकर चलते हैं, उतना ही ऊँचा उठ जाते हैं।

49. 'बिहारी सतसई' किस प्रकार की रचना है?

उत्तर– मुक्तक काव्य।

50. बिहारी के प्रेम का मुख्य आकर्षण क्या है?

उत्तर– शारीरिक सौन्दर्य।

51. यह किस आलोचक ने कहा है कि भावों का बहुत उत्कृष्ट तथा उदात्त स्वरूप 'बिहारी सतसई' में नहीं मिलता?

उत्तर– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने।

52. सतसई में कितने प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं?

उत्तर– दो प्रकार के (दोहा और सोरठा)।

53. बिहारी ने किस भाषा में सतसई की रचना की है?

उत्तर– साहित्यिक ब्रजभाषा में।

54. 'बिहारी सतसई' में ब्रजभाषा के अतिरिक्त किन भाषाओं के शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है?

उत्तर– बुन्देली, अवधी, फारसी और उर्दू भाषा के शब्दों का।

55. यह किसने कहा है कि जिस कवि में भाषा की समाहार शक्ति होगी वह उतना ही मुक्तक की रचना में प्रवीण होगा?

उत्तर– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने।

56. 'बिहारी बिहार' किसकी कृति है?

उत्तर– अम्बिका दत्त व्यास की।

57. बिहारी ने किस बोली में दोहे लिखे? दोहे में कितनी मात्राएँ होती हैं?

उत्तर– ब्रज भाषा में। दोहे में चौबीस मात्राएँ होती हैं।

58. बिहारी का संबंध किस राजदरबार से था?

उत्तर– राजा जयसिंह के दरबार से।

59. "करी बिहारी सतसई भरी अनेक सवाद" से क्या अभिप्राय है?

उत्तर– इस काव्य पंक्ति से यह अभिप्राय है कि बिहारी अनेक विषयों में निष्णात थे। उन्होंने सतसई लिखकर अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया।

60. बिहारी का जन्म ग्वालियर के किस गांव में हुआ?

उत्तर– बसुआ गोबिन्दसिंह नामक गाँव में।

61. बिहारी ने किससे काव्य शिक्षा ग्रहण की?

उत्तर– आचार्य केशवदास से।

62. सम्वत् 1644 में बिहारी किस राजा के दरबारी कवि बने?

उत्तर– ओरछा नरेश के।

63. "बिहारी का एक भी ऐसा दोहा नहीं है जिसमें चमत्कार या अलंकार का प्रयोग न हो।"–यह कथन किस आलोचक का है?

उत्तर– डॉ. रामसागर त्रिपाठी का।

64. 'बिहारी सतसई' का अनुवाद किन भाषाओं में हो चुका है?

उत्तर– संस्कृत, उर्दू, मराठी, फारसी तथा अंग्रेजी भाषाओं में।

65. 'बिहारी सतसई' का प्रतिपाद्य विषय क्या है?

उत्तर– प्रेम और शृंगार।

◆◆◆

3 (ख) घनानन्द

सन्दर्भ व प्रसंग सहित व्याख्या

घनानन्द के सवैये

1 अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ, झझकें कपटी जे निसाँक नहीं।
घन आनन्द प्यारे सुजान सुनौ, यहाँ एक ते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन सी, पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

सन्दर्भ–यह सवैया 'हिन्दी कविता' पाठ्यपुस्तक में संकलित 'घनानन्द के सवैये' से लिया गया है। यह सवैया रीतिकाल के प्रमुख रीतिमुक्त कवि घनानन्द द्वारा रचित है, जो 'प्रेम की पीर' के अद्भुत गायक माने जाते हैं। यह सवैया उनकी प्रेम और भक्ति-संवेदना को प्रकट करता है।

प्रसंग–इस सवैये में घनानन्द ने सच्चे प्रेम की सरलता, प्रेम में छलकपट के लिए अस्वीकृति, और अपने प्रेमी की उपेक्षा से उपजी वेदना को अत्यंत मार्मिक रूप में अभिव्यक्त किया है। वह कहते हैं कि प्रेम का मार्ग सरल और सीधा होता है, इसमें कोई चालाकी या स्वार्थ नहीं चलता। इस पृष्ठभूमि में वह अपनी प्रिया 'सुजान' को उलाहना देते हैं कि वह प्रेम का अर्थ ही भूल चुकी है और हृदय लेकर चली गई है, लेकिन बदले में स्नेह की एक झलक भी नहीं देती।

व्याख्या–कवि कहता है कि प्रेम का रास्ता अत्यंत सीधा और सरल होता है। उसमें कोई भी चालाकी, बनावट या कूटनीति नहीं चलती। वहाँ केवल सच्चाई की ही गुंजाइश होती है। सच्चे प्रेमी इस मार्ग पर अपना अहंकार, स्वार्थ और आत्म-प्रदर्शन छोड़कर निःस्वार्थ भाव से चलते हैं। परंतु जो कपटी होते हैं, वे इस मार्ग पर आगे नहीं बढ़ पाते; वे झिझकते हैं क्योंकि उनके पास सच्चे प्रेम का बल नहीं होता।

कवि अपनी प्रिय 'सुजान' से कहता है कि हे प्यारी! सुनो, यहाँ (प्रेम में) एक बात ही मुख्य है, उसमें दोहरापन नहीं होता। सच्चे प्रेम में छल और विकल्प का स्थान नहीं। कवि अत्यंत करुण और व्यंग्यात्मक लहजे में प्रिय से पूछता है कि तुमने कौन-सी किताब पढ़ ली है, कैसी शिक्षा ली है कि मेरा पूरा मन (प्रेम) ले गई हो, लेकिन उसके बदले में एक छटाँक (थोड़ा सा भी) प्रेम नहीं दे रही हो? अर्थात् हे प्रिय! तुमने यह कौन सी पट्टी या पाठ पढ़ लिया है कि मण (चालीस सेर) लेकर छटाँक (पाँच तोले) भी नहीं देती। दूसरा अर्थ है कि मन छीनकर कभी दर्शन भी नहीं देती हो। यहाँ "मन लेहु" का आशय है-हृदय और आत्मा की संपूर्ण समर्पणशीलता, और "छटाँक नहीं देना" दर्शाता है–प्रिय का पूर्ण उपेक्षा और भावशून्यता का व्यवहार।

काव्य-सौन्दर्य-

1. ब्रज भाषा की सहजता, माधुर्य और लालित्य इस सवैये में भलीभांति दृष्टिगोचर है।
2. सवैया छंद की लयात्मकता इसे गेय और स्मरणीय बनाती है।
3. इसकी प्रतीकात्मकता और व्यंग्य-वक्रता बड़ी प्रभावी बन पड़ी है। "कौनसी पाटी पढ़े हो लला" जैसे प्रश्न में तीखा प्रेमव्यंग्य झलकता है।
4. 'मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं' जैसे वाक्यांशों के माध्यम से कवि ने प्रेम की परिपूर्णता और प्रिय की कृपणता को प्रभावशाली प्रतीकों में ढाल दिया है।

5. प्रेम की सच्चाइ, सरलता, त्याग और भक्ति जैसे गूढ़ तत्वों को अत्यंत सहज और मार्मिक भाषा में प्रस्तुत किया गया है। यह कवि की भाव-गंभीरता का उदाहरण है।
6. यह सवैया रीतिकालीन शृंगारिक परंपरा से अलग हटकर प्रेम को आध्यात्मिक और आत्मिक रूप में देखने की घनानन्द की शैली को दर्शाता है। यह प्रेम की रीतिमुक्त चेतना का प्रतीक है।
7. यह सवैया न केवल सच्चे प्रेम की गहराई और कपटहीनता को उजागर करता है, बल्कि प्रिय के प्रति तिक्त व्यंग्य और करुण वेदना के मिश्रण से एक मानवीय और आध्यात्मिक प्रेमभाव को प्रस्तुत करता है।
8. घनानन्द की यह रचना रीतिकाल में सत्प्रेम के उच्चतम आदर्श की प्रस्तुति मानी जा सकती है।
9. सच्चे और स्वाभाविक प्रेम की विशेषताओं का सुन्दर चित्रण किया गया है।
10. सरल, सहज, सरस व भावानुकूल ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ है।
11. तत्सम् व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
12. माधुर्य गुण का प्रयोग है तथा शृंगार रस का परिपाक हुआ है।
13. अनुप्रास, रूपक, श्लेष व विरोधाभास अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
14. वर्णनात्मक शैली, सवैया छंद व दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ ह।
15. मुहावरों के प्रयोग से भाषा में लाक्षणिकता का समावेश हुआ है।

2

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो-नयो लागत ज्यों-ज्यों निहारियै।
त्यों इन आंखिन बानि अनोखी, अघानि कहूँ नहि आनि निहारियै।
एक ही जीव हु तो सु तौ वारयौ, सुजान ! सकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै, घन आनन्द, बावरी रीझ के हाथनि हारियै॥

सन्दर्भ–प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य-पुस्तक 'हिन्दी कविता' में संकलित 'घनानन्द के सवैये' कविता से लिया गया है। इस दोहे के रचयिता रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि घनानन्द हैं। घनानन्द रस की साक्षात् मूर्ति और प्रेम की पीर के कवि हैं।

प्रसंग–कवि घनानन्द का यह सवैया रीतिकालीन काव्य परंपरा का अनुपम उदाहरण है, जिसमें उन्होंने प्रेम, सौंदर्य और भावावेग को अत्यंत कोमलता और गहनता से व्यक्त किया है। इस पद की रचना घनानंद ने अपनी प्रेयसी सुजान को सम्बोधित करके की है। इस सवैये में कवि ने नायिका सुजान के अद्‌भुत सौंदर्य और उसके प्रति अपने आकर्षण का चित्रण किया है।

व्याख्या–कवि कहता है कि नायिका का रूप हर बार नया-नया प्रतीत होता है, मानो हर दृष्टि में उसका सौंदर्य पुनः निखरकर सामने आता है। उसकी आँखें इतनी आकर्षक हैं कि उन्हें देखकर भी तृप्ति नहीं होती। कवि कहता है कि हे प्रिय ! तुम्हारे सौंदर्य की रीति बड़ी विचित्र है। मैं उसे ज्यों-ज्यों देखता हूँ, वैसे-ही-वैसे वह नया-नया प्रतीत होता है। इधर मेरी आँखों को भी अनोखी आदत पड़ गई है। मैं तुम्हारी कसम खाकर कहता हूँ कि उन्हें (मेरी आँखों को) किसी और को देखकर तृप्ति नहीं होती। अर्थात् मेरी आँखें केवल तुम्हें देखने के लिए व्याकुल रहती हैं। मेरा एक ही जीव (प्राण या हृदय) है। उसे मैं तुम पर न्योछावर करता हूँ। अब इस संकोच और चिंता की स्थिति में तुम्हीं मुझे सहारा दो। कवि की मानसिक दशा प्रेम में पागलपन की सीमा तक पहुँच चुकी है। वह कहता है कि वह एक ही जीवन था, उसे भी उस रूप-सौंदर्य पर न्यौछावर कर दिया। कवि घनानन्द कहते हैं कि हे प्रिय ! मेरा पागल-प्रेम रोकने पर भी रुकता नहीं, मुझे जलाता रहता है। मैं इस प्रेम के हाथों हार गया हूँ। कहने का अभिप्राय यह है कि नायिका सुजान का सौंदर्य अद्‌भुत है। उसे देखे बिना कवि को चैन नहीं मिलता। कवि के मन में नायिका के प्रति इतना तीव्र आकर्षण है कि वह रोकने पर भी रुकता नहीं और वह पूरी तरह उसके वशीभूत हो चुका है।

काव्य-सौन्दर्य-

1. इस सवैये में कवि नायिका के सौंदर्य, विशेषतः उसके रूप और नेत्रों की अनोखी छवि का वर्णन करते हैं।
2. इस पद में कवि ने अपनी प्रिया के रूप-सौन्दर्य के अलौकिक प्रभाव का चित्रण किया है। कवि ने सौंदर्य के वर्णन में अत्यंत सजीव और मनोहारी भाषा का प्रयोग किया है।
3. नायिका की आँखों की तुलना ऐसी चीज़ से की गई है जो बार-बार देखने पर भी नीरस नहीं होती, बल्कि हर बार नई प्रतीत होती है। यह चित्रात्मकता पाठक की आँखों के सामने नायिका की मोहक छवि खींच देती है।

4. घनानन्द की भाषा ब्रजभाषा है, जो प्रेम और शृंगार रस को अभिव्यक्त करने के लिए अत्यंत उपयुक्त है।
5. 'रूप की रीति अनूप', 'नयो-नयो लागत', 'अघानि कहूँ नहि आनि'–जैसे पद्यांशों में अनुप्रास अलंकार और यमक का प्रयोग हुआ है, जिससे कविता का श्रव्य सौंदर्य बढ़ता है।
6. इस सवैये में मुख्यत: शृंगार रस (विशेषत: माधुर्य और संयोग पक्ष) की प्रधानता है, परंतु साथ ही विरह, अधीरता का संकेत भी मिलता है, जो इसे और अधिक गहन बनाता है।
7. यह सवैया न केवल घनानन्द की काव्य-शैली की परिपक्वता को दर्शाता है, बल्कि उनके आत्मवेदनात्मक प्र... की भी झलक देता है।
8. कवि ने नायिका के सौंदर्य को देखकर आत्म-विसर्जन जैसी भावना व्यक्त की है।
9. कविता में भाव, भाषा, अलंकार और रस का सुंदर समन्वय है, जो इसे हिन्दी काव्य में एक विशिष्ट स्थ... प्रदान करता है।
10. सरल, सहज, सरस व भावानुकूल ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ है।
11. तत्सम् व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
12. माधुर्य गुण का प्रयोग है तथा शृंगार रस का परिपाक हुआ है।
13. अनुप्रास व पुनरुक्तिप्रकाश अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
14. संबोधन शैली, दृश्य बिंब व सवैया छंद का प्रयोग हुआ है।

निबंधात्मक प्रश्न

1 घनानन्द का साहित्यिक जीवन परिचय लिखिए।

अथवा

रीतिमुक्त कवि घनानन्द के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–हिंदी साहित्य के रीतिकाल में तीन काव्यधाराएँ प्रचलित हुई–रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। घनानंद रीतिमुक्त काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। ये प्रेम की पीर के कवि माने जाते हैं।

1. घनानंद का जन्म व मृत्यु–घनानंद के जन्म के विषय में विभिन्न विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने घनानन्द का जन्म विक्रम संवत् 1740 (सन् 1683) में जन्म माना है। किन्तु अधिकांश विद्वानों द्वारा घनानंद का जन्म संवत् 1730 (सन् 1673) में तथा मृत्यु संवत् 1817 (सन् 1760) में स्वीकार की गई है। घनानंद जाति से कायस्थ थे। घनानंद के अनेक नाम प्राप्त हुए हैं जैसे कि आनंदघन, घन आनंद, घनानंद, आदि।

2. घनानंद की शिक्षा–इनकी शिक्षा फारसी भाषा के द्वारा शुरू हुई थी। जनश्रुति के आधार पर अबुल फजल इनके गुरु माने जाते हैं। इन्होंने अपनी असाधारण प्रतिभा एवं बुद्धि से शीघ्र ही फारसी का अच्छा ज्ञान अर्जित कर लिया। इसी प्रतिभा के कारण घनानंद दिल्ली के शासक मोहम्मदशाह रंगीला के मीर मुंशी अथवा खास कलम के पद पर रहे थे। घनानंद को काव्य लेखन और संगीत का अद्भुत ज्ञान था।

3. घनानन्द व सुजान का प्रेम प्रसंग–घनानंद के बारे में यह प्रसंग प्रसिद्ध है कि यह मोहम्मदशाह रंगीला के दरबार में नृत्य करने वाली सुजान से बेहद प्रेम करते थे। शीघ्र पदोन्नति के कारण अन्य दरबारी उनसे ईर्ष्या करने लगे थे। अत: एक दिन दरबारियों ने षड्यंत्र करके बादशाह से यह कहा कि घनानंद भले ही उनका मीर मुंशी है परंतु उनके कहने से अपनी कविताएँ गाकर नहीं सुनाएगा। हाँ, अगर सुजान कहेगी तो वह कुछ भी कर सकता है। बादशाह ने जब दरबार में घनानंद को गाना गाने के लिए कहा तो उसने इनकार कर दिया। तभी सुजान ने उनसे गाने का निवेदन किया तो वे सुजान की ओर मुँह करके तथा बादशाह की ओर पीठ करके गाने लगे। इस पर बादशाह क्रोधित हो गए और घनानंद को देश निकाला दे दिया। घनानंद ने महल छोड़ते हुए सुजान से आग्रह किया कि वह भी उसके साथ चले परंतु सुजान महलों का सुख और ऐश्वर्य छोड़कर उसके साथ जाने को तैयार नहीं हुई। इस पर घनानंद का हृदय टूट गया और वह विरक्त होकर मथुरा में आ बसे।

धीरे-धीरे उनका सुजान-प्रेम कृष्ण-प्रेम में परिवर्तित हो गया और वह वृंदावन जाकर बस गए। सुजान के प्रति उनकी आसक्ति राधा-कृष्ण भक्ति में बदल गई और वे आजीवन इसी भक्ति में लीन रहे। घनानंद के काव्य में 'सुजान' शब्द का प्रयोग बार-बार हुआ है जिसका अर्थ उनकी प्रेमिका सुजान के रूप में तथा प्रिय, चतुर, नागर कृष्ण के रूप में भी किया जाता है।

4. घनानंद की रचनाएँ–घनानंद की कविताओं को ब्रजनाथ नामक व्यक्ति ने 'घनानंद कवित्त' के नाम से संग्रहित किया था। घनानंद के नाम से लगभग 40 रचनाएँ प्रचलित हैं जिनमें अधिकांश कवित्त और सवैये हैं। 'सुजान हित' या 'सुजान सागर', 'वियोग-बेली', 'ब्रज-विलास', 'प्रेम-सरोवर', 'गोकुल चरित्र', 'कृपा कंद', 'यमुना यश', 'इश्कलता' आदि घनानंद की प्रमुख रचनाएँ हैं। विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'सुजान हित' और 'पदावली' को घनानंद की प्रसिद्धि का आधार माना है।

5. घनानंद के काव्य की विशेषताएँ–घनानंद रीतिकाल की स्वच्छंद या रीतिमुक्त काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। घनानंद ने उत्कृष्ट प्रेम का जो चित्रण किया है वह अपने आप में अनूठा है। उनका काव्य प्रेम की गूढ़ता से भरा हुआ है साथ ही उसमें विरह की जो व्याकुलता है वह लौकिकता और अलौकिता से भरी हुई है। रीतिकाल के अन्य कवियों की तरह घनानंद का काव्य मात्र कल्पना का प्रतिबिंब नहीं है अपितु उन्होंने जो कुछ भी रचा वह उनकी आत्मानुभूति पर आधारित है। विद्वानों ने उन्हें 'प्रेम की पीर का उन्मुक्त गायक' कहा है। घनानंद का भावपक्ष के साथ-साथ ब्रज भाषा पर भी पूर्ण अधिकार था। वे सचमुच भाव और कला के धनी थे।

6. प्रेम की पीर के अमर गायक–घनानन्द प्रेम की पीर के अमर गायक हैं। उनके प्रेम की पीड़ा लौकिक और अलौकिक दोनों ही हैं। उनका प्रेम सांसारिक रूप में उदित होकर असांसारिक बन गया है। सुजान के प्रति उत्पन्न हुआ प्रेम सांसारिक है, लेकिन सुजान के द्वारा कवि को दी गई फटकार और उससे उत्पन्न हुआ प्रेमोन्माद असांसारिकता की ओर मुड़ गया है। यह प्रेम कृष्ण-भक्ति भावना की तरह हो गया। इस प्रेम को भक्ति की शुद्ध और परिपक्व भावधारा कहा जा सकता है। इसे उन्होंने प्रेम का महासागरीय स्वरूप देते हुए राधा-कृष्ण को इस प्रेमधारा में अवगाहन करते हुए चित्रित किया है।

7. ब्रजभाषा प्रवीण कवि–घनानंद ने अपने भावों को व्यक्त करने के लिए सरस एवं सरल ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। उनकी ब्रजभाषा में सर्वत्र स्वच्छता एवं एकरूपता के दर्शन होते हैं। विद्वानों ने घनानंद को ब्रजभाषा का प्रवीण कवि कहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, "इनकी सी विशुद्ध सरस और शक्तिशाली ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विविधता के साथ-साथ इनकी भाषा में प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व बन पड़ा है। यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार उनका था वैसा और किसी कवि का नहीं।" उनके काव्य में अरबी-फारसी शब्दावली की भरमार मिलती है।

8. रस, छंद एवं अलंकार–घनानंद को रस की साक्षात मूर्ति माना गया है। उनका प्रमुख शृंगार रस है जिसका उन्होंने अत्यंत रमणीय चित्रण किया है। शब्द शक्तियों की दृष्टि से उन्होंने लक्षणा को अपनाया है। घनानंद के काव्य में सर्वत्र माधुर्य गुण विद्यमान है। अलंकारों की दृष्टि से अनुप्रास, रूपक, उपमा, अतिशयोक्ति, श्लेष, उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग हुआ है। कवित्त और सवैया घनानंद के प्रिय छंद है।

9. साहित्यिक महत्व–कविवर घनानन्द का रीतिकालीन कविता की रीतिमुक्त या स्वच्छन्द काव्यधारा में शिरोमणि स्थान है। यह महत्व उनके द्वारा चित्रित प्रेम के दोनों पक्षों लौकिक और अलौकिक से सम्बन्धित भावों की उन्मुक्तता और विश्वसनीयता के साथ-साथ प्रभावमयता के फलस्वरूप है। उनकी रचना उनकी स्वयं सवेद्य अनुभूति की वह अभिव्यक्ति है, जिससे उसमें कृत्रिमता का कहीं लेश नहीं है-

लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।

निष्कर्ष–अतः कहा जा सकता है कि घनानंद के काव्य का भाव पक्ष जितना उत्कृष्ट है उसी के समान कला पक्ष भी श्रेष्ठ है। अनुभूति की सत्यता, वेदना की गहराई और व्यथा की कसक उनके काव्य का प्राण है, तो भावों के अनुरूप चलने वाली उनकी भाषा उनके कथ्य को और भी श्रेष्ठ बना देती है। निःसंदेह घनानंद रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

2 **घनानन्द के काव्य की विशेषताएँ लिखिए।**

अथवा

घनानन्द के काव्य सौन्दर्य अथवा भाव व कला पक्ष पर प्रकाश डालिए।

अथवा

घनानन्द के प्रेम काव्य की विशेषताएँ लिखिए।

अथवा

घनानन्द की विरहानुभूति या विरह-वेदना की विवेचना कीजिए।

उत्तर–हिन्दी की सम्पूर्ण स्वच्छंद प्रेम काव्यधारा का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि इस धारा के प्रमु कवियों में से आलम, घनानंद, ठाकुर, बोधा और द्विजदेव के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी कवि प्रेमकाव्य के प्रमु प्रणेता हैं और इन्होंने स्वच्छंदता के साथ प्रेमानुभूति का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है, परन्तु इनमें से घनान सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

प्रमुख रचनाएँ–घनानंद की कुल 40 रचनाएँ मानी जाती हैं। 'सुजान हित' या 'सुजान सागर', 'वियोग-बेली', 'ब्रज-विलास 'प्रेम-सरोवर', 'गोकुल चरित्र', 'कृपा कंद', 'यमुना यश', 'इश्कलता' आदि घनानंद की प्रमुख रचनाएँ हैं।

साहित्यिक विशेषताएँ–घनानंद का रीतिमुक्त काव्यधारा में एक महत्वपूर्ण स्थान है। उनका संपूर्ण काव्य प्रेम की पं का काव्य है। उनके साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. स्वच्छंद प्रेम का वर्णन–घनानंद ने अपने काव्य में स्वच्छंद प्रेम का वर्णन किया है। उनके काव्य में चित्रित प्रे का संबंध हृदय से है न कि लक्षणों पर आधारित। ये वस्तुतः प्रेम की पीर के कवि हैं। अतः इनके प्रेम का स्वरूप ‍ अनूठा है। इनके प्रेम-वर्णन में किसी प्रकार का दुराव, छिपाव या बनावट नहीं है। वह नैसर्गिक प्रेम है। अपने इसी नैसर्गि प्रेम की व्यंजना करते हुए तथा चन्द्रमा और चकोर के नैसर्गिक प्रेम को उदाहरण बताते हुए लिखते हैं-

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै आनन्दघन,
प्रीति-रीति विषम सु रोम-रोम रमी है।
मोहिं तुम एक, तुम्हें मो सम अनेक आहिं
कहा कछू चंदहिं चकोरन की कमी है॥

2. अनन्य प्रेम निरूपण–प्रेम पथिक चाहे शरीर से दो दिखाई दें परंतु आत्मा से वे एक ही होते हैं। पूर्णत आत्मसमर्पण किए बिना प्रेम कैसा? घनानंद का प्रेम ऐसा ही है। कवि जानता है कि सुजान के प्रेम के लिए उस जैर कितने ही हैं फिर भी वह अपने से विचलित नहीं होता। वह एकनिष्ठ होकर प्रेम के मार्ग पर चलता रहता है। भर ही सुजान ने उसके साथ विश्वासघात किया परंतु उन्होंने इसकी परवाह नहीं की। वे विरह-वेदना से व्यथित नहीं होते सुजान के विरह में उनका तड़पना ही मानो उनके जीवन का आधार है। उनका प्रेम एकनिष्ठ, अंतर्मुखी एवं सच्चा प्रे है, उसमें बनावटीपन कहीं भी नहीं।

3. विरह वेदना की प्रधानता–घनानंद जी का काव्य मुख्य रूप से प्रेम की पीर का काव्य है। प्रेम के मार्ग प चलते हुए उन्हें सुजान से विश्वासघात मिला। परंतु वे अपने मन से कभी भी सुजान को भुला नहीं पाए। यही कारण है वि उनके काव्य में विरह-वेदना की प्रधानता नजर आती है। प्रकृति उनकी विरह को और अधिक तीव्र बना देती है। कोयल क कूकना ऐसा लगता है, जैसे वह उनके कलेजे को छील रही है-

कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि-कूकि अब ही करेजो किन कोरि लै।
पैडें परे पापी ये कलापी निस द्यौस ज्यौं ही,
चातक रे घातक ह्वै तू हू कान फोरि लै॥

4. अद्भुत सौंदर्य वर्णन–घनानंद का प्रेम रूपजन्य प्रेम है। कवि ने मुहम्मदशाह रंगीला के दरबार में सुजान नामक लड़की से प्रेम किया था और यह प्रेम इसलिए हुआ था क्योंकि सुजान एक अपूर्व सुंदरी थी। अतः उनके काव्य में सौंदर्य-वर्णन रीतिकालीन सामान्य सौंदर्य-वर्णन की भांति ही नजर आता है लेकिन जैसे-जैसे उनका लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम की ओर बढ़ने लगता है, सौंदर्य-वर्णन में उदात्तता नजर आने लगती है। एक उदाहरण देखिए-

झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजति काननि छ्वै।
हँसि बोलन में छवि फूलन की बरषा उर ऊपर जाति है ह्वै॥

(ख) घना...

5. **प्रकृति चित्रण**—घनानंद के काव्य में प्रकृति का विशद व व्यापक चित्रण हुआ है। उनके काव्य में प्रकृति का चित्रण अधिकांशतः उद्दीपन रूप में हुआ है। उन्होंने अपने प्रेम-विरह की व्यापकता को दिखाने के लिए प्रकृति का सहारा लिया है। वे अपनी प्रेयसी को अपना दुःख सुनाने के लिए बादल को संबोधित करते हुए कहते हैं-

परकाजहि देह को धारि फिरौ, परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन, मो अँसुवानहिं ले बरसौ॥

6. **भक्ति भावना**—घनानंद जी का काव्य भक्ति-भावना से ओतप्रोत है परंतु उनकी भक्ति-भावना सूरदास आदि भक्त कवियों के समान नहीं है क्योंकि भक्त कवियों के लिए भक्ति साध्य थी जबकि इनके लिए भक्ति मात्र कविता करने का एक साधन है। किंतु फिर भी अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर घनानंद जी सगुण भक्ति के अनेक सुंदर चित्र प्रस्तुत करते हैं। घनानंद जी श्रीकृष्ण की लीलास्थली ब्रज के प्रति अपनी भक्ति-भावना व्यक्त करते हुए लिखते हैं-

सब ते अगम अगोचर ब्रजरस।
रसना कहि न सकति जाको जस॥

7. **गहरी अनुभूतियों का काव्य**—इनका काव्य गहरी अनुभूतियों का काव्य है। इनकी अनुभूति कृत्रिम नहीं बल्कि स्व-अर्जित अनुभवों से युक्त है। इसी संदर्भ में दिनकर लिखते हैं—"दूसरों के लिए किराए पर आँसू बहाने वालों के बीच यह एक ऐसा कवि है जो सचमुच अपनी पीड़ा में ही रो रहा है।"

8. **निश्छल प्रेम की अभिव्यक्ति**—लौकिक प्रेम विश्वास और निष्कपटता की मांग करता है। घनानंद ऐसे ही सच्चे प्रेमी थे। उनका प्रेम अपनी प्रेमिका के प्रति निश्चल और निष्कपट था। भले ही उनके प्रिय ने उनके साथ विश्वासघात किया, उन्हें दगा दी और उनका साथ नहीं दिया, किंतु वे एक निश्चल प्रेमी थे और प्रेम के पक्ष में निश्छलता एवं निष्कपटता को ही अत्यधिक महत्व देते थे। प्रेम की इसी निश्छलता को इस बहुत प्रसिद्ध पद में अभिव्यक्त करते हैं, इसमें प्रेम की सघन और मार्मिक परिभाषा प्रस्तुत की है। इस तरह की प्रेम की परिभाषा हिन्दी साहित्य में अन्यत्र उपलब्ध नहीं होती है-

अति सूधो सनेह कौ मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलै तजि आपुनपो झिझके कपटी जे निसाँक नहीं॥
घन आनन्द प्यारे सुजान सुनौ इत एक ते दूसरौ आँक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढे हो लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

9. **वियोग वर्णन की प्रधानता**—घनानंद मूलतः वियोग के कवि हैं। सुजान के प्रति जो इन्होंने विरह भोगा है वह इनके काव्य का मूल भाव है। ये वियोग श्रृंगार के प्रधान कवि हैं।

10. **प्रेम की एकनिष्ठता**—इनका श्रृंगार वर्णन अत्यंत गहरा व एकनिष्ठता से युक्त है। सुजान के रूप-सौंदर्य, लज्जा, व्यवहार आदि का अत्यंत मार्मिकता के साथ अंकन किया है। इनका काव्य प्रेम की एकनिष्ठता की प्रस्थापना करता है-

अति सुधो सनेह को मारग है जहँ नेकु सयानप बांक नहीं।"

11. **अलौकिक प्रेम वर्णन**—इनका लौकिक प्रेम वर्णन अंत में अलौकिक रूप प्राप्त कर लेता है। सुजान के प्रति जो लौकिक प्रेम था वह कृष्ण-राधा के प्रति अलौकिक स्तर पर व्यक्त होने लगा-

मेरी रूप अगाधे राधे, राधे, राधे, राधे, राधे।
तेरी मिलिवे को ब्रजमोहन, बहुत जतन हैं साधे॥

11. **सादगी और मार्मिकता**—घनानंद के विरह-वर्णन की सर्वोपरि विशेषता उसकी सादगी और मार्मिकता है। उसमें अन्य रीतिकालीन कवियों के समान विरह को शब्दजाल का तमाशी नहीं बनाया गया है। निरंतर वन की ओर ताकना, रातें तारे गिनते हुए बिताना, सामने आने पर भी अपने मनभावन को जी भर कर न देख पाना और निरंतर उनकी प्रतीक्षा में आँखें बिछाए रहना आदि चेष्टाएँ वियोग श्रृंगार का सर्वांगपूर्ण चित्र प्रस्तुत कर रही हैं।

12. **भाषा शैली**—घनानंद जी का काव्य साहित्यिक ब्रजभाषा में लिखित है। उनकी भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज आदि सभी प्रकार के शब्दों का सुंदर समन्वय मिलता है। उनकी भाषा में माधुर्य गुण सर्वत्र व्याप्त है। मधुरता और लालित्य के कारण उनके काव्य की भाषा अत्यंत आकर्षक बन पड़ी है। उनका अधिकांश काव्य संबोधन शैली में है।

13. **छन्द व अलंकारों का प्रयोग**—घनानंद जी ने अपने काव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों प्रकार के अलंकारों का सुंदर प्रयोग किया है। उनके काव्य में मुख्यतः अनुप्रास, यमक, वक्रोक्ति, रूपक, उपमा, प्रतीप, विशेषोक्ति, विभावना आदि अलंकारों का प्रयोग मिलता है। उन्होंने अपने काव्य में सवैया और कवित्त छंदों का प्रयोग किया है।

निष्कर्ष–घनानंद रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्यधारा के शिखर पुरुष हैं। हिन्दी साहित्य में ये 'प्रेम की पीर' के के रूप में प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि घनानंद के यहाँ संवेदना व शिल्प दोनों स्तरों पर प्रयोगशीलता, सहज मौलिकता के दर्शन होते हैं। घनानंद का विरह-वर्णन अपने आप में अनूठा है, ब्रज भाषा की अनुपम निधि है।

3 रीतिमुक्त कवि घनानन्द की सौंदर्य चेतना का उद्घाटन कीजिए।

उत्तर–रीतिकाल के कवि घनानन्द, प्रेम और सौंदर्य के मार्मिक चितेरे हैं। उनकी सौंदर्य चेतना प्रेम की गहराई अनुभवों पर आधारित है, जिसमें उन्होंने अपनी प्रेयसी सुजान के रूप-सौंदर्य को न केवल बाह्य दृष्टि से बल्कि आंतरिक अनुभूतियों से भी चित्रित किया। उनकी काव्य-चेतना में सौंदर्य का चित्रण अत्यंत सजीव, संवेदनशील और मनोहारी विद्वानों का मत है कि सौंदर्य वस्तु में नहीं, बल्कि द्रष्टा की दृष्टि में होता है। इसी दृष्टि से घनानन्द ने सौंदर्य के भौतिक और भावनात्मक पक्षों को अपने काव्य में जोड़ा है। घनानन्द की सौंदर्य चेतना की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. प्रेम और सौंदर्य का गहन संबंध–घनानन्द, रीतिकाल के प्रमुख कवियों में से एक, सौंदर्य चेतना के कवि थे। उनकी रचनाओं में सौंदर्य के प्रति गहरी संवेदनशीलता और विशिष्ट दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। उन्होंने अपने काव्य में न केवल बाह्य सौंदर्य का वर्णन किया, बल्कि आंतरिक सौंदर्य, प्रेम और भावनाओं को भी विशेष रूप से अभिव्यक्त किया। घनानन्द का सौंदर्य प्रेम-जन्य है। उन्होंने अपनी प्रेयसी सुजान के प्रति प्रेम को सौंदर्य की अनुभूति का आधार बनाया। उनकी पंक्तियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि सौंदर्य और प्रेम एक-दूसरे के पूरक हैं-

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो-नयो लागत ज्यों-ज्यों निहारियै।

2. रूप-सौंदर्य का जीवंत चित्रण–घनानन्द ने सुजान के नख से शिख तक के रूप-सौंदर्य का अत्यंत सूक्ष्म और रंगीन चित्रण किया। उनके अनुसार, सौंदर्य इतना अभिव्यक्तिपूर्ण है कि उसे शब्दों में बांधना कठिन है। इस विवशता को उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया-

पानिप अपार घनानन्द उकति ओछी जतन जुगति जोन्ह कौन पै नपति है।

3. अंग-प्रत्यंग का वर्णन–रीतिकालीन परंपरा के अनुसार, घनानन्द ने प्रेयसी के विभिन्न अंगों का मनोरम वर्णन किया। उनके नेत्रों, कपोलों, दंत-पंक्तियों और कटि का चित्रण अत्यंत रसीला और सजीव है। उदाहरण के लिए देखिए जो यह वर्णन सौंदर्य की मनोहारी छवि प्रस्तुत करता है-

लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाय-भरी,
लसति ललित लोल-चख तिरछनि मैं।
दसन-दमक फैली हिये मोती-माल होति।

4. गतिशीलता में सौंदर्य–घनानन्द के अनुसार, सौंदर्य स्थिर नहीं है, यह गतिशील है। नायिका के रूप-सौंदर्य में यह गतिशीलता ही उसे अद्वितीय बनाती है। इस भाव को उन्होंने इन पंक्तियों में व्यक्त किया है-

निरखि सुजान प्यारे रावरो रुचिर रूप, बावरो भयो है मन मेरो न सिखौ सुनै।"

5. विरह और सौंदर्य का तादात्म्य–घनानन्द ने अपने काव्य में वियोग के क्षणों में भी सौंदर्य की अनुभूति को चित्रित किया। प्रेयसी से दूर होकर भी उनकी छवि कवि के मन-मस्तिष्क में बनी रहती है। उन्होंने लिखा है-

दृग छाकत हैं छवि ताकत ही मृगनैनी जबै मधुयान छकै।"

6. सौंदर्य का भावात्मक दृष्टिकोण–रीतिकालीन कवियों में घनानन्द अपनी अनूठी सौंदर्य चेतना के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके काव्य में सौंदर्य केवल बाह्य रूप-लावण्य तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें प्रेम, आत्मीयता, और आंतरिक संवेदनाओं का व्यापक समावेश है। उन्होंने अपने अनुभवों और भावनाओं को अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त करते हुए सौंदर्य को एक गहन और जीवनदायी तत्व के रूप में प्रस्तुत किया। घनानन्द का रूप-सौंदर्य वर्णन केवल मांसल नहीं है; इसमें भावनाओं और संवेदनाओं की प्रधानता है। उनकी सौंदर्य चेतना में पवित्रता और भावनात्मकता का मेल है।

आनन्द की निधि जगमगाति छबीली बाल।

7. **प्रकृति और सौंदर्य**–प्रकृति का सौंदर्य भी उनके काव्य में प्रेम और सौंदर्य की अनुभूति को गहराई देता है। फूलों की महक, चंद्रमा की छवि, और बसंती हवा उनके प्रेम के सौंदर्य को और बढ़ा देती है। यह उनके काव्य को व्यापकता प्रदान करता है। कोयल की कूक घनानन्द की विरहाग्नि को ओर अधिक उद्दीप्त कर देती है-

कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि-कूकि अब ही करेजो किन कोरि लै।
पैडें परे पापी ये कलापी निस द्यौस ज्यौं ही,
चातक रे घातक ह्वै तू हू कान फोरि लै॥

8. **सौंदर्य का आध्यात्मिक और पवित्र दृष्टिकोण**–उन्होंने न केवल बाह्य सौंदर्य का वर्णन किया, बल्कि प्रेम, भावना, और आध्यात्मिकता को सौंदर्य के साथ जोड़ा। उनके काव्य में संवेदना और रस की गहराई है, जो आज भी पाठकों के हृदय को स्पर्श करती है। घनानन्द ने अपने काव्य में सौंदर्य को आध्यात्मिकता और पवित्रता से जोड़ा। उनके लिए सौंदर्य केवल दृश्य नहीं, बल्कि आत्मा का अनुभव है। कवि के लिए सुजान का सौन्दर्य भगवान श्रीकृष्ण का सौन्दर्य है।

निष्कर्ष–घनानन्द की सौंदर्य चेतना उनकी प्रेम-भावना और अनुभवों की गहराई में समाहित है। उनकी प्रेयसी सुजान उनके लिए सौंदर्य की साक्षात मूर्ति थी। उन्होंने सौंदर्य को केवल बाहरी रूप में नहीं, बल्कि भावनात्मक और आध्यात्मिक रूप में चित्रित किया। उनके काव्य में सौंदर्य का चित्रण अत्यंत प्रभावी, सजीव और आकर्षक है। यही कारण है कि उनका सौंदर्य दृष्टिकोण रीतिकालीन साहित्य में अद्वितीय स्थान रखता है।

❐

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रेम की पीर का कवि किसे माना जाता है?

उत्तर– रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि घनानंद को।

2. घनानंद का जन्म कब और कहाँ हुआ था?

उत्तर– घनानंद का जन्म सन् 1683 (संवत 1740) में हुआ था परन्तु इनका जन्म स्थान अज्ञात है और कुछ विद्वानों का मानना है की इनका जन्म दिल्ली के आस-पास हुआ था।

3. घनानंद की रचनाएँ कौन सी है?

उत्तर– घनानंद की रचनाएँ हैं–'सुजान सागर', 'घनानन्द कवित्त', 'रसकेलि वल्ली', 'सुजान हित', 'इश्कलता' आदि।

4. घनानंद की नायिका या प्रेयसी का क्या नाम है?

उत्तर– सुजान।

5. सुजान किसकी प्रेमिका थी?

उत्तर– घनानंद की।

6. घनानंद को 'प्रेम की पीर का कवि' क्यों कहा जाता है?

उत्तर– घनानंद को 'प्रेम की पीर का कवि' इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह अपनी प्रेमिका सुजान से बेवफाई पाने के बाद जीवनभर दुःख एवं पीड़ा में रहे और अपनी रचनाओ में सुजान का जिक्र किया।

7. घनानंद किस काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं?

उत्तर– रीतिमुक्त काव्यधारा के।

8. घनानन्द की जन्म व मृत्यु का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– अधिकांश विद्वानों द्वारा घनानंद का जन्म संवत् 1740 में तथा मृत्यु संवत् 1817 में स्वीकार की गई है।

9. घनानन्द को अन्य किन नामों से जाना जाता है?

उत्तर– घनानंद के अनेक नाम प्राप्त हुए हैं जैसे कि आनंदघन, घन आनंद, घनानंद आदि।

10. घनानंद के गुरु का नाम लिखिए।

उत्तर– जनश्रुति के आधार पर अबुल फजल इनके गुरु माने जाते हैं।

11. **घनानंद ने किस शासक के मीर मुंशी अथवा खास कलम के पद पर काम किया था?**

उत्तर– घनानंद दिल्ली के शासक मोहम्मदशाह रंगीला के मीर मुंशी अथवा खास कलम के पद पर रहे थे।

12. **घनानंद के काव्य में प्रयुक्त 'सुजान' शब्द किसका अर्थ द्योतन करवाता है?**

उत्तर– घनानंद के काव्य में 'सुजान' शब्द का प्रयोग बार-बार हुआ है जिसका अर्थ उनकी प्रेमिका सुजान के रूप में, प्रिय, चतुर, नागर कृष्ण के रूप में भी किया जाता है।

13. **घनानंद की कविताओं को 'घनानंद कवित्त' के नाम से किसने संग्रहीत किया था?**

उत्तर– ब्रजनाथ नामक व्यक्ति ने।

14. **विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने घनानंद की प्रसिद्धि का आधार किन काव्य रचनाओं को माना है?**

उत्तर– विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'सुजान हित' और 'पदावली' को घनानंद की प्रसिद्धि का आधार माना है।

15. **घनानन्द की काव्यभाषा का उल्लेख कीजिए।**

उत्तर– ब्रजभाषा।

16. **घनानंद के काव्य की विशेषताएँ लिखिए।**

उत्तर– घनानंद के काव्य की विशेषताएँ हैं–स्वच्छंद प्रेम का वर्णन, विरह वेदना की प्रधानता, प्रकृति चित्रण, गहरी अनुभूति का काव्य, निश्छल प्रेम की अभिव्यक्ति, वियोग वर्णन की प्रधानता, प्रेम की एकनिष्ठता, अलौकिक प्रेम-वर्णन सादगी और मार्मिकता, ब्रजभाषा का प्रयोग आदि।

17. **"लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावत"-किस कवि की उक्ति है?**

उत्तर– रीतिमुक्त कवि घनानन्द की।

18. **घनानंद के काव्य में किस गुण और रस की प्रधानता है?**

उत्तर– घनानंद के काव्य में सर्वत्र माधुर्य गुण और वियोग शृंगार रस की प्रधानता है।

19. **घनानंद के प्रिय छंद कौनसे हैं?**

उत्तर– कवित्त और सवैया घनानंद के प्रिय छंद हैं।

20. **रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवियों के नाम लिखिए।**

उत्तर– रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवियो में से आलम, घनानन्द, ठाकुर, बोधा और द्विजदेव के नाम उल्लेखनीय हैं।

21. **घनानन्द किस सम्प्रदाय में दीक्षित थे?**

उत्तर– निम्बार्क सम्प्रदाय में।

22. **घनानन्द ने प्रेम के मार्ग को कैसा बताया है?**

उत्तर– घनानन्द ने प्रेम के मार्ग को सीधा-सादा बताया है जिसमें चालाकी, धूर्तता और कपट का किंचित मात्र भी स्थान नहीं है।

23. **"अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं"–किसका कथन है?**

उत्तर– रीतिमुक्त कवि घनानन्द का।

24. **घनानन्द के काव्य में शृंगार के किस पक्ष की प्रधानता है?**

उत्तर– वियोग पक्ष की।

25. **घनानन्द की काव्य-भाषा कौन सी थी?**

उत्तर– घनानन्द की भाषा परिष्कृत और साहित्यिक ब्रजभाषा है। उसमें कोमलता और मधुरता का चरम विकास दिखाई देता है।

26. **घनानन्द के काव्य की मूल संवेदना क्या है?**

उत्तर– घनानन्द के काव्य की मूल संवेदना प्रेम है।

27. **घनानन्द के प्रेम की कसौटी क्या है?**

उत्तर– घनानन्द की विरहानुभूति प्रेम की कसौटी है। जो विरही इस कसौटी पर खरा उतरता है, वही सच्चा प्रेमी माना जाता है, क्योंकि प्रेम का सात्विक रूप विरह है, जबकि संयोग प्रेम का राजस रूप है।

(ख) घनानन्द के विरह वर्णन की विशेषता लिखिए।

28. घनानन्द के विरह वर्णन की विशेषता लिखिए।

उत्तर– घनानन्द एह विरही कवि हैं, जिनके हृदय में अपनी प्रेयसी 'सुजान' की उत्कट विरह-भावना भरी हुई है। घनानन्द के विरह में हृदय की उद्दाम लालसा एवं उत्कण्ठा का प्राधान्य है, उसमें अनुभूति की तीव्रता है, अन्त:करण की सात्विक वेदना का आधिक्य है और बाह्य आडम्बर लेशमात्र भी नहीं है।

29. **घनानन्द का प्रिय अलंकार कौन सा है?**

उत्तर– अनुप्रास अलंकार घनानंद का प्रिय अलंकार है। घनानंद ने यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा और विरोधाभास आदि अलंकारों का भी सटीक प्रयोग किया है।

30. **'घनानन्द ग्रंथावली' पुस्तक के संपादक कौन है?**

उत्तर– घनानन्द ग्रंथावली के संपादक आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र हैं।

31. **घनानन्द के प्रेम को विशेष प्रेम क्यों कहा जाता है?**

उत्तर– उनके इस प्रेम में स्वानुभूति की तीव्रता भरी हुई है और वह उनके व्यक्तित्व के संस्पर्श से और भी अधिक दिव्य एवं अलौकिक बन गई है।

32. **घनानन्द का काव्य किस कोटि में रखा जाता है?**

उत्तर– मुक्तक काव्य की श्रेणी में।

33. **घनानन्द के प्रेम की विशेषता बताइए।**

उत्तर– एकनिष्ठ प्रेम व विरह-भावना की तीव्रता।

34. **कवि घनानन्द के अनुसार प्रेम का मार्ग कैसा होता है?**

उत्तर– कवि के अनुसार प्रेम का मार्ग अत्यंत सीधा, सरल और कपटहीन होता है। इसमें कोई चालाकी या स्वार्थ नहीं चलता।

35. **'कौनसी पाटी पढ़े हो लला' कहकर कवि घनानन्द क्या व्यंग्य करते हैं?**

उत्तर– कवि व्यंग्य करता है कि प्रेयसी ने ऐसी कौन-सी शिक्षा ली है कि वह प्रेम (मन) लेकर भी स्नेह की एक झलक नहीं देती। यह उसकी उपेक्षा और भावशून्यता पर करारा कटाक्ष है।

36. **कवि घनानन्द के अनुसार 'झझकें कपटी जे निसाँक नहीं' का क्या अर्थ है?**

उत्तर– इसका अर्थ है कि जो लोग कपटी होते हैं, वे प्रेम मार्ग पर आगे नहीं बढ़ पाते। वे झिझकते हैं क्योंकि उनके पास प्रेम की सच्चाई नहीं होती।

37. **कवि घनानन्द के सवैयों में कवि का भावपक्ष कैसा है?**

उत्तर– इन सवैयों में कवि की भावभिव्यक्ति करुणा, उपालंभ और तीखे प्रेम-व्यंग्य से युक्त है। वह नि:स्वार्थ प्रेम के पक्ष में है और प्रिय की कठोरता से आहत है।

38. **कवि घनानन्द को नायिका का रूप कैसा प्रतीत होता है?**

उत्तर– कवि को नायिका का रूप हर बार नया-नया लगता है। वह बार-बार देखने पर भी तृप्त नहीं होता।

39. **कवि घनानन्द ने नायिका की आँखों की कौन-सी विशेषता बताई है?**

उत्तर– कवि के अनुसार, नायिका की आँखों की बाण-सी मार अनोखी है। वे इतनी आकर्षक हैं कि उन्हें देखने पर भी मन नहीं भरता।

40. **कवि घनानन्द के सवैये में कवि की मन:स्थिति कैसी है?**

उत्तर– कवि की मन:स्थिति प्रेम में पागलपन की हद तक पहुँच चुकी है। वह प्रेम में पूरी तरह हार चुका है और नायिका के रूप-सौंदर्य में बंध गया है।

□□

4.1

आधुनिक हिंदी कविता : मैथिलीशरण गुप्त

नर हो, न निराश करो....

कविता-परिचय–'नर हो, न निराश करो....' राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त विरचित एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथा चर्चित कविता है, जो उनके काव्य संग्रह 'मंगल घट' में 'स्वर्गीय संगीत' नाम से संकलित चार कविताओं में से दूसरी है। इस कविता में उन्होंने मनुष्य को कर्मशील बनने तथा निराशा का त्याग करने का संदेश दिया है।

व्याख्या भाग

1 **नर हो, न निराश करो मन को।**
कुछ काम करो, कुछ काम करो,
जग में रहके निज नाम करो।
यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो,
समझो जिसमें यह व्यर्थ न हो।
कुछ तो उपयुक्त करो तन को,
नर हो, न निराश करो मन को।।

शब्दार्थ : नर = मनुष्य। **निराश** = उदास। **जग** = संसार। **निज** = अपना। **अर्थ** = उद्देश्य, अभिप्राय। **व्यर्थ** = बेकार। **उपयुक्त** = उचित। **तन** = शरीर।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल एवं आधुनिक काल)'** में संकलित कविता **'नर हो, न निराश करो....'** से अवतरित है। इसके रचियता **राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हैं।** मूल रूप से यह कविता उनके काव्य-संग्रह 'मंगल घट' में संकलित है। इस कविता के माध्यम से कवि ने मनुष्य को अपने को निराशा से दूर रखते हुए कर्मशील होने का संदेश दिया है।

व्याख्या–इन पंक्तियों में कवि मनुष्य को निराशा से दूर तथा कर्मशील होने का संदेश देते हुए कहता है कि हे लोगो! तुम मनुष्य हो। तुम्हें अपने मन में निराशा का भाव नहीं आने देना चाहिए। तुम्हें निरंतर किसी न किसी काम में संलग्न रहते हुए इस संसार में रहकर अपना नाम करना चाहिए। तुम्हें इस बात पर विचार करना चाहिए कि इस संसार में तुम्हारा जन्म किस उद्देश्य से हुआ है। तुम्हें अपने जीवन के उद्देश्य को समझ लेना चाहिए ताकि तुम्हारा जीवन व्यर्थ में ही नष्ट न हो जाए। तुम्हें अपने इस मानव शरीर का उचित उपयोग करना चाहिए। तुम मनुष्य हो, तुम्हें अपने मन में निराशा का भाव नहीं आने देना चाहिए।

विशेष–1. मनुष्य को निराशा से दूर रहकर कर्मशील होने की प्रेरणा दी गयी है।

2. भाषा अत्यंत सरल, सहज एवं भावपूर्ण खड़ी बोली है।
3. तत्सम एवं तद्भव शब्दावली का **प्रयोग** है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र **व्याप्त है।**
5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।
6. उपदेशात्मक शैली तथा पादाकुलक छंद का प्रयोग है।

2

संभलो कि सुयोग न जाए चला,
कब व्यर्थ हुआ सदुपाय भला।
समझो जग को न निरा सपना,
पथ आप प्रशस्त करो अपना।
अखिलेश्वर हैं, अवलंबन को,
नर हो न निराश करो मन को।।

शब्दार्थ : संभलो = सावधान रहो। **सुयोग** = अच्छा अवसर। **सदुपाय** = अच्छा उपाय। **जग** = संसार। **पथ** = मार्ग। **प्रशस्त** = प्रशंसनीय, उत्तम, सुन्दर। **अखिलेश्वर** = समस्त संसार का ईश्वर। **अवलंबन** = सहारा।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल एवं आधुनिक काल)'** में संकलित कविता **'नर हो, न निराश करो....'** से अवतरित है। इसके रचियता **राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त** हैं। मूल रूप से यह कविता उनके काव्य-संग्रह 'मंगल घट' में संकलित है। इस कविता के माध्यम से कवि ने मनुष्य को अपने को निराशा से दूर रखते हुए कर्मशील होने का संदेश दिया है।

व्याख्या–इन पंक्तियों में कवि मनुष्यों को संबोधित करते हुए कहता है कि हे मनुष्यो! इससे पहले कि तुम्हारे जीवन में आया हुआ अच्छा अवसर चला जाए, तुम संभल जाओ अर्थात् उस अच्छे अवसर का लाभ उठालो। इस संसार में जो कोई भी अच्छा उपाय अर्थात् कार्य करता है, वह कभी भी निष्फल नहीं होता है। तुम इस संसार को केवल सपनों का ही संसार मत समझो, अपितु अपने मार्ग को श्रेष्ठ अथवा प्रशंसित मार्ग बनाकर दिखाओ। जब तुम कार्य में प्रवृत्त होगे तो संसार के स्वामी अर्थात् ईश्वर स्वयं ही तुम्हारा सहारा बन जाएंगे। तुम मनुष्य हो, तुम्हें अपने मन में निराशा का भाव नहीं आने देना चाहिए।

विशेष–1. कवि ने कर्मशील बनने तथा सुअवसरों का उपयोग करने का संदेश दे दिया है।
2. भाषा अत्यंत सरल, सहज एवं भावपूर्ण खड़ी बोली है।
3. तत्सम एवं तद्भव शब्दावली का प्रयोग है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास एवं प्रश्न अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. उपदेशात्मक शैली तथा पादाकुलक छंद का प्रयोग है।

3

जब प्राप्त तुम्हें सब तत्त्व यहाँ,
फिर जा सकता वह सत्त्व कहाँ।
तुम स्वत्व सुधा रस पान करो,
उठके अमरत्व विधान करो।
दवरूप रहो भव कानन को,
नर हो, न निराश करो मन को।।

शब्दार्थ : तत्त्व = साधन। **सत्त्व** = शुद्धता, पवित्रता, सच्चाई, अच्छाई। **स्वत्व** = अस्तित्व। **सुधा** = अमृत। **अमरत्व** = अमर होने का भाव। **दवरूप** = जंगल की आग की छवि। **भव-कानन** = संसार रूपी जंगल।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल एवं आधुनिक काल)'** में संकलित कविता **'नर हो, न निराश करो....'** से अवतरित है। इसके रचियता **राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त** हैं। मूल रूप से यह कविता उनके काव्य-संग्रह 'मंगल घट' में संकलित है। इस कविता के माध्यम से कवि ने मनुष्य को अपने को निराशा से दूर रखते हुए कर्मशील होने का संदेश दिया है।

व्याख्या–इन पंक्तियों में कवि मनुष्यों को संबोधित करता हुआ कहता है कि हे मनुष्यो! जब इस संसार में रहते हुए तुम्हें ईश्वर प्रदत्त सभी तत्व अर्थात् साधन प्राप्त हैं, ऐसी स्थिति में तुम्हारी शुद्धता, तुम्हारी कर्मशीलता, तुम्हारी अच्छाई कहीं नहीं जा सकती है। तुम अपने अस्तित्व रूपी अमृतरस का पान करते रहो और ऐसे कार्य करते रहो जिससे तुम्हें अमरता प्राप्त हो सके। तुम अपनी जंगल की आग वाली छवि अर्थात् अपनी चमक से संसार रूपी जंगल को आभासित करते रहो। तुम मनुष्य हो, तुम्हें अपने मन में निराशा का भाव नहीं आने देना चाहिए।

विशेष–1. मनुष्य को कर्मशील बनने तथा अपने अस्तित्व के विस्तार का उपदेश दिया गया है।

2. भाषा अत्यंत सरल, सहज एवं भावपूर्ण खड़ी बोली है।
3. तत्सम एवं तद्भव शब्दावली का प्रयोग है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास एवं रूपक अलंकारों का प्रयोग है।
6. उपदेशात्मक शैली तथा पादाकुलक छंद का प्रयोग है।

4

निज गौरव का नित ज्ञान रहे,
हम भी कुछ हैं यह ध्यान रहे।
मरणोत्तर गुंजित गान रहे,
सब जाय अभी पर मान रहे।
कुछ हो, न तजो निज साधन को
नर हो, न निराश करो मन को।।

शब्दार्थ : निज = अपना। **गौरव** = महत्त्व, बड़प्पन। **नित** = हमेशा। **मरणोत्तर** = मरने के बाद। **गुंजित** = गूँजना। **गान** = गीत। **मान** = गर्व। **तजो** = त्यागो।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल एवं आधुनिक काल)'** में संकलित कविता **'नर हो, न निराश करो....'** से अवतरित है। इसके रचियता **राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त** हैं। मूल रूप से यह कविता उनके काव्य-संग्रह 'मंगल घट' में संकलित है। इस कविता के माध्यम से कवि ने मनुष्य को अपने को निराशा से दूर रखते हुए कर्मशील होने का संदेश दिया है।

व्याख्या–इन पंक्तियों में कवि मनुष्यों को संबोधित करते हुए कहता है कि हे मनुष्यो! तुम्हें अपने महत्त्व, अपने बड़प्पन की जानकारी हमेशा रहनी चाहिए। तुम भी इस संसार में महत्त्वपूर्ण हो, यह बात हमेशा तुम्हारे ध्यान में रहनी चाहिए। तुम्हें सदैव यह प्रयास करना चाहिए कि मृत्यु के उपरांत भी तुम्हारे यश का गीत गूंजता रहे। चाहे तुम्हारा सब कुछ नष्ट हो जाए, परन्तु तुम्हारा मान, तुम्हारा गर्व कभी नष्ट नहीं होना चाहिए। चाहे तुम्हारे जीवन में कैसी भी मुसीबत आ जाए, तुम्हें अपने कर्म रूपी साधन का त्याग नहीं करना चाहिए। तुम मनुष्य हो, तुम्हें अपने मन में निराशा का भाव कभी नहीं आने देना चाहिए।

विशेष–1. मनुष्य को सतत कर्मशील बनने तथा अपने महत्त्व का ज्ञान रखने का उपदेश दिया गया है।

2. भाषा अत्यंत सरल, सहज एवं भावपूर्ण खड़ी बोली है।
3. तत्सम एवं तद्भव शब्दावली का प्रयोग है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।
6. उपदेशात्मक शैली तथा पादाकुलक छंद का प्रयोग है।

5 **प्रभु ने तुमको दान किए**
सब वांछित वस्तु विधान किए
तुम प्राप्त करो उनको न अहो
फिर है यह किसका दोष कहो
समझो न अलभ्य किसी धन को
नर हो, न निराश करो मन को।।

शब्दार्थ : वांछित = आवश्यक। **दोष** = कमी। **अलभ्य** = अप्राप्य। **धन** = सम्पत्ति।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल एवं आधुनिक काल)'** में संकलित कविता **'नर हो, न निराश करो....'** से अवतरित है। इसके रचियता **राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त** हैं। मूल रूप से यह कविता उनके काव्य-संग्रह 'मंगल घट' में संकलित है। इस कविता के माध्यम से कवि ने मनुष्य को अपने को निराशा से दूर रखते हुए कर्मशील होने का संदेश दिया है।

व्याख्या–इन पंक्तियों में कवि मनुष्यों को संबोधित करते हुए कहता है कि हे मनुष्यो! ईश्वर ने तो तुम्हें सभी प्रकार के दान दिए हैं, तुम्हारे लिए आवश्यक सभी वस्तुओं को संसार में उपलब्ध कराया है। यदि तुम अपनी अकर्मण्यता के चलते उन पदार्थों को प्राप्त नहीं कर पाते हो तो तुम्हीं बताओ कि इसमें किसकी कमी है। अर्थात् यह तुम्हारी ही कमी है। हे मनुष्यो! तुम किसी भी प्रकार की सम्पत्ति को अप्राप्य मत समझो। तुम मनुष्य हो, तुम्हें अपने मन में निराशा का भाव नहीं आने देना चाहिए।

विशेष–1. कवि ने तुलसीदास की इस पंक्ति को चरितार्थ किया है–

"सकल पदारथ हैं जग माहीं,
कर्म हीन नर पावत नाहीं।।"

2. भाषा अत्यंत सरल, सहज एवं भावपूर्ण खड़ी बोली है।
3. तत्सम एवं तद्भव शब्दावली का प्रयोग है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।
6. उपदेशात्मक शैली तथा पादाकुलक छंद का प्रयोग है।

6 **किस गौरव के तुम योग्य नहीं**
कब कौन तुम्हें सुख भोग्य नहीं
जन हो तुम भी जगदीश्वर के
सब हैं जिसके अपने घर के
फिर दुर्लभ क्या उसके जन को
नर हो, न निराश करो मन को।।

शब्दार्थ : गौरव = महत्त्व, बड़प्पन। **भोग्य** = उपभोग करने योग्य। **जगदीश्वर** = संसार का स्वामी। **दुर्लभ** = अप्राप्त।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल एवं आधुनिक काल)'** में संकलित कविता **'नर हो, न निराश करो....'** से अवतरित है। इसके रचियता **राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त** हैं। मूल रूप से यह कविता उनके काव्य-संग्रह 'मंगल घट' में संकलित है। इस कविता के माध्यम से कवि ने मनुष्य को अपने को निराशा से दूर रखते हुए कर्मशील होने का संदेश दिया है।

व्याख्या–इन पंक्तियों में कवि मनुष्यों को संबोधित करते हुए कहता है कि हे मनुष्यो! ऐसा कौन-सा महत्त्व या बड़प्पन है कि तुम जिसके योग्य नहीं हो। संसार का ऐसा कोई सुख नहीं है, जिसे तुम भोग नहीं सकते हो। तुम भी ईश्वर के ही बनाए हुए मानव हो। जिस तरह से संपूर्ण जड़-जगत ईश्वर का बनाया हुआ है, उसी तरह तुम भी उसी के घर के हो अर्थात् उसी के

बनाए हुए हो। ऐसी स्थिति में तुम्हीं बताओ कि इस संसार में ऐसा क्या है जिसे तुम प्राप्त नहीं कर सकते हो। कहने का भाव है कि मनुष्य अपनी कर्मशीलता से संसार में ईश्वर प्रदत्त सभी सुखों को, वस्तुओं को प्राप्त कर सकता है। कवि कहता है कि, मनुष्यो! तुम मनुष्य हो, तुम्हें अपने मन में निराशा का भाव नहीं आने देना चाहिए।

विशेष–1. कर्मशीलता का महत्त्व बताया गया है।

2. भाषा अत्यंत सरल, सहज एवं भावपूर्ण खड़ी बोली है।
3. तत्सम एवं तद्भव शब्दावली का प्रयोग है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास एवं प्रश्नालंकारों का प्रयोग है।
6. उपदेशात्मक शैली तथा पादाकुलक छंद का प्रयोग है।

7

करके विधि वाद न खेद करो
निज लक्ष्य निरंतर भेद करो
बनता बस उद्यम ही विधि है
मिलती जिससे सुख की निधि है
समझो धिक् निष्क्रिय जीवन को
नर हो, न निराश करो मन को
कुछ काम करो, कुछ काम करो।।

शब्दार्थ : विधि-वाद = भाग्य संबंधी विवाद। **खेद** = दुःख। **लक्ष्य** = उद्देश्य। **निरंतर** = लगातार। **भेद** = पूरा करना। **उद्यम** = परिश्रम। **विधि** = भाग्य। **निधि** = खजाना। **धिक्** = धिक्कार योग्य। **निष्क्रिय** = कर्महीन।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश हमारे हिन्दी पाठ्यक्रम **'हिन्दी कविता (मध्यकाल एवं आधुनिक काल)'** में संकलित कविता **'नर हो, न निराश करो....'** से अवतरित है। इसके रचियता **राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त** हैं। मूल रूप से यह कविता उनके काव्य-संग्रह 'मंगल घट' में संकलित है। इस कविता के माध्यम से कवि ने मनुष्य को अपने को निराशा से दूर रखते हुए कर्मशील होने का संदेश दिया है।

व्याख्या–इन पंक्तियों में कवि मनुष्यों को संबोधित करते हुए कहता है कि हे मनुष्यो! तुम अपने भाग्य को लेकर कि मेरा भाग्य ही खराब है, दुःख मत मनाओ। तुम अपने प्रयासों से, अपनी कर्मशीलता से निरंतर अपने लक्ष्य का संधान करते रहो, क्योंकि एकमात्र परिश्रम ही है जो हमारे भाग्य का निर्माण करता है। उसी के कारण हमें सुख रूपी खजाने की प्राप्ति होती है। अतः हे मनुष्यो! तुम कर्म से रहित जीवन को धिक्कार के योग्य ही समझो। तुम मनुष्य हो, तुम्हें अपने मन में निराशा का भाव नहीं आने देना चाहिए। तुम्हें सदैव कोई न कोई कर्म करते रहना चाहिए।

विशेष–1. परिश्रम को ही भाग्य का निर्माता बताया गया है।

2. भाषा अत्यंत सरल, सहज एवं भावपूर्ण खड़ी बोली है।
3. तत्सम एवं तद्भव शब्दावली का प्रयोग है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास एवं रूपक अलंकारों का प्रयोग है।
6. उपदेशात्मक शैली तथा पादाकुलक छंद का प्रयोग है।

◆◆◆

आलोचनात्मक प्रश्न

(क) मैथिलीशरण गुप्त : साहित्यिक परिचय

(M. Imp.)

1. **मैथिलीशरण गुप्त के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की विवेचना करें।**

अथवा

मैथिलीशरण गुप्त का साहित्यिक परिचय दीजिए।

अथवा

मैथिलीशरण गुप्त की काव्यगत विशेषताएँ बताइए।

उत्तर-मैथिलीशरण गुप्त का व्यक्तित्व (जीवन-परिचय)–हिन्दी साहित्य के प्रख्यात कवि राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 3 अगस्त, 1886 में उत्तर प्रदेश के झाँसी नामक जिले के **चिरगाँव** नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम सेठ रामचरण गुप्त और माता का नाम सरयू देवी था। इनके पिता वैष्णव सम्प्रदाय में विश्वास रखते थे और वे श्रीराम के परम भक्त थे। वे स्वयं 'कनकलता' उपनाम से कविता-रचना करते थे। इस प्रकार बालक मैथिलीशरण को बचपन से ही काव्य एवं भक्ति का वातावरण मिला और उन्होंने बाल्यकाल में ही काव्य-रचना करनी आरंभ कर दी। उनकी आरम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। उन्होंने हिन्दी, संस्कृत, बाँग्ला आदि भाषाओं का अध्ययन किया। उनकी प्रारम्भिक कविताएँ 'वैश्योपकारक' शीर्षक पत्र में छपती थीं जो कि कलकत्ता से प्रकाशित होता था।

मैथिलीशरण गुप्त जी शीघ्र ही आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में आए और अब उन्होंने खड़ी बोली में काव्य-रचना करनी आरंभ की जो कि सन् 1906 से 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं। इसके पश्चात् वे निरन्तर हिन्दी-साहित्य की सेवा करते हुए आगे बढ़ते रहे। उन्होंने अपने जीवन-काल में पचास से भी अधिक मौलिक व अनूदित ग्रंथों की रचना की। उनकी साहित्यिक सेवा को देखते हुए उन्हें अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। सन् 1938 में उन्हें 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' मिला। सन् 1954 में उन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि दी गई। सन् 1952 में वे राज्य सभा के मनोनीत सदस्य के रूप में चुने गए। सन् 1964 में हिन्दी-जगत की इस महान विभूति का स्वर्गवास हो गया।

कृतित्व (रचनाएँ)–मैथिलीशरण गुप्त का प्रथम काव्य-संग्रह 'रंग में भंग' था जो कि सन् 1910 में प्रकाशित हुआ था। सन् 1912 में उनका प्रमुख काव्य-संग्रह **'भारत-भारती'** प्रकाशित हुआ जिसने हिंदी प्रेमियों पर अपना महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला। इसी काव्य-संग्रह के आधार पर उन्हें **'राष्ट्रकवि'** कहा गया। वस्तुतः मैथिलीशरण गुप्त उदार प्रवृत्ति के कवि थे। उन्होंने एक ओर तो अपने पारम्परिक आराध्य श्रीराम को आधार बनाकर अनेक ग्रंथ लिखे, वहीं दूसरी ओर उन्होंने श्री कृष्ण की भक्ति पर **'द्वापर'** ग्रंथ की रचना की, इस्लाम धर्म के अनुकूल **'काबा और कर्बला'** की रचना की तथा सिक्ख धर्म पर **'गुरुकुल'** की रचना की।

एक कवि के रूप में गुप्त जी ने महाकाव्यों, खण्डकाव्यों, गीति काव्यों आदि की रचना की। उनकी साहित्यिक रचनाओं को मुख्यतः निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है–

(i) **प्रमुख काव्य रचनाएँ**–'रंग में भंग', 'जयद्रथ वध', 'भारत-भारती', 'साकेत', 'यशोधरा', 'मौर्य-विजय', 'शकुन्तला', 'नहुष', 'पंचवटी', 'प्रदक्षिणा', 'बापू', 'गुरु तेगबहादुर', 'सिद्धराज', 'अर्जन और विसर्जन', 'वक-संहार', 'जय-भारत', 'विष्णुप्रिया', 'वन-वैभव' आदि।

(ii) **नाटक**–'अनघ', 'तिलोत्तमा', 'चन्द्रहास' आदि।

(iii) **अनूदित रचनाएँ**–'विरहिणी ब्रजांगना', 'मेघनाथ-वध', 'प्लासी का युद्ध' आदि।
उनकी कीर्ति के प्रमुख स्तंभ 'भारत-भारती', 'साकेत', 'यशोधरा', 'द्वापर', 'पंचवटी', 'बापू', 'जय-भारत' आदि रचनाएँ हैं।

साहित्यिक/काव्यगत विशेषताएँ–राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-रचनाओं की विशेषता यह है कि उनका भाव-पक्ष जितना प्रभावशाली है, उनका कला-पक्ष भी उतना ही सुंदर व उच्च कोटि का है। उनकी काव्य-रचनाओं में लगभग सभी प्रकार की

शैलियों, छंद, अलंकार आदि का प्रयोग हुआ है। गुप्त जी अपने युग के सच्चे प्रतिनिधि कवि थे और उन्होंने अपनी काव्य-रचनाओं में विविध भावों को उद्घाटित किया है। उनकी रचनाओं की काव्यगत-विशेषताओं अथवा साहित्यिक विशेषताओं की विवेचना निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत की जा सकती है–

1. राष्ट्रीय चेतना–मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का प्रधान स्वर देशभक्ति, राष्ट्र-भावना, देश के गौरवशाली अतीत के गुणगान से जुड़ा है। उनकी राष्ट्रीय-चेतना व राष्ट्र-प्रेम की सर्वप्रथम अभिव्यक्ति 'भारत-भारती' में दिखाई देती है। उन्होंने न केवल देश के गौरवशाली अतीत का गुणगान किया है बल्कि आधुनिक युग में देश की समस्याओं को भी उठाया है। उन्होंने देश के उज्ज्वल भविष्य के प्रति भी अपनी मनोकामना को अभिव्यक्त किया है। कवि अपने देशवासियों को अपनी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि समस्याओं को मिल-बैठकर हल करने के लिए आह्वान करता है–

हम कौन थे, क्या हो गए हैं, और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर, ये समस्याएँ सभी।

इस प्रकार कवि ने नवयुवकों को देश के प्रति अपने कर्त्तव्य, देश के उद्धार में अपना सहयोग देने के लिए आह्वान करते हुए कहा है–

हे नवयुवाओ! देशभर की दृष्टि तुम पर ही लगी;
है मनुज-जीवन की तुम्हीं में ज्योति सबसे जगमगी।
दोगे न तुम तो, कौन देगा योग देशोद्धार में?
देखो, कहाँ क्या हो रहा है आजकल संसार में।

2. नारी के प्रति उदार दृष्टिकोण–गुप्त जी ने अपने काव्य में नारी के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाया है। तत्कालीन युग में नारी को न तो अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी और न ही समाज में उसे उचित आदर-सम्मान प्राप्त था। उन्होंने अपने काव्य में नारी की इस दुर्दशा का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण निम्नलिखित पंक्तियों में इस प्रकार किया है–

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी!
आँचल में है दूध और आँखों में पानी!!

'साकेत' में उन्होंने काव्य-जगत द्वारा उपेक्षित नारी उर्मिला को ही आधार बनाकर नवम् सर्ग की सृष्टि की है। इसके साथ-साथ उन्होंने कैकेयी को भी इसमें उचित सम्मान दिलाया है। 'यशोधरा' में महात्मा बुद्ध की पत्नी यशोधरा के प्रति भाव दर्शाए गए हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि गुप्त जी ने अपने काव्य में नारी का प्रेमिका रूप में कम चित्रण करके तथा उसे एक आदर्श माता, पत्नी व बहन के रूप में अधिक चित्रित करके नारी के प्रति अपने उदार व विशाल दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

3. प्रकृति चित्रण–यद्यपि गुप्त जी प्रकृति-चित्रण के चितेरे कवि थे, परन्तु उन्होंने छायावादी कवियों की भाँति प्रकृति का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण नहीं किया है। उन्होंने अपने काव्य में अधिकांशतः प्रकृति का आलम्बन रूप में, उद्दीपन रूप में, उसका मानवीकरण करके मानव-रूप में ही चित्रण किया है। उदाहरण के लिए, 'पंचवटी' में उन्होंने चाँदनी रात में प्रकृति का आलम्बन व मानवीकरण रूप में चित्रण करते हुए लिखा है–

चारु चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल-थल में।
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है, अवनि और अम्बर तल में॥
पुलक प्रगट करती है धरती, हरित तृणों के नोकों से।
मानो झूम रहे हों तरु भी, मन्द पवन के झोंकों से।

4. धार्मिक भावना–गुप्त जी का पालन-पोषण धार्मिक वातावरण में हुआ था और वे स्वयं रामानन्द सम्प्रदाय में दीक्षित थे। वे राम के सच्चे भक्त थे। परन्तु अपनी काव्य रचनाओं में उन्होंने केवल श्रीराम की ही उपासना नहीं की है बल्कि भगवान श्री कृष्ण की भी समान भाव से उपासना की है। परन्तु यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि गुप्त जी अंधभक्त नहीं थे। उन्होंने केवल अपने आराध्य को प्रसन्न करने हेतु स्तुति, विनय, प्रार्थना या उपासना नहीं की है बल्कि वे उनमें मानवतावादी आदर्शों की झलक को देखकर ही उनकी उपासना करते हैं। उदाहरण के लिए, 'साकेत' में वे श्रीराम को ईश्वरत्व के गुणों के कारण नहीं पूजते बल्कि उनके 'भूतल को स्वर्ग बनाने' के गुणों, प्रयासों की प्रशंसा करते हैं। यथा–उनके काव्य में स्वयं राम कहते हैं–

भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया, नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया, इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया॥

5. गाँधीवाद का प्रभाव–गुप्त जी महात्मा गाँधी से अत्यधिक प्रभावित थे। उनके मन में गाँधी जी के विचारों, सिद्धान्तों, कार्यक्रमों, नीति आदि के प्रति गहरी आस्था थी और यही कारण है कि उन्होंने अपने काव्य में गाँधीवाद अर्थात् गाँधी जी के विचारों, सिद्धांतों का निरूपण किया है। उन्होंने गाँधी जी के अछूतोद्धार कार्यक्रम को समर्थन देते हुए अपने काव्य में कहा है–

इन्हें समाज नीच कहता है, पर हैं ये भी तो प्राणी।
इनमें भी मन और भाव है; किन्तु नहीं है वैसी वाणी॥

इसी प्रकार 'साकेत' में भी उन्होंने दर्शाया है कि जब रामचन्द्र जी वनवास के लिए प्रस्थान करते हैं तब समस्त अयोध्यावासी सत्याग्रह करते हैं ताकि राम वन को न जाएं। यथा–

राजा हमने राम तुम्हीं को चुना है, करो न तुम यों हाय लोकमत अनसुना।
जाओ यदि जा सको रौंद हम को, यह कह पथ पर लेट गए बहुजन वहाँ॥

उनके काव्य में अभिव्यक्त मानव-प्रेम, सीताजी द्वारा वन में आदिवासी कन्याओं, बालिकाओं को सूत कातना सिखाना, हिन्दू-मुस्लिम एकता, ग्राम-उत्थान, सर्वधर्म सद्भाव आदि विषयों पर गाँधीवाद का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

6. समन्वयवाद–गुप्त जी के काव्य की एक अन्य विशेषता यह भी रही है कि उसमें किसी भी धर्म या सम्प्रदाय के प्रति कट्टर समर्थन नहीं दर्शाया गय. है। कवि ने हिन्दू होते हुए भी सिक्ख धर्म, इस्लाम धर्म, बौद्ध धर्म आदि के प्रति भी वही आदर व सम्मान दर्शाया है जो कि हिन्दू धर्म के प्रमुख नायकों अथवा अवतारों श्रीराम, कृष्ण आदि के प्रति दर्शाया है। उदाहरण के लिए, 'साकेत' राम-काव्य का ग्रंथ है तो 'द्वापर' कृष्ण-काव्य का ग्रंथ है, 'काबा और कर्बला' इस्लाम धर्म से तो 'गुरु तेगबहादुर' सिक्ख धर्म से जुड़ी रचनाएँ हैं।

7. रस-योजना–गुप्त जी के काव्य में विविध रसों का परिपाक अथवा निर्वाह हुआ है। उनके काव्य में रसराज अर्थात् शृंगार रस का भावपूर्ण व मर्यादित प्रवाह हुआ है। उनके संयोग-शृंगार अथवा मिलन के दृश्यों में अश्लीलता नहीं है बल्कि संयोगावस्था के स्वस्थ व सरल दृश्य चित्रित किए गए हैं। इसी प्रकार वियोगावस्था में भी विरहिणियों की दशा का भावपूर्ण चित्रण हुआ है। उदाहरण के लिए, 'साकेत' में उर्मिला का, 'यशोधरा' में यशोधरा का मार्मिक विरह-वर्णन हुआ है तथा उसमें शृंगार रस की भावपूर्ण योजना की गई है। यथा–उर्मिला की विरहावस्था में उत्पन्न वेदना निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है–

प्रियतम के गौरन ने
लघुता दी है मुझे, रहें दिन भारी।
सखि! इस कटुता में भी
मधुस्मृति की मिठास, मैं बलिहारी।

इसी प्रकार, 'किसान' व 'कुणालगीत' में करुण रस की, 'जय भारत' में भयानक रस की, 'झंकार' में शान्त रस की, 'सिद्धराज' में हास्यरस की, 'जयद्रथ वध' में रौद्र रस की, 'भारत-भारती' व देशप्रेम पर आधारित अन्य रचनाओं में वीर रस की सफल योजना हुई है। अतः कहा जा सकता है कि उनके काव्य में नवरसों की धारा का सतत प्रवाह हो रहा है।

8. कला पक्ष–गुप्त जी के काव्य का भाव-पक्ष जितना प्रभावशाली व विविधतापूर्ण है, उसका कला-पक्ष भी उतना ही सुन्दर, मनोहारी व प्रभावपूर्ण है। उन्होंने अपने काव्य में खड़ी बोली का प्रयोग करके उसे एक नई महत्ता व प्रतिष्ठा प्रदान की। उनकी काव्य-भाषा सरल, सहज, भावानुकूल व प्रवाहमयी है। यद्यपि उन्होंने तत्सम शब्दों का भी भरपूर प्रयोग किया है, परन्तु उसके साथ तद्भव शब्दों का समन्वय करके भाषा को दुरूह होने से बचा लिया है। उनकी काव्य-रचनाओं में कुछ देशज व विदेशज शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। उन्होंने अपनी काव्य-भाषा को लोकोक्तियों, मुहावरों आदि से सुसज्जित करके उसके सौंदर्य व अर्थ-गाम्भीर्य में भी वृद्धि की है।

उनके काव्य में प्रधानतः यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, उपमा, मानवीकरण, अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार उनके काव्य में रोला, छप्पय, सवैया, दोहा, हरिगीतिका आदि छंदों का प्रयोग हुआ है। उन्होंने अपनी काव्य-रचनाओं को प्रबन्धात्मक, गीतात्मक, खण्ड-काव्यात्मक रूप प्रदान किए हैं। उनके काव्य में अभिधा शब्दशक्ति व प्रसाद गुण का प्राधान्य रहा है।

◆◆◆

(ख) मैथिलीशरण गुप्त : राष्ट्रीय चेतना

2. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय चेतना पर प्रकाश डालिए। **(Imp.)**

उत्तर–सामान्य रूप से राष्ट्र के प्रति प्रेम ही राष्ट्रीयता कहलाता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने राष्ट्र की सेवा, उसे धन-धान्य से समृद्ध बनाने के लिए व्यक्ति के प्रयास व त्याग को ही राष्ट्रीयता माना है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि राष्ट्र से अथाह प्रेम करना व उसकी उन्नति का प्रयास करना ही राष्ट्रीयता है।

परन्तु जहाँ तक राष्ट्रीय चेतना से युक्त काव्य का प्रश्न है, इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि इस काव्य में अपने देश की महिमा का यशोगान किया जाता है, उसके वैभवशाली व गौरवशाली अतीत का वर्णन किया जाता है, अपने देशवासियों में स्वाधीनता की रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना का संचार किया जाता है तथा पुरानी व गली-सड़ी परम्पराओं को त्याग कर विकास के नए-नए मार्ग खोजने का आह्वान किया जाता है। इस दृष्टि से राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का काव्य राष्ट्रीय-चेतना से ओतप्रोत है। उनकी राष्ट्रीय चेतना को मुख्यतः निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है–

1. मातृभूमि की वन्दना व प्रशंसा–राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य में अपनी मातृभूमि की नाना प्रकार से वन्दना व प्रशंसा की है। उदाहरण के लिए, 'मातृभूमि' शीर्षक कविता में कवि ने मातृभूमि की भगवान की मूर्ति के रूप में कल्पना की है। कवि अपनी मातृभूमि को वात्सल्यमयी माता के रूप में चित्रित करते हुए कहता है–

जिसकी रज में लोट-लोट कर बड़े हुए हैं
घुटनों के बल सरक-सरक कर खड़े हुए हैं।
हम खेले-कूदे हर्ष-युक्त जिसकी प्यारी गोद में।
हे मातृभूमि तुझको निरख, मग्न क्यों न हो मोद में।

2. देश के गौरवशाली अतीत का यशोगान–राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत कवि अपने काव्य में अपने देश के गौरवशाली अतीत का भी यशोगान करता है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कविताओं में भारतवर्ष के गौरवशाली अतीत का यशोगान करके समकालीन भारतीयों में एक नई चेतना, नया विश्वास भरने का सफल प्रयास किया है। उदाहरण के लिए, 'अतीत का गौरवगान' शीर्षक कविता में कवि हमारे देश के महापुरुषों की ओर संकेत करते हुए कहता है–

थे कर्मवीर कि मृत्यु का भी ध्यान कुछ धरते न थे,
थे युद्धवीर कि काल से भी हम कभी डरते न थे।
थे दानवीर कि देह का भी लोभ हम करते न थे।
थे धर्मवीर कि प्राण के भी मोह पर मरते न थे।

3. देश की समस्याओं का वर्णन–राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य में देश की वर्तमान समस्याओं को भी उठाया है ताकि उन समस्याओं को दूर करके देश व समाज को विकास के मार्ग पर ले जाया जा सके। वे भारत की समस्याओं की ओर संकेत करते हुए कहते हैं–

हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी॥

भारतीय समाज में नारी को भोग-विलास की वस्तु मानने पर नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई और इससे समाज में अनेक प्रकार की समस्याएँ खड़ी होने लगीं। तब गुप्त जी ने इस समस्या को इस प्रकार उठाया है–

हाय वधू ने क्या वर-विषयक एक वासना पाई?
नहीं और कोई क्या उसका पिता, पुत्र या भाई?
नर के बाँटे क्या नारी की नग्न मूर्ति ही आई?
माँ, बेटी या बहन हाय! क्या संग नहीं वह लाई?

इसी प्रकार कवि ने बाल-विवाह, छुआछूत की समस्या, जाति-पाति की समस्या आदि को भी अपने काव्य में उठाकर अपनी राष्ट्रीय चेतना को दर्शाया है।

4. राष्ट्रीय एकता पर बल–राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रीय एकता के प्रबल पक्षधर थे। उन्होंने अपने काव्य में बार-बार राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने का आह्वान किया है। वे जानते थे कि जब तक भारत में सभी वर्ग व जातियाँ मिलकर अपनी प्रगति के लिए प्रगतिशील नहीं होंगी, तब तक न तो हम पराधीनता के पंजे से मुक्त हो सकते हैं और न अपनी उन्नति कर सकते हैं। अतः उन्होंने राष्ट्रीय एकता के लिए हिन्दू-मुसलमानों को पारस्परिक संघर्ष को त्यागकर एकजुट होने का आह्वान किया। यथा–

अनुदारता-दर्शक हमारे दूर सब अविवेक हों,
जितने अधिक हों तन भले हैं, मन हमारे एक हों।
आचार में कुछ भेद हो पर प्रेम हो व्यवहार में।
देखें, हमें फिर कौन सुख मिलता नहीं संसार में।

5. प्रजातंत्र की स्थापना पर बल–मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-यात्रा पराधीन भारत में आरंभ हुई और स्वतंत्र भारत में भी कुछ समय तक पल्लवित होती रही। अतः उनकी आरम्भिक कविताओं में जहाँ अंग्रेजों के शासन के प्रति विद्रोह का भाव दिखाई देता है, वहीं स्वतंत्र भारत में वे प्रजातंत्र के पक्षधर दिखाई देते हैं। उन्होंने विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए आह्वान करते हुए कहा है–

शासन किसी परजाति का चाहे विवेक विशिष्ट हो,
सम्भव नहीं है, किंतु जो सर्वांश में वह इष्ट हो।

इसी प्रकार वे गाँधी जी के द्वारा चलाए गए सत्याग्रह आंदोलन की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं–

सत्याग्रह है कवच हमारा, कर देखो कोई भी वार।
हार मानकर शत्रु स्वयं ही, यहाँ करेंगे मित्राचार।

इसी प्रकार प्रजातंत्र में आस्था दर्शाते हुए वे लिखते हैं–

एक श्रमिक जो आज भूमि ही खन सकता है,
कल सुयोग्य हो वही राष्ट्रपति भी बन सकता है।

6. भारतीय संस्कृति में आस्था–राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने अपने काव्य में भारतीय संस्कृति में अपनी दृढ़ आस्था को दर्शाकर भी अपनी राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्त किया है।

इस सम्बन्ध में डॉ. सत्येन्द्र ने ठीक ही लिखा है–**"राष्ट्रीयता गुप्त जी का उद्देश्य है परन्तु संस्कृति शून्य राष्ट्रीयता उन्हें ग्राह्य नहीं है।"** यदि यह कहा जाए कि 'साकेत' महाकाव्य में गुप्त जी ने भारतीय संस्कृति की बार-बार स्थापना की है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

इसी प्रकार 'स्वदेशी संगीत' में परतंत्रता की समाप्ति का आह्वान किया गया है, 'हिन्दू' काव्य में जातिगत व धर्मगत रूढ़ियों, सामाजिक जड़ता आदि को त्यागने का संदेश दिया गया है, 'वन-वैभव' में राष्ट्रीय एकता पर बल दिया गया है। इसके अतिरिक्त 'गुरुकुल', 'अर्जन और विसर्जन', 'काबा और कर्बला', 'विश्व-वेदना', 'अर्जित', 'भारत-भारती', 'जय-भारत' आदि काव्यों में भी उनकी राष्ट्रीय चेतना मुखरित हुई है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि गुप्त जी के काव्य में राष्ट्रीय चेतना व राष्ट्रीय जागरण की भावना विद्यमान है। उन्होंने अपनी रचनाओं में भारतवासियों में राष्ट्रीयता की भावना भरने का प्रशंसनीय प्रयास किया; अपने देशवासियों को अपने महापुरुषों के पराक्रम, शौर्य, वीरता आदि से परिचित करवाया तथा तत्कालीन समाज की समस्याओं का चित्रण करके उन्हें उखाड़ फेंकने का आह्वान किया। अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि गुप्त जी की कविताएँ राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत हैं।

◆◆◆

(ग) मैथिलीशरण गुप्त : अभिव्यक्ति पक्ष

3. मैथिलीशरण गुप्त के अभिव्यक्ति पक्ष की विवेचना कीजिए।

अथवा

मैथिलीशरण गुप्त के कला पक्ष पर प्रकाश डालिए।

अथवा

भाषा-शैली की दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की समीक्षा कीजिए।

उत्तर–मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष/कला पक्ष/भाषा-शैली–किसी भी कवि के काव्य की उत्कृष्टता उसके भाव पक्ष के साथ-साथ उसके अभिव्यक्ति पक्ष अथवा कला पक्ष पर भी उतनी ही निर्भर करती है। भाव पक्ष यदि काव्य की आत्मा है तो कला पक्ष उसका शरीर है। जिस प्रकार स्वस्थ शरीर में आत्मा का निवास सुरक्षित होता है, उसी प्रकार काव्य के भावपक्ष की उत्कृष्टता के लिए उसके कला पक्ष की उत्कृष्टता एवं आकर्षकता भी अपेक्षित होती है।

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का न केवल भाव पक्ष उत्कृष्ट है, अपितु उसका कला पक्ष भी आकर्षक एवं उत्कृष्ट है। उन्होंने खड़ी बोली को काव्य की मानक भाषा बनाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उनकी काव्य भाषा अत्यंत सरल, सहज तथा भाव प्रधान है। उनके अभिव्यक्ति पक्ष अथवा कला पक्ष अथवा भाषा-शैलीगत विशेषताओं का विवेचन हम निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत कर सकते हैं।

1. भाषा–भाषा की दृष्टि से गुप्त जी शुद्ध तथा परिष्कृत खड़ी बोली के कवि कहे जा सकते हैं। खड़ी बोली को काव्य भाषा का रूप देने में उनका सर्वाधिक योगदान रहा है। उन्होंने अपनी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग किया। यही नहीं, अनेक स्थलों पर वे तद्भव तथा स्थानीय शब्दों का भी प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं। **डॉ. नगेन्द्र** ने इनकी भाषा के बारे में उचित ही लिखा है–**"उनकी भाषा निरन्तर विकासशील रही है। वास्तव में काव्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली के विकास का विभिन्न सोपानों में चिन्हित पूरा इतिहास मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में एकत्र मिलता है।"** व्याकरण की दृष्टि से गुप्त जी ने शुद्ध एवं सरल भाषा का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं वे अत्यन्त सरल हो उठते हैं और कहीं-कहीं वे संस्कृत के तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग करने लगते हैं। भाषा की अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना, तीनों शक्तियों का वे समुचित निर्वाह करते हुए दिखाई देते हैं। इनके लाक्षणिक प्रयोग का एक उदाहरण देखिए–

"बनालो जहाँ, हाँ वहीं स्वर्ग है,
स्वयंभूत थोड़ा कहीं स्वर्ग है।"

2. शब्द-चयन–गुप्त जी ने अपनी काव्य भाषा में संस्कृत के तत्सम, तद्भव, देशज तथा उर्दू के शब्दों का सुन्दर प्रयोग किया है। यही नहीं, उनके आरंभिक काव्य में ब्रज भाषा के शब्दों का भी प्रयोग देखा जा सकता है। कारण यह था कि आरम्भ में वे ब्रज भाषा में ही काव्य रचना करने लगे थे, लेकिन इतना निश्चित है कि गुप्त जी की शब्द-योजना सर्वथा भावानुकूल एवं प्रसंगानुकूल है। इसलिए उनके काव्य में सरसता तथा भाव-सम्प्रेषणीयता सर्वत्र देखी जा सकती है। एक उदाहरण देखिए–

"इस देश को हे दीनबन्धो!
आप फिर अपनाइए।
भगवन! भारतवर्ष को फिर
पुण्य भूमि बनाइए।"

3. चित्रात्मक एवं बिम्बात्मक भाषा का प्रयोग–आधुनिक काव्य भाषा अपनी चित्रात्मकता और बिम्ब योजना के कारण काफी प्रसिद्ध है। गुप्त जी ने भी अपनी भाषा-शैली में अनेक ऐसे चित्रों और बिम्बों का प्रयोग किया है जो वर्ण्य-विषय को स्पष्ट रूप और आकार प्रदान करते हैं। उनके शब्द चित्र कुछ स्थलों पर इतने प्रभावशाली बन पड़े हैं कि पाठक इनको देखता रह जाता है। एक उदाहरण देखिए–

"नीलांबर परिधान हरित तट पर सुंदर है;
सूर्य, चंद्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है।"

इस प्रकार के शब्द चित्र और बिम्ब उनकी काव्य रचनाओं में यत्र-तत्र रंग-बिरंगी छटा बिखेरते हैं। इसका एक ही कारण है कि कवि ने अपनी काव्य-रचनाओं में भावों के अनुरूप ही चित्रमयी भाषा का प्रयोग किया है।

4. रस-योजना–गुप्त जी की काव्य रचनाओं में अनेक रसों का परिपाक देखा जा सकता है। यद्यपि गुप्त जी का शृंगार वर्णन सरस है, लेकिन यह मर्यादित भी है। 'साकेत' में वियोग शृंगार का वर्णन करने में उन्हें विशेष सफलता प्राप्त हुई है। 'यशोधरा' में भी वियोग शृंगार के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। देश-प्रेम से परिपूर्ण रचनाओं में वीर रस का परिपाक है। **'कुणाल गीत'** और **'किसान'** नामक कविताओं में करुण रस की भावना है। **'जय भारत'** में भयानक रस और **'झंकार'** में शान्त रस के उदाहरण देखे जा सकते हैं। **'यशोधरा'** से वियोग शृंगार का एक उदाहरण देखिए–

"नयन उन्हें हैं निष्ठुर कहते,
पर इनमें जो आँसू बहते,
सदय हृदय वे कैसे सहते?
गए तरस ही खाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते॥"

5. अलंकार-विधान–सौन्दर्यप्रियता मनुष्य का स्वाभाविक स्वभाव है। काव्य में अलंकारों का उपयोग सौन्दर्य-वृद्धि के लिए किया जाता है। अलंकार जहाँ एक ओर भावों को सजाने और रमणीयता प्रदान करने में योगदान देते हैं, वहीं दूसरी ओर भावाभिव्यक्ति को प्रांजल बनाकर प्रभावशाली भी बनाते हैं। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में हमें अलंकारों का सहज, स्वाभाविक प्रयोग मिलता है। उन्होंने मात्र अर्थ चमत्कार के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं किया वरन् वर्णन में स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता लाने के लिए भी अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है। उनके काव्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, भ्रान्तिमान, अतिशयोक्ति, अनुप्रास, यमक आदि अलंकारों का सार्थक प्रयोग किया गया है। छायावाद के प्रभावस्वरूप उन्होंने मानवीकरण अलंकार का भी प्रयोग किया है। इसके साथ ही कहीं-कहीं व्यतिरेक, विभावना, विरोधाभास और दीपक जैसे अलंकारों का भी प्रयोग मिलता है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

उपमा– **मन-सा मानिक मुझे मिला है तुझमें उपल खनी।**

रूपक– **जितने कष्ट-कण्टकों में हैं, जिनका जीवन सुमन खिला,**
गौरव-गन्ध उन्हें उतना ही अत्र, तत्र, सर्वत्र मिला।

अनुप्रास– **चारु चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल-थल में।**

व्यतिरेक– **वह मुख देख, पाण्डू-सा पड़कर, गया चन्द्र पश्चिम की ओर।**

मानवीकरण– **सखी नील नभस्सर में उतरा, यह हंस अहा तरता-तरता।**

6. छन्द-योजना–छन्द काव्य-शिल्प के प्रमुख उपकरणों में से एक है। कविता और छन्द का अन्तरंग संबंध है। छन्द रागात्मक अनुभूति का सहज और उपयुक्त वाहक है। साहित्यकार की सौन्दर्य अनुभूति यदि सही ढंग से ना हो तो उसका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है, जबकि वह छन्द में बँधकर, लय से प्रभावित होकर प्रकट होती है तो उसका मूल्य बढ़ जाता है। मैथिलीशरण गुप्त एक कुशल काव्य-शिल्पी हैं। उन्होंने अपने काव्य के भाव-वैविध्य और व्यापकता को प्रभावी बनाने के लिए मुक्त छन्दों और परंपरागत छन्दों, दोनों का प्रयोग किया है। उनकी 'जयद्रथ वध' हरिगीतिका छंद की श्रेष्ठ कृति है तो 'साकेत' में परंपरा के विरुद्ध मुक्त छंदों का प्रयोग भी किया गया है। गुप्त जी ने भावों को ओजपूर्ण बनाने के लिए हरिगीतिका और प्रकृति-चित्रण के लिए शिखरिणी या अन्य छोटे छन्दों का प्रयोग किया है।

'साकेत' के नवम सर्ग की छन्द-योजना को स्तुत्य प्रयास बताते हुए डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं–**"गुप्तजी के 'साकेत' में नवम् सर्ग की बदली छन्द योजना उर्मिला की विरह-वेदना को करवटें बदल-बदल कर व्यक्त कर देने वाली प्रतीत होती है।"** इसका अभिप्राय यह है कि छन्दों की विविधता उर्मिला की उत्पीड़ा को क्षण-क्षण में नये आयाम प्रदान करती है। अतः कहा जा सकता है कि छन्द-विधान की दृष्टि से नवम् सर्ग एक नूतन प्रयोग है और गुप्तजी उसमें सफल रहे हैं।

7. प्रतीक-योजना–साहित्य में प्रतीकों का बड़ा महत्त्व है। प्रतीकों से अर्थबोध का महान कार्य लिया जाता है। प्रतीक एक प्रकार से रूढ़ उपमान का दूसरा नाम है। जब उपमान स्वतंत्र न रहकर पदार्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है तो वह प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रतीक अपने मूल रूप में उपमान होता है। प्रतीक देश-काल के अभिव्यंजक होते हैं। मैथिलीशरण गुप्त का प्रतीक विधान भी अपने युगबोध का द्योतक है। उन्होंने छायावादी प्रतीकों के साथ ही उर्दू-फारसी, बांग्ला प्रतीकों को भी अपने काव्य में स्थान दिया है। प्रतीकों के प्रयोग ने उनकी भावाभिव्यक्ति को और अधिक प्रभावी बना दिया है। 'साकेत' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

ऊषा-सी आयी थी जग में, संध्या-सी क्या जाऊँ।
भ्रान्त पवन से वे आवें, मैं सुरभि समान समाऊँ॥

8. बिम्ब-विधान–बिम्ब-विधान आधुनिक काव्य की प्रमुख विशेषता है। बिम्ब काव्य में संक्षिप्तता, रंजकता और भाव सरसता की सृष्टि करता है। यद्यपि द्विवेदीयुगीन काव्य-शिल्प में बिम्ब-विधान को विशेष महत्त्व नहीं मिला, किन्तु छायावादी काव्य में इनका आवश्यक रूप से प्रयोग किया गया। गुप्तजी पर छायावादी काव्य-विधान का प्रभाव था। अतः उनके काव्य में हमें विविध बिम्बों के सुन्दर प्रयोग देखने को मिलते हैं। साकेत नगरी के निःस्तब्ध वातावरण का प्रस्तुत चित्र दृश्य-बिम्ब का सुन्दर उदाहरण है–

नगरी थी निःस्तब्ध पड़ी क्षणदा-छाया में,
भुला रहे थे स्वप्न हमें अपनी माया में॥
× × × × ×
पुरी-पार्श्व में पड़ी हुई थी सरयू ऐसी,
स्वयं उसी के तीर हंस माला थी जैसी।

9. शैली–द्विवेदीयुगीन कवि होने के कारण गुप्त जी की शैली प्रायः उपदेशात्मक है। उन्होंने चित्रात्मक व वर्णनात्मक शैली का भी उत्कृष्ट प्रयोग किया है–

आँखों के आगे हरियाली रहती है हर घड़ी यहाँ।
जहाँ तक झाड़ी में झिरती है, झरनों की झड़ी यहाँ॥

◆◆◆

(घ) 'भारत-भारती' की काव्यगत विशेषताएं

4. मैथिलीशरण गुप्त विरचित 'भारत-भारती' की काव्यगत विशेषताएं बताइए। (M. Imp.)

उत्तर–'भारत-भारती' राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त विरचित महत्त्वपूर्ण खंड काव्यात्मक पुस्तक है। इसका प्रथम प्रकाशन 1912 ई. में श्रीराम किशोर गुप्त द्वारा साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झाँसी) से हुआ। मैथिलीशरण गुप्त जी ने इस पुस्तक की रचना 1911 ई. में रामनवमी के दिन आरंभ की तथा यह 1912 ई. में जन्माष्टमी के दिन पूर्ण की। पुस्तक तीन खंडों, क्रमशः 'अतीत खंड', 'वर्तमान खंड' एवं 'भविष्य खंड' में विभक्त है। 'अतीत खंड' में कवि ने भारत के गौरवमयी इतिहास का जिक्र किया है, तो वर्तमान खंड में तत्कालीन भारत की दुरावस्था का सजीव चित्र अंकित किया है। भविष्य खंड में कवि ने पुनः भारत के विश्वगुरू बनने की कामना की है। पुस्तक की भूमिका में कवि ने अपने पुस्तक लेखन का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए स्वीकार किया है–**"मुझे दुःख है कि इस पुस्तक में कहीं-कहीं मुझे कड़ी बातें लिखनी पड़ी हैं, परंतु मैंने किसी की निंदा करने के विचार से कोई बात नहीं लिखी। अपनी सामाजिक दुरावस्था ने वैसा लिखने के लिए मुझे विवश किया है। जिन दोषों ने हमारी यह दुर्गति की है, जिनके कारण दूसरे लोग हम पर हँस रहे हैं, क्या उनका वर्णन कड़े शब्दों में किया जाना अनुचित है? मेरा विश्वास है कि जब तक हमारी बुराइयों की तीव्र आलोचना न होगी तब तक हमारा ध्यान उनको दूर करने की ओर समुचित रीति से आकृष्ट न होगा।"**

'भारत-भारती' खंडकाव्य का मूल उद्देश्य देश में फैली दुरावस्था को दूर करना है। 'भारत-भारती' की काव्यगत विशेषताओं का विवेचन निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत किया जा सकता है–

1. अतीत का गौरवगान–जिस समय मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'भारत-भारती' खंडकाव्य की रचना की, उस समय हिन्दी साहित्य के कालक्रम की दृष्टि से द्विवेदी युग चल रहा था। उस समय की राष्ट्रीय काव्यधारा की महत्त्वपूर्ण विशेषता थी–कवियों के द्वारा प्राचीन भारत के गौरव का गान करना ताकि अपने अतीतमय गौरव को देखकर भारतवासियों के मन में उत्साह का संचार हो और वे अपनी वर्तमान पराधीनता एवं दुरावस्था से मुक्त होने के लिए लालायित एवं उत्साहित हो उठें। मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी अपने खंडकाव्य 'भारत-भारती' के 'अतीत खंड' में भारत के गौरवमय अतीत का गायन विस्तारपूर्वक किया है। कवि ने इस खंड में प्राचीन भारत की श्रेष्ठता, हमारे उद्भव, हमारे पूर्वजों की कीर्ति, हमारे आदर्श, आर्य स्त्रियों की श्रेष्ठता, हमारी सभ्यता, विद्या, बल, बुद्धि, हमारे साहित्य, कला-कौशल, वीरता, शासन प्रणाली, विभिन्न धार्मिक मत, अनार्यों के आक्रमण, मुसलमानों के प्रवेश, ब्रिटिश राज्य आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। ग्रंथारंभ में सबसे पहले कवि भारतवासियों से अपने बारे में सोचने, समझने, अपनी समस्याओं को जान लेने का विचार करने को कहता है–

"हम कौन थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर, ये समस्याएं सभी।
यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं
हम कौन थे, इस ज्ञान को, फिर भी अधूरा है नहीं।"

कवि आगे प्राचीन भारत की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए कहता है–

"भू-लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगा जल जहाँ।
संपूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन भारतवर्ष है।"

कवि आगे हमारे पूर्वजों की अपार कीर्ति का वर्णन करते हुए कहता है कि हमारे पूर्वजों की कीर्ति का वर्णन अपार है–

"उन पूर्वजों की कीर्ति का वर्णन अतीव अपार है,
गाते नहीं उनके हमीं गुण गा रहा संसार है।
वे धर्म पर करते निछावर तृण-समान शरीर थे,
उनसे वही गंभीर थे, वर वीर थे, ध्रुव धीर थे।"

कवि ने प्राचीन भारतीय आर्य स्त्रियों के आदर्शों, उनके कार्यों, उनके त्याग का वर्णन करते हुए उनके गौरव एवं उनकी महिमा पर प्रकाश डाला है–

"केवल पुरुष ही थे न वे जिनका जगत को गर्व था,
गृह देवियाँ भी थीं हमारी देवियाँ ही सर्वथा।
था अत्रि-अनुसूया-सदृश गार्हस्थ्य दुर्लभ स्वर्ग में,
दाम्पत्य में वह सौख्य था जो सौख्य था अपवर्ग में।"

कवि भारतीय कला-कौशल, चित्रकला, वास्तुकला, मूर्तिकला एवं संगीत की श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए कहता है–

"निज रूप से भी दूसरे जन जिस समय अज्ञान थे–
हम उस समय प्रभु मूर्ति का प्रत्यक्ष करते ध्यान थे।
ऐसा न करते तो भला हम भक्ति प्रकटाते कहाँ?
दर्शन विलम्बाकुल दृगों को हाय! ले जाते कहाँ?"

भारत के शूरवीरों की प्रशंसा एवं उनके शौर्य का अपूर्व वर्णन करते हुए कवि लिखता है–

"हम थे धनुर्वेदज्ञ जैसे और वैसा कौन था?
जो शब्द बेधी बाण छोड़े शूर ऐसा कौन था?
हाँ, मत्स्य जैसे लक्ष्य बेधक धीर-धन्वी थे यहाँ,
रिपु को गिराकर अस्त्र पीछे लौट आते थे कहाँ?"

इसी प्रकार कवि ने भारतवासियों के सत्कार्य हेतु शक्ति प्रयोग, भारतीय शासन प्रणाली, भारत की जलवायु, भारत के पशुपालन, भवन निर्माण, प्रातः एवं संध्या वंदन, गुरुकुल प्रणाली आदि के गौरव का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

2. वर्तमान की दुरावस्था का चित्रण–जिस समय 'भारत-भारती' खंड काव्य की रचना हुई, उस समय भारत पूरी तरह से ब्रिटिश शासन के अधीन था। उससे पूर्व भी भारत मुगलों, तुर्कों आदि मुस्लिम शासकों की दासता में रहा था। इस कारण इन शासकों ने भारत को लूट-लूटकर न केवल भारत की अर्थव्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया अपितु सामाजिक रूप से भी भारत का पतन करने में अपनी अहम् भूमिका निभाई। कवि ने अपने समय में जैसे भारत का दर्शन किया, वह भारत पूरी तरह दुरावस्था का शिकार हो चुका था। अतः कवि ने इस काव्य के दूसरे खंड में भारत की दुरावस्था का सजीव चित्र अंकित करके तत्कालीन भारतवासियों को उत्साहित और उत्तेजित करने का प्रयास किया कि वे अपने देश को स्वतंत्र कराने को उद्यत हों। कवि ने भारत की दुरावस्था के चित्रण के अंतर्गत भारत की वर्तमान दशा, देश में बढ़ रही गरीबी, किसानों, मजदूरों की दुरावस्था, साहित्य, संगीत कलाओं के पतन, भारतवासियों की आत्मविस्मृति, अनेक सामाजिक समस्याओं, जैसे–अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति, व्यभिचार आदि का वर्णन किया है। इस खंड के आरंभ में कवि कहता है–

"जिस लेखनी ने है लिखा उत्कर्ष भारतवर्ष का,
लिखने चली अब हाल वह उसके अमित अपकर्ष का।
जो कोकिला नंदन-विपिन में प्रेम से गाती रही,
दावाग्नि-दग्धारण्य में रोने चली है अब वही।"

भारत में पड़ रहे अकाल और भूख के कारण मरने वाले लोगों की संख्या पर विचार करते हुए कवि लिखता है–

"दुर्भिक्ष मानो देह धर के घूमता सब ओर है,
हा! अन्न! हा! हा! अन्न का रव गूँजता घनघोर है।
सब विश्व में सौ वर्ष में, रण में मरे जितने हरे।
जन चौगुने उनसे यहाँ दस वर्ष में भूखों मरे॥"

कृषि प्रधान भारत में वर्तमान समय में खेती मुनाफे का कार्य नहीं रह गई थी। इसीलिए खेती के साथ किसानों की दशा भी अत्यंत दयनीय हो उठी थी। कृषि एवं किसानों की दयनीय दुरावस्था का चित्रण करते हुए कवि इन पंक्तियों में कहता है–

"पानी बनाकर रक्त का, कृषि कृषक करते हैं यहाँ,
फिर भी अभागे भूख से दिन-रात मरते हैं यहाँ।
सब बेचना पड़ता उन्हें निज अन्न वह निरुपाय है,
बस चार पैसे से अधिक पड़ती न दैनिक आय है।"

कवि भारत की दुरावस्था का चित्रण करते हुए भारत में नित-प्रतिदिन बढ़ रही बीमारियों की चर्चा करता है, तो दिन-प्रतिदिन घट रहे व्यापार की अधोगति देखकर दुःखी होता है। कवि भारत के उन चंद धनी लोगों की भर्त्सना भी करता है जो भारत में उद्योग धंधों का विकास कर सकते हैं, परंतु वे अपनी रईसी में इतने मग्न हैं कि उन्हें अपनी सुख-सुविधाओं के अतिरिक्त भारतवासियों के कष्ट दिखाई नहीं देते। आगे कवि भारत में बढ़ते अज्ञान और तथाकथित क्लर्क उत्पन्न करने वाली शिक्षा प्रणाली को भी भारत की दुरावस्था का कारण बताता है। भारतीय साहित्य में आ रही विकृतियों का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

"सोचो हमारे अर्थ है यह बात कैसे शोक की–
श्रीकृष्ण की हम आड़ लेकर हानि करते लोक की।
भगवान को साक्षी बनाकर यह अनंगोपासना।
है धन्य ऐसे कविवरों को, धन्य उनकी वासना॥"

भारतीय धर्म, तीर्थ, पंडों, पुरोहितों, भारतीय समाज, मंदिर, महंतों, संगीत, कला आदि में आ रही गिरावट, ब्राह्मणों के पतन, क्षत्रियत्व की हानि, स्त्रियों के अधोपतन, संतान की नाफरमानी, हिन्दू समाज की अनेक समस्याओं, जैसे–अनमेल विवाह, नशेबाजी, गृह-क्लेश, अंधपरंपरा, वर-कन्या विक्रय, भिक्षावृत्ति आदि का सजीव चित्रण करते हुए कवि अंत में ईश्वर से इन सब समस्याओं को दूर करने की प्रार्थना करता है–

"हा दीनबंधो! क्या हमारा नाम ही मिट जायेगा,
अब फिर कृपा-कण भी न क्या भारत तुम्हारा पायेगा?
हा राम! हा! हा! कृष्ण हा! हा! नाथ! हा! रक्षा करो;
मनुजत्व दो हमको दयामय! दुःख दुर्बलता हरो॥"

3. उद्बोधन–द्विवेदीयुगीन कविता के अनुरूप कवि ने 'भारत-भारती' के तीसरे खंड 'भविष्य खंड' में भारतवासियों का उद्बोधन किया है कि वे अपने अतीत गौरव का ध्यान करके, अपने पूर्वजों की कीर्ति का स्मरण करके न केवल अपनी वर्तमान दुरावस्था से बाहर निकलें अपितु उसी भारत का पुनः निर्माण करें, जिसका प्राचीनकाल में समस्त विश्व गुणगान किया करता था। कवि भारतवासियों से कहता है–

"हम कौन थे, क्या हो गए हैं, जान लो इसका पता,
जो थे कभी गुरु, है न उनमें शिष्य की भी योग्यता।
जो थे सभी से अग्रगामी, आज पीछे भी नहीं,
है दीखती संसार में विपरीतता ऐसी कहीं।"

कवि भारतवासियों का आलस्य निद्रा त्यागने एवं धैर्य धारण करते हुए संघर्ष पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हुए कहता है

"संसार की समस्थली में धीरता धारण करो,
चलते हुए जिन इष्ट पथ में संकटों से मत डरो।
जीते हुए भी मृतक सम रहकर न केवल दिन भरो,
वरवीर बनकर आप अपनी विघ्न बाधाएँ हरो॥"

कवि ने अपने उद्बोधन के माध्यम से स्पष्ट किया है कि समय परिवर्तनशील है। अतः हमें भी बदले हुए समय के अनुरूप स्वयं को ढालकर तद्नुरूप ही कार्य करना चाहिए, तभी हम उन्नति कर सकते हैं–

"है बदलता रहता समय, उसकी सभी धातें नई।
कल काम में आती नहीं हैं आज की बातें कई।
है सिद्धि मूल यही कि जब जैसा प्रकृति का रंग हो–
तब ठीक वैसा ही हमारी कार्य्य कृति का ढंग हो।"

अंत में कवि ईश्वर से भी प्रार्थना करता है कि वह भारतवर्ष का उद्धार करें–

"इस देश को हे दीनबन्धो! आप फिर अपनाइए;
भगवान! भारतवर्ष को फिर पुण्य भूमि बनाइए।
जड़ तुल्य जीवन आज इसका विघ्न बाधापूर्ण है,
भगवान! अब अवलंब देकर विघ्नहर कहलाइए।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्त जी ने 'भारत-भारती' खंडकाव्य में भारत के अतीत गौरव का गान करके तथा भारत की वर्तमान दुर्दशा का बोध करवाकर, भारतवासियों को पराधीनता, दासत्व और बुराइयों से दूर होने को प्रेरित करके अपनी उच्च्व कोटि की राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया है।

◆◆◆

(ङ) मैथिलीशरण गुप्त : नारी-भावना

5. मैथिलीशरण गुप्त की नारी-भावना का विवेचन कीजिए। **(M. Imp.)**

उत्तर–मैथिलीशरण गुप्त की नारी-भावना–द्विवेदी युग में भारतीय नवजागरण और सुधारवादी आंदोलनों के कारण समाज में नारी की अपमानस्पद और उपेक्षित स्थिति के बारे में पहली बार विचार किया जाने लगा। शताब्दियों से उपेक्षित और प्रताड़ित नारी को घर और समाज में उचित सम्मान मिले, देश के स्वतंत्रता संग्राम और विकास में उसका समान सहयोग रहे, इस भावना से नारी जाति के लिए सदियों से चली आ रही कुप्रथाओं और रूढ़ि-रीतियों का जोरदार विरोध होने लगा था। राजा राममोहन राय ने नारी जाति के लिए अपमानस्पद और अभिशाप जैसी सती प्रथा समाप्त करने के लिए आंदोलन किया। बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, पर्दा-प्रथा का विरोध और विधवा-विवाह का समर्थन ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज द्वारा चलाए गए आंदोलनों ने किया। मध्यकालीन सामंतवादी समाज में नारी को केवल भोग की वस्तु माना जाता था। उसका कार्यक्षेत्र केवल उसका घर था और उसे शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने का अधिकार भी नहीं था। इस संकीर्ण मानसिकता के कारण नारी का कार्यक्षेत्र अत्यंत सीमित था। आधुनिक युग की इस विचार-दृष्टि में नारी की इस स्थिति को समाज और देश के लिए अत्यन्त हानिकारक माना गया। नारी की स्वतंत्र अस्मिता, कार्य करने की कुशलता और बुद्धिमता को पहचानने का प्रयास किया गया। देश के विकास में सहयोग देने वाली महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उसे पहचाना गया।

मैथिलीशरण गुप्त की आधुनिक काव्य चेतना पर नवजागरण की नारी संबंधी विचाराधारा का बहुत ही गहरा और व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। देश की समकालीन स्थिति में नारी की दयनीय स्थिति पर दुःख व्यक्त करते हुए वे नारी-शक्ति की महत्ता को इस तरह व्यक्त करते हैं–

"अनुकूल आद्या शक्ति की सुखदायिनी जो स्फूर्ति है,
सद्धर्म की जो मूर्ति और पवित्रता की पूर्ति है,

नर-जाति की जननी तथा शुभ शान्ति की स्रोतस्वति
हा दैव! नारी जाति की कैसी यहाँ है दुर्गति।"

(भारत-भारती)

गुप्तजी ने नारी को उदात्त दैवी जैसा रूप देकर शक्ति और पवित्रता, सात्विकता के रूप में प्रतिष्ठित किया है। परन्तु केवल पूज्य भाव जगाने की वह घड़ी नहीं थी बल्कि नारी को सहयोगिनी के रूप में स्वीकार करना समय की आवश्यकता थी। गुप्तजी ने **'साकेत'**, **'यशोधरा'**, **'विष्णुप्रिया'**, **'रत्नावली'**, **'जयिनी'** काव्य रचनाओं में नारी को उच्च और मधुर प्रेरणामयी सहयोगिनी के रूप में दिखाने का प्रयास किया है। हिंदी साहित्य के काव्य क्षेत्र में कुछ ऐसे नारी पात्रों की उपेक्षा हो रही थी, जिनके त्याग, उदारता और वेदना की अब तक कहीं भी चर्चा नहीं हुई थी। गुप्तजी ने **'साकेत'**, **'उर्मिला'** और **'यशोधरा'** में **नारी** की वेदना को स्वर देकर उसके अस्तित्व बोध को अभिव्यक्त किया है।

गुप्तजी ने अपने काव्य में पौराणिक कथा संदर्भ लेकर नारी की गरिमामयी, तेजस्वी प्रतिभा प्रस्तुत की, जो समय की माँग थी। उपेक्षिता उर्मिला की अनकही विरह-वेदना, त्याग, सामंजस्य और दृढ़ता को 'साकेत' में प्रथम वाणी मिली है। राम-सीता के साथ वन जाने के लिए लक्ष्मण को योगी बनाने में उर्मिला की दृढ़ता ही कारण रही है।

"जाग रहा है यह कौन धनुर्धर, जबकि भुवन भर सोता है।
भोगी कुसुमायुध योगी-सा, बना दृष्टिगत होता है।"

गुप्तजी ने नारी के व्यक्तित्व के दो पक्षों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है–पहला पक्ष है **नारी का** और दूसरा पक्ष है **नारी की स्वतंत्र सत्ता और महत्ता का।**

ये दोनों ही पक्ष नारी जीवन को सफल और उज्ज्वल बना सकते हैं, यदि उसे पुरुष का सहयोग प्राप्त होता है। यदि यह सहयोग नहीं मिलता है तो नारी के पत्नीत्व और स्वतंत्र सत्ता के बीच तनाव निर्माण होता है। गुप्तजी के 'साकेत' की नायिका उर्मिला में इस तनाव का अभाव है, क्योंकि लक्ष्मण का उसे अनुकूल सहयोग प्राप्त है। उर्मिला की अनुमति से ही लक्ष्मण वन को गए थे, परन्तु यशोधरा, विष्णुप्रिया और रत्नावली में वह नहीं है। 'यशोधरा' के गौतम और 'विष्णुप्रिया' के चैतन्य महाप्रभु पत्नी को बताये बिना, आज्ञा लिए बिना सत्य की खोज में निकल पड़े थे।

'साकेत' के एक विनोद प्रसंग में उर्मिला जब लक्ष्मण से कहती है कि मैं अबला हूँ तो लक्ष्मण संपूर्ण नारी जाति को संबोधित करके कह उठते हैं–

"अवस-अबला तुम? सफल बल वीरता,
विश्व की गम्भीरता, ध्रुव-धीरता।"

(साकेत)

उर्मिला विरह व्यथिता होकर भी स्वाभिमान और वीर भावना से ओत-प्रोत है। सीता-हरण और लक्ष्मण-शक्ति के प्रसंग को हनुमान से सुनकर जब सभी साकेतवासी रावण से युद्ध करने के लिए निकल पड़ते हैं और सीता को कारागार से मुक्त करके उनके अपमान का बदला लेने के लिए शत्रुघ्न सोने की लंका लूटने के लिए प्रजाजनों को आदेश देते हैं, तब उर्मिला माथे पर सिंदूर लगाकर और हाथ में भाला लेकर साक्षात् दुर्गा का वेश धारण करके गरजती हुई उनके सामने आकर तेजस्वी वाणी में घोषणा करती है–

नहीं, नहीं, पापी का सोना
यहां न लाना, भले सिंधु में वहीं डुबोना,
जाते हो तो मान हेतु ही तुम सब जाओ,
विंध्य-हिमाचल-भाव भला झुक जाय, धीरो,
चन्द्र-सूर्य-कुल-कीर्ति-कला रुक जाय न वीरो।

इस तरह **उर्मिला** सैनिकों में अपनी मातृभूमि के प्रति अटूट श्रद्धा, अपूर्व भक्ति और असीम प्रेम जाग्रत करती है। यही है उर्मिला का स्वाभिमानी, शक्तिरूपा और वीरांगना का रूप। आधुनिक युग में नवजागरण की चेतना के कारण नारी स्वातंत्र्य और नारी की महत्ता को मानने जैसी विचाराधारा का प्रसार हुआ। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने के लिए नारी को प्रोत्साहन दिया और उसे स्वावलम्बी बनाने की प्रेरणा नारी जागृति के लिए कार्य कर रही संस्थाओं ने दी। 'साकेत' में सीता के इन उद्‌गारों में नारी के स्वतंत्र और स्वावलम्बी जीवन की झलक मिलती है–

"औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रमवारि बिन्दु फल स्वास्थ्य शुक्ति फलती हूँ।

अपने अंचल से व्यंजन आप झलती हूँ।
तनु-लता-सफलता-स्वाद आज ही आया,
मेरी कुटिया में राज भवन मन-आया।"

'यशोधरा' गुप्तजी की दूसरी महान कृति है जिसमें गौतम बुद्ध, यशोधरा तथा उनके पुत्र राहुल की कथा को विस्तार दिया गया है।

यशोधरा की गौतम के महान लक्ष्य के प्रति पूर्ण सहानुभूति थी, परन्तु पति द्वारा निद्रावस्था में उसकी अनुमति लिए बिना गृह त्याग करने से यशोधरा अपने नारीत्व को तिरस्कृत और अपमानित अनुभव करती है। गौतम ने उसे सहधर्मिणी के सहयोग का अवसर ही नहीं दिया। नारी को उन्होंने भी सिद्धि मार्ग की बाधा माना। यशोधरा की वेदना उसके शब्दों में फूट पड़ी है–

सिद्धि-हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात,
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात,
सखि, वे मुझसे कह कर जाते, **(यशोधरा)**
कह, तो क्या वे मुझको अपनी पथ-बाधा ही पाते?

यशोधरा के मन में वेदना के साथ ही नारी-जाति के अस्तित्व के प्रति जागरूकता का भाव दिखाई देता है। वह कह उठती है–

सिद्धि-मार्ग की बाधा नारी फिर उसकी क्या गति है,
पर उनसे पूछूँ क्या जिनको मुझसे आज विरति है,
अर्ध-विश्व में व्याप्त शुभाशुभ मेरी भी कुछ मति है, **(यशोधरा)**
मैं भी नहीं अनाथ, जगत् में मेरा भी प्रभु पति है।

सिद्धार्थ के निर्वाण हेतु चले जाने के बाद यशोधरा शोक में डूब जाती है, फिर भी जन-कल्याण हेतु गए अपने पति के उच्च संकल्प के लिए वह त्यागमयी भावना से कह उठती है–

जायें, सिद्धि पायें वे सुख से,
दुःखी न हों इस जन के दुःख से।

यशोधरा के साथ उसका पुत्र राहुल भी है। पति की अनुपस्थिति में यशोधरा को माता तथा पिता दोनों रूपों का निर्वाह करना पड़ता है। इसीलिए यशोधरा के विरह में वेदना के साथ-साथ गम्भीरता आ गई है। वह अपनी व्याकुलता में उत्तरदायित्व को कभी नहीं भूली। नारी जीवन के उस गम्भीर पक्ष, जिसमें तप, अटल विश्वास, पारिवारिक उत्तरदायित्व और त्याग है, यशोधरा ने उसे सहज रूप से स्वीकार किया। इसलिए वह अपने ससुर को सांत्वना देने की क्षमता रखती है–

"तात सोचो, क्या गये वे इसी अर्थ हैं।
खोज हम लायें उन्हें, क्या वे असमर्थ हैं।"

यशोधरा की तापसी वृत्ति को अंगीकार करने के पीछे इस असार संसार के मोह से मुक्त होकर संसार को मुक्ति का मार्ग दिखाने वाले गौतम की पत्नी होने की योग्यता को सिद्ध करने की आकांक्षा दिखाई देती है। उनका यह तप अंत में सफल हुआ। गौतम भगवान बुद्ध बनकर उसके "इसी आंगन में" लौटकर आए, जहाँ से वे उसे छोड़कर गए थे और यशोधरा ने अपने जीवन के तप का फल प्राप्त कर लिया। यहाँ यशोधरा का मानिनी रूप अडिग दिखाई देता है। वह जानती है कि–

"यदि वे चल आये हैं इतना
तो दो पद उनको है कितना
क्या भारी वह, मुझको बताना
पीठ उन्होंने फेरी
ऐ मन! आज परीक्षा तेरी।"

यशोधरा इस परीक्षा में सफल हो जाती है। गौतम बुद्ध स्वयं आते हैं और कहते हैं–

"मानिनी, मान तजो, लो रही तुम्हारी बान।
दानिनि, आया स्वयं द्वार पर यह तत्र भवान।"

और यशोधरा ने अपने जीवन के तप का फल प्राप्त कर लिया। यशोधरा ने उस भिक्षु-शिरोमणि को अपनी गोद के अपूर्व रत्न, पुत्र राहुल को देकर नारी के त्याग का अभूतपर्व आदर्श उपस्थित कर दिया। भगवान बुद्ध ने गोपा अर्थात् यशोधरा के नीरव-तप को और उनके महत्व को स्वीकार किया और केवल गोपा का ही नहीं, उसके त्याग से समस्त नारी-जाति की महत्ता को स्वीकार करके गोपा का मस्तक ऊँचा कर दिया–

"दीन न हो गोपे, सुनो, हीन नहीं नारी कभी,
भूत-दया-मूर्ति वह मन से शरीर से।
क्षीण हुआ वन में क्षुधा से मैं विशेष जब
मुझको बचाया मातृजाति ने ही खीर से।
आया जब मार मुझे मारने को बार-बार
अप्सरा-अनीकिनी सजाये हेम-हीर से।
तुम तो यहाँ थीं, धीर ध्यान ही तुम्हारा वहाँ
जूझा, मुझे पीछे कर, पंचशर वीर से।"

गुप्तजी ने 'यशोधरा' में भारतीय नवजागरण से विकसित हुए नवीन विचारों को अभिव्यक्ति दी है। देवत्व के स्थान पर मानव के महत्व को प्रतिपादित करना इस कृति का मुख्य हेतु था। अन्य ग्रंथों के समान सिद्धार्थ को प्रमुखता न देकर गुप्तजी ने काव्य को यशोधरा पर केन्द्रित रखा है, क्योंकि नारी की प्रतिष्ठा समय की माँग थी।

गुप्तजी द्वारा नारी की प्रतिष्ठा को स्थापित करने की इसी काव्य-धारा की अगली कृतियाँ **'विष्णुप्रिया'** और **'जयिनी'** हैं। ये रचनाएं भी गुप्तजी के उसी सिद्धांत की बात करती हैं, जिसमें आदर्श नारियों के लिए त्याग, तपस्या और पतिव्रता होना आवश्यक माना गया है। हालांकि यह बात आधुनिक विचारों की अपेक्षा कुछ पारंपरिक अधिक लगती है। 'विष्णुप्रिया' सामान्य गृहिणी है। मध्यकालीन भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के गृहत्याग के कारण उनकी पत्नी विष्णुप्रिया को जो व्यथा-वेदना सहनी पड़ी, उसी का रेखांकन इस कृति में किया गया है।

चैतन्य महाप्रभु जब विष्णुप्रिया से प्रेम-धर्म के प्रसार हेतु गृह त्याग के लिए आज्ञा माँगते हैं तो उस समय विष्णुप्रिया समस्त नारी समाज की विवशता का प्रतिनिधित्व करती हुई कहती है–

"तो क्या करूँ, कर ही क्या सकती हूँ और मैं
रो रोकर मरना ही नारी लिखा लाई है।"

परन्तु वह अपने पति की भर्त्सना भी करती है, यह कह कर–

"कौन योग पूर्ण होगा त्याग कर मुझको?
धर्म के विरुद्ध ही तुम्हारा यह कर्म है।"

(विष्णुप्रिया)

केवल इतना कह कर विष्णुप्रिया चुप नहीं रहती है। वह सांसारिकता के मोह से दूर भाग रहे अपने पति के लिए आक्रोश भरा व्यंग्यपूर्ण उलाहना भी देती है। परन्तु वह स्थिति का सामना करने के लिए समर्थ भी है। स्वजनों के सहारे बैठकर वह अपना निर्वाह नहीं करती बल्कि स्वयं श्रम करके अपना और पति का पालन-पोषण करती है। स्वाभिमानी विष्णुप्रिया स्वयं श्रम करके जीवन जीना चाहती है–

"कर लेंगे हम किसी प्रकार
इतना श्रम जिससे हम दोनों, न हों किसी पर भार।"

चैतन्य महाप्रभु के लौट आने के बाद विष्णुप्रिया अपना सारा दुःख भूलकर उनका प्रेमपूर्वक स्वागत भी करती है और महाप्रभु के कहने पर भगवान का ध्यान भी करती है। परन्तु यही विष्णुप्रिया चैतन्य महाप्रभु के राजा द्वारा दी गई भेंट को स्वीकार करने पर, विद्रोहिणी के रूप में कह उठती है–

(विष्णुप्रिया)

"राज-समादर के लिए ही क्या गए हैं वे?

और इस बात को स्वीकार करते हुए महाप्रभु ने विष्णुप्रिया का आभार व्यक्त किया–

"हाय! 'प्यारी विष्णुप्रिये!' बोले हँसकर ही, (विष्णुप्रिया)
तू अवरोधिनी नहीं, अब हो प्रबोधिनी।"

◆◆◆

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. 'नर हो न निराश करो...' कविता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर–'नर हो, न निराश करो...' राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त विरचित एक महत्त्वपूर्ण तथा चर्चित कविता है जो उनके काव्य-संग्रह 'मंगल से घट' में संकलित है। यह एक प्रेरणादायी कविता है, जो मनुष्य को निराशा तथा भाग्यवाद का दामन छोड़कर कर्मशील तथा परिश्रमी बनने का प्रेरणा देती है। कविता के माध्यम से मनुष्य को अपने जीवन का उद्देश्य पहचानने तथा उचित कार्य करने की सलाह दी गई है। कविता में कहा गया है कि मनुष्य को अपने जीवन में आए अच्छे अवसरों का सदुपयोग करना चाहिए। मनुष्य को जब सब साधन प्राप्त हैं तो उसे उनका उपयोग करके अपने लिए अमरता का विधान करने का प्रयास करना चाहिए। मनुष्य को सदैव अपने गौरव, अपने महत्त्व का ध्यान रखना चाहिए। कितनी भी मुसीबत आए, उसे अपनी कर्मशीलता का त्याग नहीं करना चाहिए। ईश्वर ने मनुष्य को समस्त साधन उपलब्ध कराए हैं। ऐसे में यदि मनुष्य अपनी कर्महीनता के कारण उन्हें प्राप्त नहीं कर पाता है, तो इसमें उसी का दोष है। कविता में स्पष्ट किया गया है कि मनुष्य सभी प्रकार के गौरव तथा सुखों का भोग करने योग्य है। कर्मशील मनुष्य के लिए संसार में कुछ भी अलभ्य नहीं है। मनुष्य को अपनी कर्महीनता को अपनी भाग्यहीनता नहीं कहना चाहिए क्योंकि परिश्रम ही मनुष्य के भाग्य को बनाता है।

◆◆◆

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मैथिलीशरण गुप्त का जन्म कब और कहाँ हुआ?

उत्तर– मैथिलीशरण गुप्त का जन्म सन् 1886 ई. में चिरगाँव, जिला झाँसी, उत्तर प्रदेश में हुआ।

2. मैथिलीशरण गुप्त के माता-पिता का नाम क्या था?

उत्तर– उनकी माता का नाम सरयू देवी तथा पिता का नाम रामचरण गुप्त था।

3. गुप्त जी की प्रथम प्रकाशित पुस्तक का क्या नाम था?

उत्तर– रंग में भंग।

4. गुप्त जी की प्रारंभिक रचनाएँ 'सरस्वती' के अतिरिक्त और किस पत्र में प्रकाशित होती थीं?

उत्तर– 'वैश्योपकारक' में।

5. गुप्त जी द्वारा रचित चंपू काव्य का क्या नाम था?

उत्तर– यशोधरा।

6. गुप्त जी की पहली कविता का क्या नाम था?

उत्तर– हेमंत।

7. गुप्त जी के पिता किस उपनाम से कविता लिखते थे?

उत्तर– 'कनकलता' उपनाम से।

8. 'सरस्वती' के चित्रों पर आधारित गुप्त जी की तीन रचनाओं के नाम लिखिए।

उत्तर– 'कीचक की नीचता', 'उत्तरा का उत्ताप' तथा 'कुंती और कर्ण'।

9. गुप्त जी द्वारा लिखित नाटकों के क्या नाम थे?

उत्तर– 'तिलोत्तमा', 'चन्द्रहास' तथा 'अनघ'।

10. गुप्त जी द्वारा रचित 'जयद्रथ वध' का नायक कौन है?

उत्तर– अर्जुन।

11. मुद्दहस हाला के ढंग पर रचित गुप्त जी की रचना का नाम लिखिए।

उत्तर– भारत-भारती।

12. 'भारत-भारती' में कितने खंड हैं?

उत्तर– तीन–

(i) अतीत खंड,

(ii) वर्तमान खंड,

(iii) भविष्य खंड।

13. गुप्त जी की ख्याति का मूलाधार उनकी कौन-सी रचना है?

उत्तर– भारत-भारती।

14. 'भारत-भारती' का प्रकाशन कब हुआ?

उत्तर– 1912 ई. में।

15. गुप्त जी की रचना 'पत्रावली' में गुप्त जी के कितने पद्यबद्ध पत्र हैं?

उत्तर– सात।

16. गुप्त जी के महाकाव्य और खण्डकाव्य कितने हैं?

उत्तर– महाकाव्य—दो, खण्डकाव्य—उन्नीस।

17. सिक्ख सम्प्रदाय से संबंधित गुप्त जी की रचना का नाम बताइए।

उत्तर– गुरुकुल।

18. 'जानकी जीवन की जय' नामक मंगलाचरण गुप्त जी की किस रचना में है?

उत्तर– 'जयद्रथ वध' में।

19. गुप्त जी की किस रचना से प्रभावित होकर महात्मा गांधी ने उन्हें राष्ट्रकवि कहा था?

उत्तर– 'भारत-भारती' से प्रभावित होकर।

20. गुप्त जी ने किस प्रमुख धार्मिक मत से संबंधित कोई काव्य रचना नहीं लिखी?

उत्तर– ईसाई।

21. गुप्त जी द्वारा रचित 'विरहिणी ब्रजांगना' कितने खण्डों में है?

उत्तर– अठारह खंडों में।

22. 'साकेत' में कितने सर्ग हैं?

उत्तर- 12

23. गुप्त जी अपना काव्य-गुरु किसे मानते थे?

उत्तर- महावीर प्रसाद द्विवेदी को।

24. गुप्त जी के दो काव्य-संग्रहों के नाम लिखिए।

उत्तर- (i) पंचवटी,

(ii) झंकार।

25. 'भारत-भारती' की रचना किस वर्ष प्रारंभ हुई?

उत्तर- 1911 ई. में रामनवमी के दिन।

26. 'भारत-भारती' ग्रंथ का समापन किस दिन हुआ?

उत्तर- 1912 ई. में जन्माष्टमी के दिन।

27. मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की दो विशेषताएं लिखिए।

उत्तर- (i) राष्ट्रीय भावना,

(ii) समाज सुधार।

28. मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-भाषा का नाम लिखिए।

उत्तर- साहित्यिक खड़ी बोली।

29. मैथिलीशरण गुप्त की भाषा की दो विशेषताएं बताइए।

उत्तर- (i) सरल तथा सहज भाषा,

(ii) चित्रात्मक भाषा।

30. गुप्त जी की भाषा में प्रयुक्त किन्हीं दो अलंकारों के नाम लिखिए।

उत्तर- (i) अनुप्रास,

(ii) रूपक।

31. मैथिलीशरण गुप्त किस युग या वाद के कवि हैं?

उत्तर- द्विवेदी युग के।

32. 'नर हो, न निराश करो...' कविता के रचयिता का नाम लिखिए?

उत्तर-मैथिलीशरण गुप्त।

33. 'नर हो, न निराश करो...' कविता गुप्त जी के किस काव्य-संग्रह में संकलित है?

उत्तर-'मंगल घट' में

34. 'नर हो, न निराश करो...' कविता में कवि क्या प्रेरणा देना चाह रहा है?

उत्तर-इस कविता में कवि मनुष्य को कर्मशील बनने की प्रेरणा दे रहा है।

35. 'नर हो, न निराश करो...' कविता में कवि किस बात को समझने की बात कहता है?

उत्तर-कवि मानव जीवन के अर्थ को समझने की बात कहता है। कवि कहता है कि मानव जीवन तुम्हें क्यों मिला है, इसे समझो और इसे व्यर्थ ना जाने दो।

36. 'नर हो, न निराश करो...' कविता में कवि इस जग के बारे में क्या कहता है?

उत्तर-कवि इस जग के बारे में कहता है कि इस जग को कल्पना ना समझो, अपना रास्ता स्वयं चुनो।

37. 'नर हो, न निराश करो...' कविता में कवि किसका अवलंब लेने को कह रहा है?

उत्तर-कवि भगवान का अवलंब लेने को कह रहा है।

38. 'नर हो, न निराश करो...' कविता के अनुसार हमें इस संसार से क्या-क्या प्राप्त है? कवि क्या ग्रहण करने को कहता है?

उत्तर-हमें इस संसार से सारे साधन प्राप्त हैं। कवि उन साधनों का उपयोग कर आगे बढ़कर सफलता ग्रहण करने को कहता है।

39. 'नर हो, न निराश करो...' कविता में कवि किस बात का ध्यान रखने के प्रति सावधान करता है? वह किस बात को सर्वोपरि मानता है?

उत्तर-कवि इस बात का ध्यान रखने के प्रति सावधान करता है कि मानव, तुम्हें मानव होने का गर्व होना चाहिए। तुम्हें इस बात का हमेशा ध्यान होना चाहिए तथा मानव होने के महत्व को समझना चाहिए। कवि कर्म को ही सर्वोपरि मानता है।

40. 'नर हो न, निराश करो...' कविता में कविता का मूल भाव स्पष्ट करो।

उत्तर-यह कविता मनुष्य को कर्मशील बनने की प्रेरणा दे रही है। अपने गौरव व स्वाभिमान की रक्षा करते हुए मनुष्य को सदा अच्छे कर्म करने चाहिए, यह इस कविता में स्पष्ट बताया गया है। यह कविता संघर्ष के क्षणों में हमें सम्बल प्रदान करती है। यह कविता मानव को मानव होने का अहसास दिलाता है। 'नर हो, न निराश करो .... ' एक प्रेरणादायक कविता है।

◆◆◆